

दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२५ – भाग ६

(जून)

पृष्ठ १ से २५५

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बरनवाल, अधिवक्ता

२. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

३. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

४. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

५. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

६. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

७. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

८. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

९. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति	
माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता (वरिष्ठ न्यायमूर्ति इलाहाबाद)	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री पियूष अग्रवाल
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरिंदम सिन्हा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अताउ रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन राय	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवॉर
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री यशवन्त वर्मा	४२. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजबीर सिंह
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर बी सराफ	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयन्त बनर्जी	४९. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री दोनाडी रमेश
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मुईन	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र धारी सिंह	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्रीप्रकाश सिंह
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुधवार
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर	६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया	६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया	६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मुहम्मद अजहर हुसेन इदरीसी
३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा	६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र

६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैय्यद कमर हसन रिज़वी
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीश कुमार निगम
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
७३. माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ल
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रवीण कुमार गिरि
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनिल कुमार-X
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री संदीप जैन
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अवनीश सक्सेना
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मदन पाल सिंह
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्री हरवीर सिंह

6.इला	वर्णमाला सूचकांक आईओएलओआरओ जून 2025 (भाग-6)	1
अंशु कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-78
आनंद सिंह असवाल बनाम भारत संघ व अन्य		पृष्ठ-197
कमल भरभूजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-75
कुमारी सुनीता बनाम श्रीमती मन्जू एवं अन्य		पृष्ठ-85
जाखू राम बनाम संतोष एवं अन्य		पृष्ठ-114
डॉ. त्रिहुति कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-147
तारा चन्द्र गुप्ता बनाम डॉ. शक्ति बसु एवं अन्य		पृष्ठ-116
दानिश @ बकरा @ दिलशाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-81
दीपक सिंह @ शुभम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य		पृष्ठ-2
दीबन्धु समग्र स्वस्थ्य एवं शिक्षा शोध संस्थान बनाम भारत संघ एवं अन्य		पृष्ठ-104
प्रमोद स्वरूप अग्रवाल बनाम प्रधान आयुक्त निदेशक (अन्वेषण) लखनऊ व अन्य		पृष्ठ-229
मेसर्स साजिद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-213
यू.ओ.आई.एवं अन्य बनाम गोविन्द नारायण मिश्रा		पृष्ठ-133
रणजीत कुमार बनाम निबंधक, सहकारी समितियाँ एवं अन्य		पृष्ठ-174
राकेश कुमार त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-157
राकेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-186
विनय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-69

(2025) 6 ILRA 2

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लावनिया

धारा 482 संख्या-491 वर्ष 2025 के तहत आवेदन

दीपक सिंह @ शुभम सिंह

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

...प्रतिपक्षीगण

आवेदकों के लिए अधिवक्ता: मनुवेंद्र सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, अजय प्रताप सिंह

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 504, 506, 325 और 308 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - आक्षेपित समन आदेश घायल गवाहों (अ०सा०-1), (अ०सा०-2) / शिकायतकर्ता और तथ्य के गवाह (अ०सा०-3) की स्थिति पर आधारित है, जिन्होंने आवेदक के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए थे, एन.सी.आर. में भी पाए गए - आदेश को चुनौती इस आधार पर आधारित है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहले के आवेदन को अदालत की अनुमति के बिना वापस ले लिया गया था - यह यह तर्क दिया जाता है कि उसी धारा के तहत बाद का आवेदन सुनवाई योग्य नहीं था - घायल गवाहों की गवाही उच्च साक्ष्य मूल्य रखती है और इसे हल्के ढंग से खारिज नहीं किया जाना चाहिए - इस स्तर पर, विचारण न्यायालय को योग्यता के आधार पर साक्ष्य का आकलन करने की आवश्यकता नहीं है, जो कि मुकदमे के दौरान किया जाना है - पहला आवेदन वास्तविक कारणों से वापस ले लिया गया था, क्योंकि यह सूचित किया गया था कि नामित व्यक्ति, पहले ही निधन हो चुका था - इसके बाद, दूसरा आवेदन दायर किया गया था - बच्चा लाल @ विजय सिंह (इंफ्रा) में निर्णय प्रति असंगत है और बाध्यकारी नहीं है, अवहेलना की जा सकती है - आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं। (प्रस्तर-4, 6, 24 से 26)

आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-13)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. मध्य प्रदेश राज्य बनाम मानसिंह (2003) 10 एस.सी.सी. 414
2. अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 259

3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश (2011)4 एस.सी.सी. 324
4. लक्ष्मण सिंह बनाम बिहार राज्य (अब झारखंड)(2021) 9 एस.सी.सी. 191
5. केआर देब बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, शिलांग, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1447
6. असम राज्य और अन्य बनाम जे, एन, रॉय बिस्वास, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2277
7. पंजाब राज्य बनाम कश्मीर सिंह, 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 88
8. यू.ओ.आई. और अन्य बनाम पी. थायगराजन, ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 449
9. यू.ओ.आई. बनाम केडी पांडे और अन्य (2002) 10 एस.सी.सी. 471
10. सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक, कर विभाग, ब्रदर्स (जेटी) 2010 (4) अनुसूचित जाति 35
11. सीसीटी बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स 2010 (4) एस.सी.सी. 785
12. बच्चा लाल @ विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आपराधिक अपील संख्या-6502 वर्ष 2018, (प्रस्तर-22 से 42)
13. सरगुजा परिवहन सेवा बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण, मध्य प्रदेश, ग्वालियर और अन्य; (1987) 1 एस.सी.सी. 5
14. उपाध्याय एंड कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; (1999) 1 एस.सी.सी. 81
15. हरदीप सिंह बनाम पुन राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92 में रिपोर्ट किया गया, (प्रस्तर-10 से 19, 43, 45, 63)
16. राजेश और अन्य बनाम हर राज्य, (2019) 6 एस.सी.सी. 368 में रिपोर्ट किया गया
17. बृजेंद्र सिंह बनाम राज्य राज, (2017)7 एस.सी.सी. 706: (2017) 4 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 144
18. मंजीत सिंह बनाम हर राज्य (2021) 18 एस.सी.सी. 321, (प्रस्तर-15 से 26) में रिपोर्ट की गई
19. सुखपाल सिंह खैरा बनाम पुन राज्या। (2023) 1 एस.सी.सी. 289 में रिपोर्ट किया गया (प्रस्तर-22, 38 से 41)
20. यशोधन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2023) लाइवलो (एस.सी.) 576: 2023 आई.एन.एस.सी. 652 में रिपोर्ट किया गया
21. जोगेंद्र और अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य, (2015) 9 एस.सी.सी. 244 में रिपोर्ट किया गया
22. सर्व श्रमिक संगठन (केवी) बनाम महाराष्ट्र और अन्य (2008) 1 एस.सी.सी. 494 में रिपोर्ट किए गए
23. हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम बनाम अनिल गर्ग और अन्य (2017) 14 एस.सी.सी. 634, (प्रस्तर-13 से 16, 19) में रिपोर्ट किए गए
24. पी. रथिनम बनाम यू.ओ.आई. और एक अन्य (1994) 3 एस.सी.सी. 394, (प्रस्तर-92 से 96) में रिपोर्ट किया गया

25. के.एस. पांडुरंग बनाम कर्ण राज्य, [2013] 1 ए.सी.आर 994, (प्रस्तर-30 से 35)
26. संदीप कुमार बाफना बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र (2014) 16 एस.सी.सी. 623 में रिपोर्ट किया गया: (2015) 3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 558, (प्रस्तर-19)
27. पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम। लिमिटेड बनाम लेबर कमर्श, (1990) 3 एस.सी.सी. 682: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 71, (प्रस्तर-40)
28. बिलकिस याकूब रसूल बनाम यू.ओ.आई. और अन्य (2024) 5 एस.सी.सी. 481, (प्रस्तर-145, 146, 153, 154) में रिपोर्ट किया गया

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया द्वारा उद्धोषित)

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री मनुवेंद्र सिंह, उत्तर प्रदेश राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अजय कुमार श्रीवास्तव, श्री अजय प्रताप सिंह-II, एडवोकेट, जिन्होंने आज अदालत में प्रतिपक्षी संख्या-2/शिकायतकर्ता/महेंद्र प्रताप सिंह की ओर से अधिवक्ता श्री विनोद कुमार सिंह के साथ वकालतनामा दायर किया है, जिसे अभिलेखों पर लिया गया है, साथ ही अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. प्रस्तुत आवेदन के माध्यम से, आवेदक ने निम्नलिखित मुख्य राहत (उपायों) की मांग की है: -

" द०प्र०स० की धारा 482 के तहत इस आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे में बताए गए तथ्यों, कारणों और परिस्थितियों के लिए, यह सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय एस.टी. संख्या-115/2016 में ऊपरी सत्र न्यायाधीश कक्ष संख्या-8, सुल्तानपुर द्वारा पारित दिनांक 09-02-2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने की कृपा करें, केस क्राइम संख्या-222/2012, भ०द०वि० की धारा 323, 504, 506, 325, 308, भ०द०वि० के तहत, थाना-चंदा जिला सुल्तानपुर इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या-1 के रूप में यहां निहित है, अन्यथा आवेदक को अपूरणीय क्षति और चोट का सामना करना पड़ेगा।

आगे यह प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय धारा 323, 504, 506, 325, 308, भ०द०वि०, थाना-चंदा, जिला- सुल्तानपुर के समक्ष लंबित मामले अपराध संख्या-222 वर्ष 2012 से उत्पन्न एस.टी. संख्या-115/2016 (राज्य बनाम राजेश प्रताप सिंह और अन्य) की कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करें, जो ऊपरी सत्र न्यायाधीश कक्ष संख्या-21 सुल्तानपुर के समक्ष लंबित है, जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट जिला लखनऊ के समक्ष लंबित है, अन्यथा आवेदकों को अपूरणीय क्षति और चोट का सामना करना पड़ेगा।

3. अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (कमरा संख्या-8), सुल्तानपुर (संक्षेप में "विचारण न्यायालय") द्वारा धारा 323, 504, 506, 325, 308 भ०द०वि०, थाना-चंदा जिला- सुल्तानपुर के तहत एस.टी. संख्या-115/2016 में पारित आदेश के माध्यम से, धारा 323, 504, 506, 325, 308 भ०द०वि०, थाना-चंदा जिला-सुल्तानपुर के तहत, जिसके तहत विचारण न्यायालय ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर किए गए

आवेदन संख्या-37-ख की अनुमति दी और आवेदक को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। दिनांक 09.02.2023 का आदेश, प्रासंगिक होने के कारण, यहां निकाला गया है:-

दिनांक 09.02.2023

सत्र परीक्षण प्रस्तुत हुआ। वादी महेन्द्र प्रताप सिंह और से प्रार्थना पत्र संख्या-37 ख अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता एवं प्रस्तावित विपक्षी की ओर से प्रस्तुत आपति प्रार्थना पत्र संख्या-40 ख पर उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहित राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान सहायक जिला शासकीय अधिवक्ता दाण्डिक सुना गया तथा पत्रावली का परिशीलन किया गया।

निस्तारण प्रार्थना पत्र संख्या-37 ख अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया

1. वादी/अभियोजन पक्ष की ओर से प्रार्थना पत्र 37 ख, अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता मय शपथपत्र इस आशय का प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 08.05.2012 को समय 8.30 बजे राजेश प्रताप सिंह, शिवकेश सिंह, पुष्पा देवी व दीपक सिंह एक राय होकर जान से मारने की नियत से प्राणघातक चोटें पहुंचायीं, जिसमें बाद विवेचना पुलिस द्वारा अभियुक्त पुष्पा सिंह एवं दीपक सिंह का नाम निकाल दिया गया है व अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध धारा 308, 323, 325, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रेषित किया गया। विवेचक के समक्ष साक्षीगण द्वारा दिये गये बयान में उक्त अभियुक्तगण दीपक सिंह व पुष्पा सिंह के घटना में सम्मिलित होने का बयान दिया गया है। पत्रावली पर अभियुक्त दीपक सिंह द्वारा घटना कारित किये जाने का निश्चयात्मक साक्ष्य उपलब्ध है। दौरान विचारण अभियुक्ता पुष्पा सिंह की मृत्यु हो चुकी है। अतः प्रस्तावित अभियुक्त दीपक सिंह को विचारण हेतु तलब किया जाए।

2. उपर्युक्त प्रार्थना पत्र पर लिखित आपति प्रार्थना पत्र संख्या-40 ख विपक्षी/अभियुक्त राजेश प्रताप सिंह की ओर से इस आशय की प्रस्तुत की गयी है कि अभियुक्त पुष्पा सिंह एवं दीपक सिंह को प्रथम सूचना रिपोर्ट में अभियुक्त बनाया गया है परन्तु विवेचक द्वारा उनकी नामजदगी गलत पायी गयी तथा आरोप पत्र राजेश प्रताप सिंह व शिवकेश सिंह के विरुद्ध न्यायालय में प्रेषित किया गया। दीपक सिंह आपत्तिकर्ता का पुत्र नहीं है, उसके दो ही पुत्र हैं, जिनका नाम शिवम सिंह व शुभम सिंह है। दीपक सिंह के नाम का व्यक्ति आपत्तिकर्ता के घर परिवार का नहीं है। प्रथम सूचना रिपोर्ट पुरानी रंजिश के कारण लिखायी गयी है। अतः प्रार्थना पत्र निरस्त किया जाए।

3. आपत्तिकर्ता द्वारा अपनी आपति के साथ अभियुक्त राजेश प्रताप सिंह का आधार कार्ड व शिवम सिंह व शुभम सिंह के हाईस्कूल अंक पत्र एवं परिवार रजिस्टर की प्रति प्रस्तुत की गयी है।

4. पत्रावली की परिशीलन से स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट वादी महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा दी गयी तहरीर जो कि पुलिस अधीक्षक, सुल्तानपुर को सम्बोधित की गयी है, जिसमें दीपक सिंह के अतिरिक्त अन्य अभियुक्तगण द्वारा प्राणघातक चोटें पहुंचाया जाना तत्पश्चात मेडिकल कराये जाने आदि का कथन किया गया है। अन्य तहरीर थानाध्यक्ष को प्रेषित की गयी है, पर भी अभियुक्त दीपक सिंह पुत्र राजेश मुल्जिम वर्णित किया गया है। धारा-161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अंकित किया गया है, जिसमें भी अभियुक्त दीपक सिंह के घटना में सम्मिलित होने के में बयान दिया गया है। अन्य साक्षी श्रीमती कुसुम सिंह द्वारा भी उक्त के समर्थन में बयान दिया गया है।

5. न्यायालय के समक्ष साक्षी पी०डब्लू० 1 राजाराम का बयान अंकित किया गया है। जिसमें अभियुक्त दीपक सिंह के घटना में सम्मिलित होने के विषय में बयान दिया गया है। साक्षी पी०डब्लू० 2 महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा भी यह बयान दिया गया है कि घटना के समय दीपक सिंह लाठी डंडा लेकर आया तथा चारों अभियुक्तों द्वारा मिलकर मारपीट कारित की गयी। साक्षी पी०डब्लू० 3 साधना सिंह द्वारा भी प्रस्तावित अभियुक्त दीपक सिंह के घटना में सम्मिलित होने के संदर्भ में बयान दिया गया है। इस प्रकार साक्ष्य से भी प्रस्तावित अभियुक्त दीपक सिंह की घटना में संलिप्तता साक्षीगण द्वारा प्रदर्शित की गयी है। अतः प्रस्तावित अभियुक्त दीपक सिंह का भी अन्य अभियुक्तगण के साथ विचारण किया जाना न्यायोचित पाया जाता है। तदनुसार प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य है।

आदेश

आवेदक/वादी महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र संख्या 37 ख अंतर्गत धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता स्वीकार किया जाता है।

तदनुसार अभियुक्त दीपक सिंह को मुकदमा संख्या 222/2012, अंतर्गत धारा 308,323,302,325,504,506 सपत्ति धारा 34 भारतीय दण्ड संहिता, थाना चांदा, जिला सुल्तानपुर के अपराध में विचारण हेतु तलब किया जाता है। अभियुक्त दीपक सिंह के विरुद्ध दिनांक 06.03.2023 हेतु समन जारी हो। सत्र परीक्षण की पत्रावली दिनांक 06.06.2023 को प्रस्तुत हो।

4. चुनौती के तहत दिनांक 09.02.2023 के आदेश से संकेत मिलता है कि आवेदक को घायल गवाहों राजाराम (अ०सा०-1) और महेन्द्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) और एक साधना सिंह (अ०सा०-3) के बयानों पर ध्यान देने के बाद तलब किया गया है, जो तथ्य का गवाह है।

5. यहां यह इंगित करना उचित होगा कि राजाराम (अ०सा०-1) और महेन्द्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) घायल गवाह हैं और घायल गवाहों की गवाही का अधिक साक्ष्य मूल्य है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं दिया जाना चाहिए, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम मानसिंह (2003) 10 एस.सी.सी. 414; अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 10 एस.सी.सी. 259; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश; (2011) 4 एस.सी.सी. 324 और लक्ष्मण सिंह बनाम बिहार राज्य (अब झारखंड)(2021) 9 एस.सी.सी. 191 के मामले में देखा है।

6. दिनांक 09.02.2023 के आक्षेपित आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत अधिमान्य आवेदन संख्या-30-ख को एक नए आवेदन को दायर करने के लिए अदालत से अनुमति मांगे बिना दिनांक 03.10.2022 के आदेश द्वारा वापस लिए गए के रूप में खारिज कर दिया गया था और इस तरह, धारा 319 द०प्र०स० के तहत अभियोजन पक्ष द्वारा दायर किया गया दूसरा आवेदन संख्या-37-खा स्वयं पोषणीय नहीं था और इसलिए, उस पर पारित दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य है।

7. चुनौती का एक अन्य आधार इस आशय का है कि दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश एक आख्यापक/तर्कपूर्ण आदेश नहीं है।

8. उपरोक्त को प्रस्तुत आवेदन के प्रस्तर-23 और 24 से निकाला जा सकता है, जो यहां दिए गए हैं: -

"23. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, अवर न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि चूंकि धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर किया गया था, इसलिए नए सिरे से फाइल करने की स्वतंत्रता के साथ दबाव नहीं डाला गया था, इसलिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 दायर किया गया दूसरा आवेदन स्पष्ट रूप से सुनवाई योग्य नहीं था।

24. यह कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि अर्ध-न्यायिक या न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित प्रत्येक आदेश, निम्नलिखित मामलों में अवधारित किया गया है, आख्यापक और तर्कसंगत होना चाहिए: -

1. केआर देब बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क कलेक्टर, शिलांग, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1447।
2. असम राज्य और अन्य बनाम जे, एन, रॉय बिस्वास, ए.आई.आर. 1975 एस.सी. 2277
3. पंजाब राज्य बनाम कश्मीर सिंह, 1997 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 88.
4. भारत संघ और अन्य बनाम पी. थायगराजन, ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 449
5. भारत संघ बनाम केडी पांडे और अन्य (2002) 10 एस.सी.सी. 471।
6. सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक, कर विभाग, ब्रदर्स (जेटी) 2010 (4) एस.सी. 35,
7. सीसीटी बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स 2010 (4) एस.सी.सी. 785।

9. दिनांक 03.10.2022 का आदेश (प्रस्तुत आवेदन के लिए अनुलग्नक संख्या-7), संदर्भित है, यहां निकाला गया है: -

दिनांक 03.10.2022

सत्र परीक्षण प्रस्तुत हुआ। वादी महेन्द्र प्रताप सिंह की ओर से प्रार्थना पत्र संख्या-30ख, अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता पर उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता सहित राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान सहायक जिला शासकीय अधिवक्ता दाण्डिक सुना गया तथा पत्रावली का परिशीलन किया गया।

वादी/आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उपरोक्त प्रार्थना पत्र पर इस आशय टिप्पणी अंकित की गयी है कि वह प्रार्थना पत्र पर बल नहीं देना चाहते हैं।

वर्णित परिस्थितियों में प्रस्तुत प्रार्थना पत्र संख्या-30ख, अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता बलाभाव में निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

वादी/आवेदक द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र संख्या-30ख, अन्तर्गत धारा-319 दण्ड प्रक्रिया संहिता बलाभाव में किया जाता है।

सत्र परीक्षण दिनांक 03.11.2022 को अग्रिम आदेश हेतु प्रस्तुत हो।"

10. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या-6502 वर्ष 2018 (बच्चा लाल @ विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.11.2022 के निर्णय पर भरोसा किया है। दिनांक 04.11.2022 के निर्णय के संदर्भित प्रासंगिक प्रस्तर यहां दिए गए हैं:-

"22. इसके बाद, पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 ने उसी आधार पर धारा 319 द०प्र०स० के तहत दिनांक 02.03.2017 को एक और आवेदन दायर किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि नामित लेकिन आरोप-पत्रित आरोपी बच्छलाल को भी मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाए। इसे पेपर संख्या-17 ख के रूप में पंजीकृत किया गया था।

23. अभिलेखों से यह पता चलता है कि आरोप पत्र दायर अभियुक्त द्वारा दिनांक 02.03.2017 (पेपर संख्या-17 ख) के आवेदन पर कोई लिखित आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी।

24. अवर न्यायालय ने अ०सा०-1 हिम्मतलाल, अ०सा०-2 सुनीता और अ०सा०-3 रामधनी की मौखिक गवाही के आलोक में आवेदन (पेपर संख्या-17 ख) की जांच की और राय दी कि विचाराधीन अपराध में अपीलकर्ता की मिलीभगत भी स्थापित है। तदनुसार, 19.09.2018 के आदेश के माध्यम से अवर न्यायालय ने उपरोक्त आवेदन को अनुमति दी और साथ ही अपीलकर्ता को उपर्युक्त सत्र परीक्षण में मुकदमे के लिए बुलाया।

25. इस प्रकार अवर न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 19.09.2018 के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, अपीलकर्ता ने अब धारा 14-ए (1) अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत प्रस्तुत अपील के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

26. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क है कि प्रस्तुत अपील में आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध और अधिकार क्षेत्र के बिना है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत दिनांक 26.10.2016 (पेपर संख्या-16 ख) को एक आवेदन दायर किया था। उपरोक्त आवेदन को खारिज कर दिया गया था क्योंकि नए सिरे से दाखिल करने के लिए न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए बिना दबाव नहीं डाला गया था। हालांकि, उपरोक्त के बावजूद, पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 ने धारा 319 द०प्र०स० (पेपर संख्या-17 ख) के तहत दिनांक 02.03.2017 को बाद का आवेदन दायर किया। यह वह आवेदन है, जिसे आक्षेपित आदेश के माध्यम से अवर न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई है।

27. अपीलकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, हालांकि धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरा आवेदन दाखिल करने के संबंध में संहिता यानी द०प्र०स० में कोई विशिष्ट रोक नहीं है, लेकिन सार्वजनिक नीति दूसरा आवेदन दाखिल करने पर रोक लगाती है।

28. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत अपील का विरोध किया है। उनका तर्क है कि पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरा आवेदन विचारणीय था क्योंकि पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन आवेदन में अंतर्निहित गलती को देखते हुए दबाया नहीं गया था। चूंकि पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन गुण-दोष के आधार पर तय नहीं किया गया था, इसलिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरे आवेदन पर कोई कानूनी रोक नहीं लगाई जा सकती है। इस मुद्दे पर कि क्या विचाराधीन अपराध में अपीलकर्ता की मिलीभगत है या नहीं, इस मुद्दे पर मुकदमे के दौरान ही उचित रूप से निर्णय लिया जा सकता है। चूंकि प्रथम दृष्टया विचाराधीन अपराध में अपीलकर्ता की मिलीभगत से अधिक कुछ स्थापित किया गया है, इसलिए अपील की अनुमति देने में अवर न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में कोई अनुग्रह नहीं दिया जाना चाहिए।

29. प्रस्तुत अपील में आक्षेपित आदेश की सत्यता पर विचार करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, इस न्यायालय को शुरू में प्रथम सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर धारा 319 द०प्र०स० के तहत दिनांक 02.03.2017 (पेपर संख्या-17 खा) के आवेदन की स्थिरता की जांच करने की आवश्यकता है।

30. चूंकि प्रस्तुत अपील धारा 319 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही से उद्भूत होती है, इसलिए धारा 319 द०प्र०स० को पुनः पेश करना वांछनीय है। तैयार संदर्भ के लिए इसे नीचे निकाला गया है: -

"319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति।

(1) जहां, किसी अपराध की किसी जांच या विचारण के दौरान, साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी भी व्यक्ति ने अभियुक्त नहीं होने के नाते कोई अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति के खिलाफ उस अपराध के लिए कार्रवाई कर सकता है जो उसने किया हुआ प्रतीत होता है।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं है, उसे पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए, मामले की परिस्थितियों के अनुसार, गिरफ्तार किया जा सकेगा या तलब किया जा सकेगा।

(3) न्यायालय में उपस्थित होने वाला कोई व्यक्ति, यद्यपि गिरफ्तार नहीं है या समन पर है, ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध की जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए हिरासत में रखा जा सकेगा जो उसने किया हुआ प्रतीत होता है।

(4) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, तत्-

(क) ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से शुरू की जाएगी, और गवाहों की सुनवाई की जाएगी;

(ख) खंड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मामला इस प्रकार आगे बढ़ सकेगा जैसे कि ऐसा व्यक्ति अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान लिया जिस पर जांच या विचारण शुरू किया गया था।

31. धारा 319 द०प्र०स० के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि धारा 319 द०प्र०स० से जुड़े परंतुक के माध्यम से कोई राइडर नहीं है। इसलिए, न्यायालय को संहिता यानी द०प्र०स० के संदर्भ में इस न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में धारा 319 द०प्र०स० के तहत बाद के आवेदन की विचारणीयता की जांच करनी होगी। धारा 319 द०प्र०स० विशेष रूप से जब धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी द्वारा दायर पहला आवेदन पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा खारिज कर दिया गया था, क्योंकि नए सिरे से फाइल करने के लिए अदालत की अनुमति प्राप्त किए बिना दबाव नहीं डाला गया था।

32. दंड प्रक्रिया संहिता (इसके बाद संहिता के रूप में संदर्भित) के साथ शुरू करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है, जो संहिता के तहत बाद के आवेदन को दाखिल करने पर रोक लगाता है।

33. इसलिए, आवश्यकता के अनुसार न्यायालय को समान परिस्थितियों में सर्वोच्च न्यायालय/इस न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों के आलोक में मामले की जांच करनी होगी।

34. सरगुजा परिवहन सेवा बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण, मध्य प्रदेश, ग्वालियर और अन्य (1987)¹ एस.सी.सी. 5 में, यह रिपोर्ट के प्रस्तर-8 में न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अवधारित किया गया था: "संहिता जैसा कि अब है, एक नए मुकदमे को दायर करने की अनुमति के साथ एक मुकदमे के 'परित्याग' और एक मुकदमे से 'वापसी' के बीच अंतर करती है। यह प्रावधान करता है कि जहां वादी संहिता के आदेश XXIII के नियम 1 के उपनियम (3) में निर्दिष्ट अनुमति के बिना किसी मुकदमे को छोड़ देता है या मुकदमे से हट जाता है, उसे ऐसी विषय-वस्तु या दावे के ऐसे हिस्से के संबंध में कोई नया मुकदमा दायर करने से रोक दिया जाएगा। संहिता के आदेश XXIII के नियम 1 में अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि जब कोई वादी एक बार न्यायालय में मुकदमा दायर करता है और इस तरह उसे कानून के तहत दिए गए उपाय का लाभ उठाता है, तो उसे पहले के मुकदमे को छोड़ने के बाद या नया मुकदमा दायर करने के लिए न्यायालय की अनुमति के बिना इसे वापस लेने के बाद फिर से उसी विषय-वस्तु के संबंध में एक नया मुकदमा दायर करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इनविटो बेनिफिशियम नॉन डैटर। कानून एक आदमी को कोई अधिकार या लाभ प्रदान नहीं करता है जो वह नहीं चाहता है। जो कोई भी किसी अधिकार को छोड़ता है, त्यागता है या अस्वीकार करता है, वह उसे खो देगा। किसी वादी को बिना किसी अच्छे कारण के एक ही कारण पर बार-बार मुकदमा दायर करके न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए, संहिता इस बात पर जोर देती है कि उसे आदेश XXIII के नियम 1 के उप-नियम (3) में उल्लिखित दो आधारों में से किसी एक को स्थापित करने के बाद एक नया मुकदमा दायर करने के लिए न्यायालय की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए। उपरोक्त नियम में अंतर्निहित सिद्धांत सार्वजनिक नीति पर आधारित है, लेकिन यह संहिता की धारा 11 में निहित रैस जुडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय) के नियम के समान नहीं है, जो प्रदान करता है कि कोई भी अदालत किसी भी मुकदमे या मुद्दे की सुनवाई नहीं करेगी जिसमें सीधे या काफी हद तक मुद्दा एक ही पक्षों के बीच एक पूर्व मुकदमे में सीधे या काफी हद तक जारी रहा हो, या उन पक्षों के बीच जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी दावा करता है, एक ही शीर्षक के तहत मुकदमेबाजी करते हुए, इस तरह के बाद के मुकदमे या मुकदमे की सुनवाई करने

के लिए सक्षम न्यायालय में जिसमें इस तरह के मुद्दे को बाद में उठाया गया है, और इस तरह के न्यायालय द्वारा सुना गया है और अंत में निर्णय लिया गया है। रेस जुडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय)(पूर्व न्याय निश्चित विषय) का नियम उस मामले पर लागू होता है जहां मुकदमे या मुद्दे की सुनवाई पहले ही हो चुकी है और अंत में न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जा चुका है। नया मुकदमा दायर करने के लिए न्यायालय की अनुमति के बिना किसी वाद को छोड़ने या वापस लेने के मामले में, किसी वाद का कोई पूर्व निर्णय नहीं होता है। या कोई मुद्दा शामिल है, फिर भी, जैसा कि पहले कहा गया है, संहिता प्रदान करती है कि दूसरा वाद संहिता के आदेश XXIII के नियम 1 के उप-नियम (4) में निहित नहीं होगा, जब न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उप-नियम (3) में निर्दिष्ट अनुमति के बिना पहला मुकदमा वापस ले लिया जाता है।

35. उपाध्याय एंड कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1999) 1 एस.सी.सी. 81 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय की फिर से पुष्टि की गई थी। निर्णय का प्रस्तर-13 मौजूदा विवाद के लिए प्रासंगिक है। तदनुसार, इसे यहां नीचे निकाला गया है: -

पीठ ने कहा, "नया मुकदमा दायर करने पर लगाया गया प्रतिबंध सार्वजनिक नीति पर आधारित है। इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 (सरगुजा ईरानस्पोर्ट सर्विस बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण, ग्वालियर, 1987 1 एस.सी.सी. 5) के तहत क्षेत्राधिकार पर सार्वजनिक नीति के उक्त नियम को लागू किया है। रिट क्षेत्राधिकार में इसे अपनाने का तर्क यह है कि बहुत बार ऐसा होता है, जब याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता को पता चलता है कि अदालत कुछ समय तक सुनवाई के बाद रिट याचिका को स्वीकार करने का आदेश पारित करने की संभावना नहीं है, कि याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता द्वारा अनुरोध किया जाता है कि वह उसे एक नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना इसे वापस लेने की अनुमति दे। एक अदालत जो याचिका को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, वह आमतौर पर एक नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता नहीं देगी, जबकि वह याचिका को वापस लेने की अनुमति देने के लिए सहमत हो सकती है। जब एक बार उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका को संबंधित पक्ष द्वारा वापस ले लिया जाता है, तो उसे रिट याचिका में पारित आदेश के खिलाफ अपील दायर करने से रोक दिया जाता है क्योंकि उसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से व्यथित पक्ष नहीं माना जा सकता है। यदि ऐसा है, तो वह एक बार फिर उसी कारण के लिए एक नई याचिका दायर नहीं कर सकते हैं। ई.एस. वेंकटरामिया (उस समय मुख्य न्यायाधीश के रूप में) की निम्नलिखित टिप्पणियों को यहां उद्धृत किया जाना है:

"हमारा विचार है कि संहिता के आदेश 23 के नियम 1 में अंतर्निहित सिद्धांत को न्याय प्रशासन के हित में रिट याचिका को वापस लेने के मामलों में भी विस्तारित किया जाना चाहिए, न कि न्यायिक निर्णय के आधार पर बल्कि सार्वजनिक नीति के आधार पर, जैसा कि ऊपर बताया गया है। यह वादी को बैच-हंटिंग रणनीति में शामिल होने से भी हतोत्साहित करेगा। किसी भी स्थिति में ऐसे मामले में याचिकाकर्ता को एक बार फिर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण अधिकार क्षेत्र को लागू करने की अनुमति देने का कोई उचित कारण नहीं है। जबकि एक नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना उच्च न्यायालय में दायर एक रिट याचिका को वापस लेने से संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक वाद या याचिका

जैसे अन्य उपायों पर रोक नहीं लग सकती है क्योंकि इस तरह की वापसी रैस ज्यूडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय) के बराबर नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपाय को याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका में भरोसा किए गए कार्रवाई के कारण के संबंध में छोड़ दिया गया माना जाना चाहिए जब वह ऐसी अनुमति के बिना इसे वापस ले लेता है।

36. ए.शासकीय अधिवक्ता ने वी. रवि कुमार बनाम राज्य के पुलिस निरीक्षक, जिला अपराध शाखा, सलेम तमिलनाडु और अन्य (2019) 14 एस.सी.सी. 568 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया है, जिसमें न्यायालय ने माना है कि कार्रवाई के समान कारण के संबंध में दूसरी शिकायत सुनवाई योग्य है। रिपोर्ट के प्रस्तर-16 से 20 में की गई टिप्पणियां विवाद के लिए प्रासंगिक हैं। तदनुसार, इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"16. दंड प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो शिकायतकर्ता को उन्हीं आरोपों पर दूसरी शिकायत करने से रोकता हो, जब पहली शिकायत में दोषसिद्धि, बरी या निर्वहन नहीं होता था। शिव शंकर सिंह बनाम शिव शंकर सिंह में। बिहार राज्य और अन्य, इस न्यायालय ने कहा:

"18. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कानून उन्हीं तथ्यों पर भी दूसरी शिकायत दर्ज करने या उस पर विचार करने की मनाही नहीं करता है, बशर्ते कि पहले की शिकायत अपर्याप्त सामग्री के आधार पर तय की गई हो या शिकायत की प्रकृति को समझे बिना आदेश पारित किया गया हो या पूरे तथ्य अदालत के समक्ष नहीं रखे जा सके या जहां शिकायतकर्ता को पहली शिकायत के निपटान के बाद कुछ तथ्यों का पता चला हो जो संतुलन को उनके पक्ष में झुका सकता था। हालांकि, दूसरी शिकायत सुनवाई योग्य नहीं होगी, जिसमें पहले की शिकायत को गुण-दोष के आधार पर शिकायतकर्ता के मामले पर पूरी तरह से विचार करने के आधार पर निपटाया गया हो।

17. जैसा कि जतिंदर सिंह और अन्य बनाम रंजीत कौर में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है, यह केवल तभी होता है जब जांच के बाद किसी शिकायत को गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया जाता है, कि उन्हीं तथ्यों पर दूसरी शिकायत नहीं की जा सकती है। हो सकता है, जैसा कि प्रतिवादियों ने तर्क दिया है, पहली शिकायत बिना कोई कारण बताए वापस ले ली गई थी। हालांकि, यह अपने आप में दूसरी शिकायत को रद्द करने का कोई आधार नहीं है। 1 (2012) 1 एस.सी.सी. 130 2 2001 (2) एस.सी.सी. 570

18. प्रमथ नाथ तालुकदार और एक अन्य बनाम सरोज रंजन सरकार में, इस न्यायालय ने इस सवाल पर विचार किया कि क्या प्रतिवादी द्वारा दूसरी शिकायत पर विचार किया जाना चाहिए था जब पिछली शिकायत वापस ले ली गई थी। द०प्र०स० की धारा 482 के तहत आवेदन को स्वीकार कर लिया गया था और बहुमत के न्यायाधीशों द्वारा शिकायत को खारिज कर दिया गया था, यह देखते हुए कि धारा 203 द०प्र०स० के तहत बर्खास्तगी का आदेश समान तथ्यों पर दूसरी शिकायत के मनोरंजन के लिए कोई बाधा नहीं थी, लेकिन इसे

केवल असाधारण परिस्थितियों में ही स्वीकार किया जा सकता था, उदाहरण के लिए, जहां पिछला आदेश अपूर्ण अभिलेखों पर पारित किया गया था या शिकायत की प्रकृति की गलतफहमी या पारित आदेश स्पष्ट रूप से बेतुका था, अन्यायपूर्ण या मूर्खतापूर्ण या जहां नए तथ्य थे, जिन्हें उचित परिश्रम के साथ, पिछली कार्यवाही में अभिलेखों पर नहीं लाया जा सकता था।

19. पूनम चंद जैन और एक अन्य बनाम फजरू, इस न्यायालय ने प्रमथ नाथ (उपरोक्त) में अपने पहले के निर्णय पर भरोसा किया और माना कि शिकायत को खारिज करने का आदेश 3 ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 876 4 (2010) 2 एस.सी.सी. 631 पर दूसरी शिकायत के मनोरंजन के लिए कोई बाधा नहीं था, लेकिन इसे केवल असाधारण परिस्थितियों में ही स्वीकार किया जा सकता है, जैसे, जहां पिछला आदेश अपूर्ण अभिलेखों पर पारित किया गया था, या शिकायत की प्रकृति की गलतफहमी पर या स्पष्ट रूप से बेतुका, अन्यायपूर्ण या मूर्खतापूर्ण था या जहां नए तथ्य थे, जो उचित परिश्रम के साथ, पिछली कार्यवाही में अभिलेखों पर नहीं लाए गए थे।

20. पूनम चंद जैन (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने आगे कहा कि:

"... यह प्रश्न फिर से इस न्यायालय के समक्ष जतिंदर सिंह बनाम रंजीत कौर में विचार के लिए आया। वहां भी इस न्यायालय ने प्रमथनाथ के सिद्धांत पर भरोसा करते हुए कहा कि संहिता या किसी अन्य कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो शिकायतकर्ता को उसी आरोप पर दूसरी शिकायत दर्ज करने से रोकता है जैसा कि पहली शिकायत में था। लेकिन इस न्यायालय ने कहा कि जब एक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 202 के तहत जांच करता है और गुण-दोष के आधार पर शिकायत को खारिज करता है, तो उन्हीं तथ्यों पर दूसरी शिकायत तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि "असाधारण शिकायत" न हो। इस न्यायालय ने प्रस्तर-12 में कहा कि यदि पहले शिकायतकर्ता को बर्खास्त कर दिया जाता है तो उन्हीं तथ्यों पर दूसरी शिकायत दर्ज करने पर कोई रोक नहीं है।

हालांकि, अगर संहिता की धारा 203 के तहत शिकायत को खारिज किया जाना योग्यता के आधार पर था, तो स्थिति अलग होगी।

37. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया निर्णय स्पष्ट रूप से अलग है। वी. रवि कुमार (उपरोक्त) में न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि दूसरी शिकायत सुनवाई योग्य होगी यदि उसमें निर्दिष्ट आकस्मिकताएं संतुष्ट हैं।

38. मामले में, पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर पहले के आवेदन को दबाया नहीं गया था, लेकिन नए सिरे से फाइल करने की स्वतंत्रता के बिना खारिज कर दिया गया था। नतीजतन, **उपाध्याय एंड कंपनी (उपरोक्त)** में लागू **सरगुजा ट्रांसपोर्ट (उपरोक्त)** में निर्धारित अनुपात प्रस्तुत मामले में स्पष्ट रूप से आकर्षित होता है।

39. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में कोई संकोच नहीं है कि चूंकि धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन पहले सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 द्वारा दायर किया गया था, इसलिए नए सिरे से दाखिल करने की स्वतंत्रता के बिना दबाव नहीं डाला गया था, इसलिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला सूचनाकर्ता/प्रतिपक्षी-2 दायर किया गया दूसरा आवेदन स्पष्ट रूप से सुनवाई योग्य नहीं था।

40. परिणामस्वरूप प्रस्तुत अपील सफल होती है और इसकी अनुमति दी जा सकती है।

41. तदनुसार इसकी अनुमति है।

42. द्वितीय अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, एस.सी./एस.टी. अधिनियम, कौशांबी द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-192 वर्ष 2014 (राज्य बनाम सुनील कुमार और अन्य) के तहत धारा 304, 308, 323, 504 भ०द०वि० और धारा 3 (2)(वी) एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-कोखराज, जिला-कौशांबी के तहत पारित दिनांक 19.09.2018 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा रद्द किया जाता है।

11. इसके विपरीत, राज्य की ओर से पेश होने वाले श्री अजय कुमार श्रीवास्तव और शिकायतकर्ता/प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता श्री अजय प्रताप सिंह-॥ ने प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय ने आवेदक के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में दिनांक 04.11.2022 का निर्णय पारित करते हुए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग से संबंधित मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित पहले के निर्णयों पर विचार नहीं किया है। और इस प्रकार, दिनांक 04.11.2022 का निर्णय आवेदक के लिए कोई मदद नहीं करेगा।

12. आगे प्रस्तुत किया गया है कि 'पुनर्न्यायनिर्णय' का सिद्धांत आपराधिक मामले/मुद्दे में कार्यवाही में लागू नहीं होगा।

13. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में पारित दिनांक 04.11.2022 के निर्णय में, इस न्यायालय ने मामले के गुण-दोष यानी अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही पर विचार नहीं किया है, जिसके आधार पर धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया गया था और वास्तव में यह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर आधारित है। सरगुजा परिवहन सेवा बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण, मध्य प्रदेश, ग्वालियर और अन्य; (1987) 1 एस.सी.सी. 5, बाद में उपाध्याय एंड कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में नोट किया गया; (1999) 1 एस.सी.सी. 81, जिसमें यह कहते हुए कि दूसरी रिट याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी यदि पहले यानी पहली रिट याचिका को नई याचिका दायर करने के लिए अदालत से अनुमति/अनुमति मांगे बिना वापस ले लिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश XXIII के नियम 1 के उप-नियम (3 और 4) और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमावली 1952 के अध्याय XII के नियम VII के तहत सन्निहित सिद्धांतों पर ध्यान दिया। (संक्षेप में

"नियम वर्ष 1952"), और उसके बाद, देखा कि "उपरोक्त नियम में अंतर्निहित सिद्धांत सार्वजनिक नीति पर गोल है, लेकिन यह संहिता की धारा 11 में निहित रिस ज्यूडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय) के नियम के समान नहीं है जो प्रदान करता है कि कोई भी अदालत किसी भी मुकदमे या मुद्दे की सुनवाई नहीं करेगी जिसमें सीधे या काफी हद तक मुद्दे में मामला सीधे या काफी हद तक उसी के बीच एक पूर्व मुकदमे में जारी किया गया है पक्षों, या पक्षगण के बीच, जिनके तहत वे या उनमें से कोई भी दावा करता है, एक ही शीर्षक के तहत मुकदमा दायर कर रहा है, इस तरह के बाद के मुकदमे या मुकदमे की सुनवाई करने के लिए सक्षम न्यायालय में जिसमें इस तरह के मुद्दे को बाद में उठाया गया है, और सुना गया है और अंत में ऐसे न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया है। रिस जूडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय) का नियम उस मामले पर लागू होता है जहां मुकदमे या मुद्दे की सुनवाई पहले ही हो चुकी है और अंत में न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जा चुका है। नया मुकदमा दायर करने के लिए न्यायालय की अनुमति के बिना किसी वाद को छोड़ने या वापस लेने के मामले में, किसी वाद का कोई पूर्व निर्णय नहीं होता है। या कोई मुद्दा शामिल है, फिर भी, जैसा कि पहले कहा गया है, संहिता प्रदान करती है कि दूसरा वाद संहिता के आदेश XXIII के नियम 1 के उप-नियम (4) में निहित नहीं होगा, जब न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उप-नियम (3) में निर्दिष्ट अनुमति के बिना पहला मुकदमा वापस ले लिया जाता है।

14. यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि सरगुजा ट्रांसपोर्ट (उपरोक्त) के मामले में दूसरी रिट याचिका को रखने के कारणों को ध्यान में रखते हुए यह भी कि (i) प्रस्तुत मामले में, घायल गवाहों अर्थात् राजाराम (अ०सा०-1) और महेंद्र प्रताप सिंह / शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) ने विचारण न्यायालय के समक्ष शपथ पर आवेदक के नाम का संकेत दिया है, दिनांक 08.05.2012 को एन.सी.आर. में नामित किया गया था, जिसे थाना-चंदा, जिला-सुल्तानपुर (लंबित आपराधिक मामले का आधार) में 23.30 बजे दर्ज किया गया था, जिसके अनुसार, आवेदक एन.सी.आर. में संदर्भित अपराध/घटना में शामिल था और यह भी कि (ii) धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन अदालत से बचने के लिए नहीं बल्कि पुष्पा सिंह की मृत्यु से संबंधित वास्तविक कारण से वापस लिया गया था, इस मामले में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

15. उपरोक्त को स्पष्ट करते हुए, यह कहा गया है कि प्रस्तुत मामले में, धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन इस कारण से वापस ले लिया गया था कि धारा 319 द०प्र०स० यानी आवेदन संख्या-30-ख के तहत पहला आवेदन दाखिल करने के बाद, बचाव पक्ष ने सूचित किया कि पुष्पा सिंह, जिसका नाम उक्त आवेदन में इंगित किया गया था, पहले ही समाप्त हो चुका है और इसलिए आवेदन संख्या-30-ख वापस ले लिया गया था और तदनुसार इस आवेदन पर, आदेश 03.10.2022 को पारित किया गया था और उसके बाद 08.12.2022 को दूसरा आवेदन यानी आवेदन संख्या-37-ख को धारा 319 द०प्र०स० के तहत दायर की गई थी।

16. आगे यह कहा गया है कि उपरोक्त आवेदन संख्या-37-ख के लिए, दो आपत्तियां दायर की गई थीं और यह दलील कि दूसरा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं होगा, किसी भी आपत्ति में नहीं लिया गया था।

17. उपरोक्त पर विचार किया और अभिलेखों का अवलोकन किया।

18. उपरोक्त पर उचित विचार करने पर, इस न्यायालय का विचार है कि प्रस्तुत मामले में, निम्नलिखित मुद्दों/प्रश्नों का उत्तर दिया जाना है।

(i) क्या मामले के तथ्यों में, जिसमें दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश घायल गवाहों अर्थात् राजाराम (अ०सा०-1) और महेंद्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) की गवाही पर आधारित है, इस न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए इस आधार पर आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरा आवेदन नया आवेदन दायर करने के लिए न्यायालय से उन्मोचन/स्वतंत्रता/अनुमति मांगे बिना दायर किया दी गई थी; और इसलिए इसे बनाए रखने योग्य नहीं था।

ii) क्या बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय एक प्रति असंगत निर्णय है और ऐसा होने की अनदेखी की जा सकती है।

19. उपरोक्त मुद्दों/प्रश्नों पर निष्कर्ष निकालने के लिए, यह न्यायालय पहले माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित कुछ निर्णयों के कुछ प्रासंगिक प्रस्तर को संदर्भित करमा उचित समझता है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 319 द०प्र०स० के उद्देश्य के संबंध में अवलोकन किया और संबंधित न्यायालय धारा 319 द०प्र०स० के तहत अपनी शक्ति का, जो नीचे दिए गए हैं, प्रयोग किस तरह से करेगा?

(क) हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर- (2014) 3 एस.सी.सी. 92 में प्रस्तुत मामले के संदर्भ में दिए गए हैं: -

"10 [सं. : प्रस्तर-10 को आधिकारिक शुद्धिपत्र संख्या-एफ. 3/ईडीबीजे/2/2014 दिनांक 15-1-2014 के माध्यम से ठीक किया गया। उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 351 (इसके बाद "पुरानी संहिता" के रूप में संदर्भित) का उल्लेख करना उचित होगा, जहां एक समान प्रावधान मौजूद था, जो अदालत को आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को समन करने का अधिकार देता है यदि वह अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हुआ पाया जाता है। हालांकि, जब नई द०प्र०स० का मसौदा तैयार किया जा रहा था, तो विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट को ध्यान में रखा गया था, जहां प्रस्तर-24.80 और 24.81 में इस प्रावधान को और अधिक व्यापक बनाने के लिए सिफारिशें की गई थीं। उक्त सिफारिशें पढ़ती हैं:

"24.80. धारा 351 अदालतों में अपराधियों तक ही सीमित है – कभी-कभी, हालांकि बहुत बार नहीं, ऐसा होता है कि कुछ अभियुक्त के खिलाफ मामले की सुनवाई करने वाला मजिस्ट्रेट साक्ष्य से पाता है कि उसके समक्ष अभियुक्त के अलावा कोई अन्य व्यक्ति भी उसी अपराध में या संबंधित अपराध से संबंधित है। यह केवल उचित है कि मजिस्ट्रेट को कार्यवाही में शामिल होने और बुलाने की शक्ति होनी चाहिए। धारा 351 ऐसी स्थिति

का प्रावधान करती है, लेकिन केवल तभी जब वह व्यक्ति अदालत में उपस्थित हो। इसके बाद उसे हिरासत में लिया जा सकता है और उसके खिलाफ कार्रवाई की जा सकती है। धारा 351 में ऐसे व्यक्ति को तलब करने का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है यदि वह अदालत में उपस्थित नहीं है। इस तरह के प्रावधान से धारा 351 काफी व्यापक हो जाएगी और हम उस स्थिति के लिए स्पष्ट रूप से प्रावधान करना उचित समझते हैं।

24.81. संज्ञान कैसे लिया जाता है? – धारा 351 मानती है कि इसके तहत कार्यवाही करने वाले मजिस्ट्रेट के पास नए मामले का संज्ञान लेने की शक्ति है। हालांकि, यह नहीं बताता है कि मजिस्ट्रेट द्वारा किस तरीके से संज्ञान लिया जाता है। संज्ञान लेने के तरीकों का उल्लेख धारा 190 में किया गया है, और स्पष्ट रूप से संपूर्ण हैं। सवाल यह है कि क्या नए जोड़े गए अभियुक्त के खिलाफ, धारा 190(1)(सी) के तहत मजिस्ट्रेट की अपनी जानकारी पर संज्ञान लिया जाना चाहिए, या केवल उसी तरीके से जिस तरह से आरोपी के खिलाफ अपराध का संज्ञान लिया गया था। ... सवाल महत्वपूर्ण है, क्योंकि दोनों मामलों में जांच और मुकदमे के तरीके अलग-अलग हैं। मौजूदा कानून के तहत वास्तविक स्थिति के बारे में, मतभेद रहे हैं, और हमें लगता है कि इसे स्पष्ट किया जाना चाहिए। हमें ऐसा लगता है कि इस विशेष प्रावधान का मुख्य उद्देश्य यह है कि सभी ज्ञात संदिग्धों के खिलाफ पूरे मामले को तेजी से आगे बढ़ाया जाना चाहिए, और सुविधा के लिए यह आवश्यक है कि नए जोड़े गए अभियुक्त के खिलाफ अन्य अभियुक्तों के खिलाफ उसी तरह से संज्ञान लिया जाना चाहिए। इसलिए, हम धारा 351 को व्यापक बनाने और यह प्रावधान करने का प्रस्ताव करते हैं कि यदि कार्यवाही के दौरान किसी नए व्यक्ति को आरोपी के रूप में जोड़ा जाता है तो संज्ञान लेने के तरीके में कोई अंतर नहीं होगा। बेशक, यह आवश्यक है (जैसा कि पहले से ही प्रदान किया गया है) कि ऐसी स्थिति में नए जोड़े गए अभियुक्त की उपस्थिति में सबूतों को सुना जाना चाहिए।

11. धारा 319 द०प्र०स० जैसा कि आज मौजूद है, यहां उद्धृत किया गया है:

"319. अपराध के दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति--(1) जहां किसी अपराध की किसी जांच या विचारण के दौरान, साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होने के नाते किसी व्यक्ति ने कोई ऐसा अपराध किया है जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है, तो न्यायालय ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकेगा जो उसने किया हुआ प्रतीत होता है।

(2) जहां ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं है, उसे पूर्वोक्त प्रयोजन के लिए, मामले की परिस्थितियों के अनुसार, गिरफ्तार किया जा सकेगा या तलब किया जा सकेगा।

(3) न्यायालय में उपस्थित कोई व्यक्ति, यद्यपि गिरफ्तार नहीं है या समन पर है, फिर भी ऐसे न्यायालय द्वारा उस अपराध की जांच या विचारण के प्रयोजन के लिए हिरासत में रखा जा सकेगा जो उसने किया प्रतीत होता है।

(4) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, तत्-

(क) ऐसे व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही नए सिरे से शुरू की जाएगी, और गवाहों की सुनवाई की जाएगी;
 (ख) खंड (क) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, मामला इस प्रकार आगे बढ़ सकेगा मानो कि ऐसा व्यक्ति अभियुक्त व्यक्ति था जब न्यायालय ने उस अपराध का संज्ञान लिया जिस पर जांच या विचारण शुरू किया गया था। (महत्व सन्निविष्ट)

12. धारा 319 द०प्र०स० सिद्धांत से निकलती है जुडेक्स दमनातुर कम नोसेन्स एब्सोल्वितुर (दोषी को बरी होने पर न्यायाधीश की निंदा की जाती है) और इस सिद्धांत को धारा 319 द०प्र०स० के अधिनियमन के अंतर्निहित दायरे और भावना की व्याख्या करते समय एक प्रकाशस्तंभ के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए।

13. वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करना न्यायालय का कर्तव्य है। जहां जांच एजेंसी किसी भी कारण से वास्तविक दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में पेश नहीं करती है, अदालत उक्त आरोपी को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। सवाल यह है कि धारा 319 द०प्र०स० में परिकल्पित अदालत को किन परिस्थितियों में और किस स्तर पर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए?

14. हमारे सामने जो प्रस्तुतियाँ उठाई गईं, उनमें एक बहुत व्यापक कैनवास शामिल था और अधिवक्ता ने हमें द०प्र०स० के विभिन्न प्रावधानों और उक्त उद्देश्य के लिए जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनके बारे में बताया गया है। विवाद उस चरण के आसपास केंद्रित है जिस पर अदालत द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है और सामग्री जिसके आधार पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

15. यह अभिलेखों पर रखना आवश्यक होगा कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत प्रदत्त शक्ति केवल अदालत पर है। इसे इस संदर्भ में समझा जाना चाहिए कि धारा 319 द०प्र०स० केवल अदालत को ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार देती है। आपराधिक अदालतों के हमारे पदानुक्रम में "अदालत" शब्द को द०प्र०स० की धारा 6 के तहत परिभाषित किया गया है, जिसमें सत्र न्यायालय, न्यायिक मजिस्ट्रेट, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के साथ-साथ कार्यकारी मजिस्ट्रेट भी शामिल हैं। सत्र न्यायालय को द०प्र०स० की धारा 9 में परिभाषित किया गया है और न्यायिक मजिस्ट्रेटों की अदालतों को धारा 11 के तहत परिभाषित किया गया है। मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेटों की अदालतों को द०प्र०स० की धारा 16 के तहत परिभाषित किया गया है। जो अदालतें दंड संहिता, 1860 या किसी अन्य कानून के तहत किए गए अपराधों की सुनवाई कर सकती हैं, उन्हें पहली अनुसूची सपठित द०प्र०स० की धारा 26 के तहत निर्दिष्ट किया गया है। व्याख्यात्मक नोट (2) प्रथम अनुसूची के तहत "अपराधों का वर्गीकरण" शीर्षक के तहत "प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट" और "किसी भी मजिस्ट्रेट" की अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट करता है, जिसमें मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट शामिल हैं जिन्हें उक्त अनुसूची के तहत अपराधों की सुनवाई करने का अधिकार है, लेकिन कार्यकारी मजिस्ट्रेट शामिल नहीं हैं।

16. यह इस स्तर पर है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत इस्तेमाल किए गए शब्दों की तुलना को धारा 2(जी) के तहत इस्तेमाल किए गए शब्दों से अलग रूप से समझा जाना चाहिए, जो एक मजिस्ट्रेट या अदालत द्वारा परीक्षण के अलावा एक अन्य जांच को परिभाषित करता है। यहां विधायिका ने दो शब्दों का उपयोग किया है,

अर्थात् मजिस्ट्रेट या अदालत, जबकि धारा 319 द०प्र०स० के तहत, जैसा कि ऊपर बताया गया है, केवल "अदालत" शब्द का पाठ किया गया है। यह विधायिका द्वारा इस बात पर जोर देने के लिए किया गया है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल अदालत द्वारा किया जा सकता है, न कि किसी भी अधिकारी द्वारा जो अदालत के रूप में कार्य नहीं करता है। इस प्रकार, मजिस्ट्रेट जो अदालत के रूप में कार्य नहीं कर रहा है या शक्तियों का प्रयोग नहीं कर रहा है, वह मुकदमे के अलावा किसी विशेष कार्यवाही में जांच कर सकता है, लेकिन इस प्रकार एकत्र की गई सामग्री जांच या मुकदमे के दौरान अदालत द्वारा नहीं होगी। इसलिए, संक्षेप में, निष्कर्ष यह है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए, यह केवल सत्र न्यायालय या मजिस्ट्रेट की अदालत है जो द०प्र०स० के तहत एक अदालत के रूप में कर्तव्यों का पालन कर रही है जो उक्त धारा के उद्देश्य के लिए उसके समक्ष सामग्री का उपयोग कर सकती है।

17. धारा 319 द०प्र०स० अदालत को किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में आरोपी नहीं है। इस प्रकार, जिस व्यक्ति के खिलाफ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए समन जारी किया जाता है, जरूरी नहीं कि वह पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहा आरोपी हो। वह या तो धारा 173 द०प्र०स० के तहत दायर आरोपपत्र के कॉलम 2 में नामित व्यक्ति हो सकता है या एक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम अदालत के समक्ष किसी भी सामग्री में प्रकट किया गया है, जिस पर अपराध की सुनवाई के उद्देश्य से विचार किया जाना है, लेकिन जांच नहीं की गई है। वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी मिलीभगत का संकेत दिया जा सके और अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

18. विधायिका को यह नहीं माना जा सकता है कि उसने सभी परिस्थितियों की कल्पना की है और इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों को पूर्ण रूप से लागू करे ताकि किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे अदालत को किसी अपराध की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते समय निपटना पड़ सके और किसी ऐसे व्यक्ति को अनुमति न दी जाए जो मुकदमे में दोषी न ठहराए जाने के बावजूद मुकदमा चलाने के लिए मुकदमा चलाने का हकदार है। उसकी मिलीभगत की संभावना जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से एकत्र की जा सकती है।

19. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए उस पर एक कर्तव्य डाला गया है और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालतों के साथ ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से इनकार करना अनुचित होगा, जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त, कभी-कभी, जांच और/या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके भाग जाता है। मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल है कि एक अभियुक्त कई बार जांच या जांच के चरण में भी खुद को बरी करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

43. न्यायालय इस धारणा के साथ आगे नहीं बढ़ सकता है कि कानून को लागू करने वाली विधायिका ने गलती की है और जहां कानून की भाषा स्पष्ट और स्पष्ट है, अदालत कानून की भाषा के पीछे नहीं जा सकती है

ताकि राजनीतिक सुधारक या विधायिका के लिए एक बुद्धिमान अधिवक्ता की भूमिका निभाने वाले शब्द को जोड़ा या घटाया जा सके। न्यायालय को इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि विधायिका ने जो कहा है उसका इरादा था और भले ही वाक्यांशविज्ञान आदि में कुछ दोष हो, उस दोष को दूर करना न्यायालय के अलावा अन्य लोगों के लिए है। कानून में इस्तेमाल की गई भाषा के लिए कोई हिंसा किए बिना व्याख्या करने की आवश्यकता है। अदालत इस कारण से कानून को फिर से लिख सकती है, फिर से तैयार नहीं कर सकती है या फिर से तैयार नहीं कर सकती है कि उसके पास कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं है।

45. इस न्यायालय ने रोहिताश कुमार बनाम ओम प्रकाश शर्मा [(2013) 11 एस.सी.सी. 451:ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 30] (एस.सी.सी. पीपी 460-61, प्रस्तर-27-29) में इस न्यायालय के पहले के विभिन्न निर्णयों पर भरोसा करने के बाद अवधारित किया:

"27. न्यायालय को इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि, किसी कानून के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, वह न तो एक शब्द जोड़ सकता है, न ही घटा सकता है। ... एक खंड की व्याख्या उसके सभी भागों को एक साथ पढ़कर की जानी है, और उसके किसी भी हिस्से को छोड़ने की अनुमति नहीं है। न्यायालय इस धारणा के साथ आगे नहीं बढ़ सकता है कि विधायिका ने कानून को लागू करते समय गलती की है; इसे इस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए कि विधायिका ने जो कहा है उसका इरादा था; यहां तक कि यदि संविधि को तैयार करने में इसके द्वारा प्रयोग किए गए वाक्यांशविज्ञान में कुछ दोष है, और यह न्यायालय के लिए अधिनियम में छोड़ी गई कमियों को पूरा करने के लिए जोड़ने और संशोधन करने या निर्माण करने के लिए खुला नहीं है।

28. कानून को कुछ धारणाओं के प्रकाश में नहीं माना जाना चाहिए जो विधायिका के मन में हो सकती हैं, या विधायिका से क्या कहने की उम्मीद की जाती है, या विधायिका ने क्या किया होगा, या विधायिका का कर्तव्य क्या कहा या किया था। अदालतों को कानून को वैसा ही प्रशासित करना होता है जैसा उन्हें लगता है, और अदालत के लिए किसी भी वास्तविक या काल्पनिक कठिनाई से बचने के लिए अधिनियमन की स्पष्ट भाषा को तोड़-मरोड़ कर पेश करने की अनुमति नहीं है, जो इस तरह की शाब्दिक व्याख्या का कारण बन सकती है।

...

29. ... प्रावधान की व्याख्या करने की आड़ में, अदालत के पास एक भी शब्द जोड़ने या घटाने की शक्ति नहीं है, क्योंकि यह व्याख्या नहीं, बल्कि कानून होगी।

(मूल में बल वर्धित)

63. प्रावधान और उपर्युक्त परिभाषाएँ स्पष्ट रूप से सुझाव देती हैं कि यह एक विस्तृत परिभाषा है। जहां भी "अर्थ और समावेश" शब्दों का उपयोग किया जाता है, यह इस तथ्य का संकेत है कि परिभाषा "एक कठिन और तेज़ परिभाषा है", और परिभाषा में रखी गई अभिव्यक्ति को कोई अन्य अर्थ नहीं दिया जा सकता है। यह अर्थ की एक विस्तृत व्याख्या को इंगित करता है, जिसे अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, इन शब्दों या अभिव्यक्ति के साथ हमेशा जोड़ा जाना चाहिए। (महालक्ष्मी ऑयल मिल्स बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(1989) 1 एस.सी.सी.

164: 1989 एस.सी.सी. (कर) 56 : ए.आई.आर. 1989 एस.सी. 335] , पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय [(1990) 3 एस.सी.सी. 682: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 71] , पी. कासिलिंगम बनाम पीएसजी कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी [1995 सप्प (2) एस.सी.सी. 348 : ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 1395], हमदर्द (वक्फ) लेबोरेटरीज बनाम लेबर कमर्श। [(2007) 5 एस.सी.सी. 281: (2007) 2 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 166] और पॉन्ड्स इंडिया लिमिटेड बनाम सीटीटी [(2008) 8 एस.सी.सी. 369] ।

(बी) राजेश और अन्य बनाम हरियाणा राज्य के मामले में, (2019) 6 एस.सी.सी. 368 में रिपोर्ट किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरदीप सिंह (उपरोक्त) और बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एस.सी.सी. 706: (2017) 4 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 144 के मामलों में की गई टिप्पणियों पर विचार किया, साथ ही धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने में अभियुक्तों को बुलाने से संबंधित मुद्दों पर अभिव्यक्ति 'साक्ष्य' और विभिन्न अन्य घोषणाओं पर भी विचार किया। जो रिपोर्ट के निम्नलिखित भाग से स्पष्ट है: -

"3.5. बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य [बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एस.सी.सी. 706: (2017) 4 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 144], इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए अपीलकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बसंत द्वारा यह जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि, जैसा कि इस न्यायालय ने देखा, केवल शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के बयान के आधार पर, उनके तथाकथित मौखिक/नेत्र संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में पेश नहीं किया जा सकता है। अपीलकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि, जैसा कि इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में देखा है, मुकदमे के दौरान दर्ज किया गया ऐसा "सबूत" उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं है जो मामले की जांच के समय दर्ज द०प्र०स० की धारा 161 के तहत पहले से ही मौजूद थे। उपरोक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि, किसी भी मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए गए सबूतों को देखने के लिए बाध्य था, जिससे पता चलता है कि अपराध के समय आरोपी मौजूद नहीं थे। यह प्रस्तुत किया जाता है कि, प्रस्तुत मामले में, थानाध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत आवेदनों पर विद्वान मजिस्ट्रेट ने वास्तव में अपीलकर्ता-अभियुक्त को यहां आरोपमुक्त कर दिया और थानाध्यक्ष द्वारा प्रस्तुत आवेदनों को अनुमति दे दी, जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि अपीलकर्ता निर्दोष हैं और वे घटना के समय उपस्थित नहीं थे। यह प्रस्तुत किया जाता है कि इसलिए उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका को खारिज करने और अपीलकर्ता-अभियुक्त को धारा 148, 149, 323, 324, 325, 302, 307 और 506 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करने में गलती की है, जिसे धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था।

6. उपरोक्त प्रश्न/मुद्दे पर विचार करते समय, इस न्यायालय के कुछ निर्णयों को संदर्भित करने और उन पर विचार करने की आवश्यकता है।

6.1. पहला निर्णय जिस पर विचार करना आवश्यक है, वह **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में इस न्यायालय की संविधान पीठ का निर्णय है, जिसका बाद के निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा लगातार पालन किया गया है।

6.2. **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में, इस न्यायालय को धारा 319 द०प्र०स० के तहत मजिस्ट्रेट की शक्तियों के दायरे पर विस्तार से विचार करने का अवसर मिला, धारा 319 द०प्र०स० का उद्देश्य और उद्देश्य, आदि। उक्त मामले में, निम्नलिखित पांच प्रश्न इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आए: (एस.सी.सी. पृष्ठ 112, प्रस्तर-6)

"6. ... 6.1.(i) धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किस चरण में किया जा सकता है?

6.2.(ii) क्या धारा 319(1) द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द "साक्ष्य" का अर्थ केवल जिरह द्वारा परीक्षण किए गए साक्ष्य हो सकता है या अदालत संबंधित गवाह के मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान के आधार पर भी उक्त प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकती है?

6.3.(iii) क्या धारा 319(1) द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द "साक्ष्य" का उपयोग व्यापक अर्थों में किया गया है और इसमें जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या "साक्ष्य" शब्द मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य तक सीमित है?

6.4.(iv) किसी अभियुक्त को अभियोग लगाने के लिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की प्रकृति क्या है? क्या धारा 319(1) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब अदालत संतुष्ट हो कि समन किए गए अभियुक्त को सभी संभावना में दोषी ठहराया जाएगा?

6.5.(v) क्या धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति उन व्यक्तियों तक फैली हुई है जिनका नाम प्राथमिकी में नहीं है या प्राथमिकी में नामित नहीं है, लेकिन उन पर आरोप नहीं लगाया गया है या जिन्हें बरी कर दिया गया है?

6.3. उपरोक्त प्रश्नों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया और अवधारित किया: **(हरदीप सिंह मामला [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी.**

(सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पीपी 114-17, 123 और 125-26, प्रस्तर-12-14, 17-19, 22, 47 और 53-56)

"12. धारा 319 द०प्र०स० सिद्धांत से निकलती है जुडेक्स दमनातुर कम नोसेन्स एब्सोल्विटुर (दोषी को बरी होने पर न्यायाधीश की निंदा की जाती है) और इस सिद्धांत को धारा 319 द०प्र०स० के अधिनियमन के अंतर्निहित दायरे और भावना की व्याख्या करते समय एक प्रकाशस्तंभ के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए।

13. वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करना न्यायालय का कर्तव्य है। जहां जांच एजेंसी किसी भी कारण से वास्तविक दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में पेश नहीं करती है, अदालत उक्त आरोपी को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। सवाल यह है कि धारा 319 द०प्र०स० में परिकल्पित अदालत को किन परिस्थितियों में और किस स्तर पर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए?

14. हमारे सामने जो प्रस्तुतियाँ उठाई गईं, उनमें एक बहुत व्यापक कैनवास शामिल था और अधिवक्ता ने हमें द०प्र०स० के विभिन्न प्रावधानों और उक्त उद्देश्य के लिए जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनके बारे में बताया गया है। विवाद उस चरण के आसपास केंद्रित है जिस पर अदालत द्वारा ऐसी शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है और सामग्री जिसके आधार पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

17. धारा 319 द०प्र०स० अदालत को किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में आरोपी नहीं है। इस प्रकार, जिस व्यक्ति के खिलाफ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए समन जारी किया जाता है, जरूरी नहीं कि वह पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहा आरोपी हो। वह या तो धारा 173 द०प्र०स० के तहत दायर आरोपपत्र के कॉलम 2 में नामित व्यक्ति हो सकता है या एक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम अदालत के समक्ष किसी भी सामग्री में प्रकट किया गया है, जिस पर अपराध की सुनवाई के उद्देश्य से विचार किया जाना है, लेकिन जांच नहीं की गई है। वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी मिलीभगत का संकेत दिया जा सके और अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

18. विधायिका को यह नहीं माना जा सकता है कि उसने सभी परिस्थितियों की कल्पना की है और इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों को पूर्ण रूप से लागू करे ताकि किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे अदालत को किसी अपराध की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते समय निपटना पड़ सके और किसी ऐसे व्यक्ति को अनुमति न दी जाए जो मुकदमे में दोषी न ठहराए जाने के बावजूद मुकदमा चलाने के लिए मुकदमा चलाने का हकदार है। उसकी मिलीभगत की संभावना जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से एकत्र की जा सकती है।

19. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए उस पर एक कर्तव्य डाला गया है और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालतों के साथ ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से

इनकार करना अनुचित होगा, जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त, कभी-कभी, जांच और/या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके भाग जाता है। मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल है कि एक अभियुक्त कई बार जांच या जांच के चरण में भी खुद को बरी करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

22. हमारी राय में, धारा 319 द०प्र०स० एक सक्षम प्रावधान है जो अदालत को किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही के लिए उचित कदम उठाने का अधिकार देता है, जो मुकदमे के तहत अपराध करने के लिए आरोपी नहीं है।

47. चूंकि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद, अदालत जांच के चरण में पहुंच जाती है और जैसे ही अदालत आरोप तय करती है, मुकदमा शुरू हो जाता है, और इसलिए, धारा 319(1) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग आरोप-पत्र दायर होने के बाद और निर्णय सुनाए जाने से पहले, धारा 207/208 द०प्र०स० के चरण को छोड़कर, किसी भी समय किया जा सकता है। प्रतिबद्धता, आदि, जो केवल एक पूर्व-परीक्षण चरण है, जिसका उद्देश्य प्रक्रिया को गति देना है। इस चरण को सही अर्थों में न्यायिक कदम नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसके लिए केवल मन के न्यायिक अनुप्रयोग के बजाय दिमाग के अनुप्रयोग की आवश्यकता होती है। इस पूर्व-परीक्षण चरण में, मजिस्ट्रेट को न्यायिक के बजाय प्रशासनिक कार्य की प्रकृति में कार्य करने की आवश्यकता होती है जैसे कि द०प्र०स० की धारा 207 और 208 का अनुपालन सुनिश्चित करना, और यदि यह विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो मामला करने के लिए। इसलिए, हमारे लिए यह निष्कर्ष निकालना वैध होगा कि धारा 207 से 209 द०प्र०स० के चरण में मजिस्ट्रेट को धारा 319 द०प्र०स० के स्पष्ट प्रावधान के अनुसार, मामले के गुण-दोष पर अपना दिमाग लगाने और यह निर्धारित करने से मना किया जाता है कि क्या किसी आरोपी को सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे का सामना करने के लिए जोड़ने या घटाने की आवश्यकता है।

53. इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक मामला अदालत द्वारा जांच या मुकदमे के चरण तक नहीं पहुंच जाता, तब तक धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। ...

54. हमारी राय में, जांच का चरण अपने सख्त कानूनी अर्थों में किसी भी सबूत पर विचार नहीं करता है, और न ही विधायिका इस पर विचार कर सकती है क्योंकि साक्ष्य के लिए मंच अभी तक नहीं आया है। अदालत के पास केवल अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र की गई सामग्री है और इस स्तर पर अदालत प्रथम दृष्टया यह पता लगाने के लिए अपना दिमाग लगा सकती है कि क्या कोई व्यक्ति, जो आरोपी हो सकता है, को गलती से अभियोग लगाने से हटा दिया गया है या अभियोजन एजेंसियों द्वारा जानबूझकर बाहर रखा गया है। यह सुनिश्चित करने के लिए और भी अधिक आवश्यक है कि जांच और अभियोजन एजेंसियों ने अदालत के सामने उन व्यक्तियों को लाने में निष्पक्ष रूप से काम किया है जो उन व्यक्तियों पर मुकदमा चलाने के लायक हैं और किसी भी व्यक्ति को जानबूझकर परिरक्षित होने से रोकने के लिए जब उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए था। यह न्यायिक प्रणाली में विश्वास पैदा करने के लिए आवश्यक है, जिसके तहत अदालत को जांच के

चरण में भी ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार दिया जाना चाहिए और यही कारण है कि विधायिका ने जानबूझकर अलग-अलग शब्दों का उपयोग किया है, अर्थात् धारा 319 द०प्र०स० में जांच या मुकदमा।

55. तदनुसार, हम मानते हैं कि अदालत धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी कर सकती है जब मुकदमे की कार्यवाही आगे बढ़े और साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के साथ शुरू हो जाए और असाधारण परिस्थितियों में भी जैसा कि ऊपर बताया गया है।

56. ... धारा के प्रयोजन के लिए जो आवश्यक है वह यह है कि किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ सबूत दिखाई देने चाहिए जिसके खिलाफ कार्यवाही नहीं की गई है और कार्यवाही का चरण अप्रासंगिक है। जहां शिकायतकर्ता कई व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही में सावधानी बरतता है, लेकिन अदालत की राय है कि कुछ अन्य व्यक्तियों की मिलीभगत की ओर इशारा करते हुए कुछ सबूत प्रतीत होते हैं, धारा 319 द०प्र०स० एक सशक्त प्रावधान के रूप में कार्य करती है जो अदालत/मजिस्ट्रेट को ऐसे अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने में सक्षम बनाती है। धारा 319 द०प्र०स० का उद्देश्य पूर्ण न्याय करना है और यह सुनिश्चित करना है कि जिन व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए था, उन पर भी मुकदमा चलाया जाना चाहिए। इसलिए, शिकायत मामले में मुकदमे के चरण में धारा 319 द०प्र०स० की शक्तियों का उपयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती है, जब शिकायतकर्ता के साथ-साथ उसके गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए जा रहे हैं।

6.4. प्रश्न (iii) का उत्तर देते समय, अर्थात्, क्या धारा 319(1) द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द "साक्ष्य" का उपयोग व्यापक अर्थों में किया गया है और इसमें जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या "साक्ष्य" शब्द मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य तक सीमित है, इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में निम्नानुसार अवलोकन किया है और कहा है: (हरदीप सिंह मामला [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पीपी 126-27 और 131-32, प्रस्तर-58-59, 78 और 82-85)

"58. सवालों के जवाब देने और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने में विचारण अदालतों द्वारा सामना की जा रही बाधा को हल करने के लिए, इस मुद्दे की जांच उन परिस्थितियों की जांच करके की जानी चाहिए जो अदालत के लिए ऐसी शक्तियों को लागू करने की स्थिति पैदा करती हैं। किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए अदालत द्वारा इस तरह के निष्कर्ष निकालने की ओर ले जाने वाली परिस्थितियां अदालत के सामने आने वाले तथ्यों और सामग्री की उपलब्धता से उत्पन्न होती हैं और ऐसे व्यक्ति को कथित अपराध के सहयोगी के रूप में बुलाने का आधार बनाया जाता है। सामग्री को अपराध के कमीशन (गठन) में व्यक्ति की मिलीभगत का खुलासा करना चाहिए, जो कि अपराध की किसी भी जांच या परीक्षण के दौरान साक्ष्य से प्रकट होने वाली सामग्री होनी चाहिए। धारा 319 द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द इंगित करते हैं कि सामग्री "जहां... यह अदालत के समक्ष सबूतों से प्रतीत होता है।

59. इससे पहले कि हम इस मुद्दे का उत्तर दें, आइए हम "साक्ष्य" शब्द के अर्थ की जांच करें। साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, "साक्ष्य" का अर्थ है और इसमें शामिल हैं:

(1) सभी बयान जो अदालत जांच के तहत तथ्य के मामलों के संबंध में गवाहों द्वारा उसके समक्ष किए जाने की अनुमति देती है या करने की आवश्यकता है; ऐसे बयानों को मौखिक साक्ष्य कहा जाता है;

(2) न्यायालय के निरीक्षण के लिए प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों सहित सभी दस्तावेज; ऐसे दस्तावेजों को दस्तावेजी साक्ष्य कहा जाता है।

78. इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 319 द०प्र०स० में "साक्ष्य" शब्द का अर्थ केवल ऐसे साक्ष्य हैं जो अदालत के समक्ष बयानों के संबंध में किए गए हैं, और दस्तावेजों के संबंध में अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं। यह केवल ऐसे सबूत हैं जिन्हें मजिस्ट्रेट या अदालत द्वारा यह तय करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना है या नहीं, न कि जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर।

82. यह पूर्व-परीक्षण चरण एक ऐसा चरण है जहां शामिल अपराधों के साक्ष्य पर कोई निर्णय नहीं होता है और इसलिए, आरोप पत्र के साथ सामग्री को अदालत के समक्ष लाए जाने के बाद, आरोप तय करने के साथ प्रभावी ढंग से आगे बढ़ने के लिए इसकी जांच की जा सकती है। आरोप तय होने के बाद, अभियोजन पक्ष को साक्ष्य पेश करने के लिए कहा जाता है और जब तक ऐसा नहीं किया जाता है, तब तक साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के सख्त कानूनी अर्थों में कोई सबूत उपलब्ध नहीं है। अभियुक्त को अदालत के समक्ष लाकर अपराध की वास्तविक सुनवाई अभी तक शुरू नहीं हुई है। जो उपलब्ध है वह वह सामग्री है जो आरोपपत्र के साथ अदालत के समक्ष प्रस्तुत की गई है। ऐसी स्थिति में, अदालत के पास केवल प्रारंभिक सामग्री होती है जिसे आरोप तय करके मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए अदालत के समक्ष विचार के लिए रखा गया है।

83. इसलिए, यह कोई ऐसी सामग्री नहीं है जिसका उपयोग किया जा सकता है, बल्कि यह है कि अदालत द्वारा संज्ञान लेने के बाद सामग्री ली जाती है, जो किसी अपराध की जांच करते समय या उसकी कोशिश करते समय उसके पास उपलब्ध होती है, कि अदालत अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर किसी भी व्यक्ति को बुलाने के लिए सहायक कारणों का उपयोग कर सकती है या ध्यान में रख सकती है, जो ऐसी सामग्री के आधार पर हो सकता है, जिसे अपराध के कमीशन (गठन) में एक सहयोगी माना जाता है। जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह यह है कि वह सामग्री जो अदालत के समक्ष दर्ज की गई वास्तव में सबूत नहीं है, लेकिन अदालत द्वारा एकत्र की गई सामग्री है, जिसका उपयोग आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को बुलाने के उद्देश्य से पहले से दर्ज किए गए सबूतों की पुष्टि करने के लिए किया जा सकता है। ...

84. इसलिए "साक्ष्य" शब्द को मुकदमे के चरण में और, जैसा कि पहले चर्चा की गई है, जांच के चरण में भी, जैसा कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत उपयोग किया जाता है, दोनों को इसके व्यापक अर्थों में समझा जाना

चाहिए। इसलिए, अदालत को यह समझा जाना चाहिए कि उसके समक्ष पेश की गई किसी भी सामग्री के आधार पर किसी भी व्यक्ति को तलब करने के बाद उसके खिलाफ कार्रवाई करने की शक्ति है। मुकदमे के दौरान साक्ष्य पेश किए जाने के बाद ऐसी सामग्री पर ऐसी शक्तियों को सावधानी से लागू करने के लिए अदालत का कर्तव्य और दायित्व अधिक कठिन हो जाता है।

85. यहां की गई चर्चा और ऊपर निकाले गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, उपरोक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सबूतों के अलावा, संज्ञान लेने के बाद और मुकदमे शुरू होने से पहले अदालत द्वारा प्राप्त की गई कोई भी सामग्री का उपयोग केवल पुष्टि के लिए और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए अदालत द्वारा दर्ज किए गए सबूतों का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार, "सबूत" मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सबूतों तक ही सीमित है।

(मूल में बल वर्धित)

6.5. प्रश्न (ii) का उत्तर देते समय, अर्थात्, क्या धारा 319(1) द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द "साक्ष्य" का अर्थ है कि मुख्य परीक्षा में उत्पन्न होने के रूप में या जिरह के साथ, उपरोक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन और व्यवस्था दी है: (हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पीपी 132-34, (प्रस्तर-86-92)

"86. यहां संदर्भित दूसरा प्रश्न धारा 319 द०प्र०स० के तहत उपयोग किए गए "साक्ष्य" शब्द के संबंध में है, जो संदेह के लिए कोई जगह नहीं छोड़ता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के तहत समझा गया साक्ष्य गवाहों का बयान है जो मुकदमे के दौरान दर्ज किया गया है और साक्ष्य अधिनियम के अनुसार दस्तावेजी साक्ष्य हैं। जिसमें साक्ष्य अधिनियम में दस्तावेज और भौतिक साक्ष्य भी शामिल हैं। इस तरह के साक्ष्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान से शुरू होते हैं, इसलिए, यह साक्ष्य है जिसमें मुख्य परीक्षा के दौरान बयान शामिल है। राकेश [राकेश बनाम हरियाणा राज्य, (2001)6 एस.सी.सी. 248: 2001 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1090] (एस.सी.सी. पी. 252, प्रस्तर-10)

'10. ... यह सच है कि अंत में मुकदमे के समय अभियुक्त को गवाह से उसकी सत्यता का परीक्षण करने के लिए जिरह करने का अवसर दिया जाना चाहिए। लेकिन धारा 319 द०प्र०स० के तहत अदालत की शक्ति का प्रयोग करते समय यह चरण नहीं उठेगा। एक बार बयान दर्ज हो जाने के बाद, इसमें कोई संदेह नहीं है कि कोई जिरह नहीं है, यह प्रथम दृष्टया सामग्री होगी जो सत्र न्यायालय को यह तय करने में सक्षम बनाएगी कि धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं।

87. रणजीत सिंह [रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1998) 7 एस.सी.सी. 149: 1998 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1554] (एस.सी.सी. पी. 156, प्रस्तर-20)

20. ... अदालत के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उक्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए पूरे सबूत एकत्र किए जाने तक इंतजार करे।

88. मो. शफी [मो. शफी बनाम मो. रफीक, (2007) 14 एस.सी.सी. 544: (2009) 1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 889] यह माना गया था कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए अदालत की संतुष्टि एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने की संतुष्टि है जो आरोपी नहीं है, लेकिन जिसके खिलाफ सबूत हैं, जिसके लिए अदालत जिरह समाप्त होने तक भी इंतजार कर सकती है और ऐसा करने में कोई अवैधता नहीं होगी। हरभजन सिंह बनाम हरभजन सिंह के मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है। पंजाब राज्य [हरभजन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 13 एस.सी.सी. 608: (2010) 1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1135] हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 16 एस.सी.सी. 785: (2010) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 355] मो. शफी [मो. शफी बनाम मो. रफीक, (2007) 14 एस.सी.सी. 544: (2009) 1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 889] में इस न्यायालय ने, जैसा कि यह माना गया था कि उक्त निर्णय में निर्धारित किया गया था कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए, अदालत को आवश्यक रूप से तब तक इंतजार करना होगा जब तक कि गवाह से बिरह नहीं की जाती है और सबूतों की पूरी मूल्यांकन के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्या धारा 319 द०प्र०स० के तहत आगे बढ़ने की आवश्यकता है। 89. हमने उपरोक्त मामलों में व्यक्त किए गए विविध विचारों पर अपना विचारशील विचार किया है। एक बार मुख्य परीक्षा आयोजित होने के बाद, बयान अभिलेखों का हिस्सा बन जाता है। यह कानून के अनुसार और सही अर्थों में साक्ष्य है, क्योंकि अधिक से अधिक, इसका खंडन किया जा सकता है। किसी साक्ष्य का खंडन या विवाद किया जाना विचारणीय, प्रासंगिकता और विश्वास का विषय बन जाता है, जो न्यायालय द्वारा निर्णय का चरण होता है। फिर भी यह सबूत है और यह इस आधार पर महत्वपूर्ण है जिसके आधार पर अदालत किसी अन्य व्यक्ति की मिलीभगत के बारे में प्रथम दृष्टया राय पर आ सकती है जो अपराध से जुड़ा हो सकता है।

90. जैसा कि मो. शफी [मो. शफी बनाम मो. रफीक, (2007) 14 एस.सी.सी. 544: (2009) 1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 889] और हरभजन सिंह [हरभजन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2009) 13 एस.सी.सी. 608: (2010) 1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1135], धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए जो कुछ भी आवश्यक है, वह यह है कि, अदालत को यह प्रतीत होना चाहिए कि कोई अन्य व्यक्ति भी जो मुकदमे का सामना नहीं कर रहा है, हो सकता है कि वह अपराध में भी शामिल हो। इस शक्ति के प्रयोग के लिए शर्त प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण के समान है जिस पर मजिस्ट्रेट को अपराध का संज्ञान लेने के लिए आना चाहिए। इसलिए, इस तरह की राय पर पहुंचने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों के संबंध में कोई कठोर फार्मूला नहीं रखा जा सकता है और न ही रखा जाना चाहिए और, यदि मजिस्ट्रेट/अदालत मुख्य परीक्षा में पेश होने वाले साक्ष्य के आधार पर भी आश्वस्त है, तो वह धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकता है और ऐसे अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुभाग में "ऐसे व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है" शब्दों का भी उपयोग किया जाना चाहिए। इसलिए, इस स्तर पर परीक्षा और जिरह करके और उसके बाद ऐसे व्यक्ति के प्रत्यक्ष कार्य पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में,

यह मिनी-विचारण है जो उस व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित करेगा जिसे आरोपी के रूप में पेश किया जाना चाहिए, बजाय इसके कि कोई जिरह न हो, क्योंकि धारा 319 द०प्र०स० की उप-धारा (4) के आलोक में, वह व्यक्ति एक नए मुकदमे का हकदार होगा जहां उसके पास अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह करने और बचाव पक्ष के गवाहों की जांच करने और उस पर अपनी दलीलें आगे बढ़ाने के अधिकार सहित सभी अधिकार होंगे। इसलिए, मुख्य परीक्षा के आधार पर भी, अदालत या मजिस्ट्रेट किसी व्यक्ति के खिलाफ तब तक कार्रवाई कर सकता है जब तक कि अदालत संतुष्ट हो जाती है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ पेश होने वाले सबूत ऐसे हैं कि प्रथम दृष्टया ऐसे व्यक्ति को मुकदमे का सामना करने की आवश्यकता होती है। वास्तव में, जिरह द्वारा बिना परीक्षण किए गए मुख्य परीक्षा, निस्संदेह अपने आप में, एक सबूत है।

91. इसके अलावा, हमारी राय में, गवाह की जिरह समाप्त होने तक प्रतीक्षा करने के पीछे कोई तर्क प्रतीत नहीं होता है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, जिस व्यक्ति को आरोपी के रूप में पेश किया जाना था, वह किसी भी तरह से मुकदमे में भाग नहीं ले रहा है। यहां तक कि अगर जिरह को ध्यान में रखा जाना है, तो आरोपी के रूप में आरोपित होने की मांग करने वाला व्यक्ति धारा 319 द०प्र०स० के तहत आदेश पारित करने से पहले गवाहों से जिरह नहीं कर सकता है, क्योंकि द०प्र०स० द्वारा इस तरह की प्रक्रिया पर विचार नहीं किया गया है। दूसरे, राज्य हमेशा अधिक व्यक्तियों को आरोपी के रूप में नामित करने का विरोध या आपत्ति नहीं करेगा क्योंकि यह केवल अभियोजन पक्ष को सबूतों की श्रृंखला को पूरा करने में मदद करेगा, जब तक कि गवाह पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहे व्यक्तियों की भूमिका को समाप्त नहीं कर रहा है। इसके अलावा, द०प्र०स० की धारा 299 अदालत को उसमें उल्लिखित परिस्थितियों में आरोपी की अनुपस्थिति में सबूत दर्ज करने में सक्षम बनाती है।

92. इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हम मानते हैं कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग मुख्य परीक्षा के पूरा होने के चरण में किया जा सकता है और अदालत को तब तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि उक्त साक्ष्य का जिरह पर परीक्षण नहीं किया जाता है क्योंकि यह अदालत की संतुष्टि है जिसे अदालत द्वारा दर्ज किए गए कारणों से एकत्र किया जा सकता है, किसी अन्य व्यक्ति (व्यक्तियों) की मिलीभगत के संबंध में, अपराध में मुकदमे का सामना नहीं कर रहा है।

(मूल में बल वर्धित)

6.6. प्रश्न (iv) का उत्तर देते समय, अर्थात्, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की डिग्री क्या है, इस न्यायालय ने इस बिंदु पर पहले के विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद, निम्नानुसार अवलोकन किया है और कहा है: (हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पी.138, प्रस्तर-105-06)

105. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियां वारंट करती हैं। इसका प्रयोग नहीं

किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है। केवल तभी जब अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मिलते हैं कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए न कि आकस्मिक और घुड़सवार तरीके से।

106. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जिस परीक्षण को लागू किया जाना है, वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि सबूत, यदि अपुष्ट हो जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी। इस तरह की संतुष्टि के अभाव में, अदालत को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 द०प्र०स० में, यदि 'सबूतों से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने आरोपी नहीं होने के नाते कोई अपराध किया है' तो यह प्रदान करने का उद्देश्य "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर आरोपी के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है" शब्दों से स्पष्ट है। इस्तेमाल किए गए शब्द "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है" नहीं हैं। इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत काम करने वाली अदालत के लिए आरोपी के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है। (मूल में बल वर्धित)

6.7. प्रश्न (v) का उत्तर देते समय, अर्थात्, किन स्थितियों में धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है: प्राथमिकी में नामजद हैं, लेकिन आरोप पत्र नहीं लगाया गया है या आरोप-पत्र नहीं दिया गया है या उन्मोचन दे दी गई है, इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा और अवधारित किया है: (हरदीप सिंह मामला [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पीपी 139 और 141, प्रस्तर-112 और 116)

"112. हालाँकि, एक व्यक्ति के संबंध में एक बड़ा अंतर है जिसे उन्मोचन दे दी गई है। एक व्यक्ति जिसे आरोपमुक्त कर दिया गया है, वह उस व्यक्ति की तुलना में अलग स्तर पर खड़ा है, जिसकी कभी जांच नहीं की गई थी या यदि उसके अधीन नहीं किया गया था, लेकिन आरोप पत्र नहीं दायर किया गया था। ऐसा व्यक्ति अदालत के समक्ष जांच के चरण में खड़ा रहा है और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री की न्यायिक जांच के बाद, अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए प्रथम दृष्टया मामला भी नहीं है। आम तौर पर, मुकदमे में साक्ष्य का चरण केवल जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री को साबित करना होता है और इसलिए, इस तरह से आरोपमुक्त व्यक्ति के खिलाफ मौजूद सामग्री के संबंध में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं होता है। इसलिए, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए बाध्यकारी परिस्थितियाँ मौजूद होनी चाहिए। अदालत को यह ध्यान रखना चाहिए कि गवाह इस तरह से आरोपमुक्त व्यक्ति के खिलाफ गवाही देते समय, केवल बदला लेने के लिए ऐसा नहीं कर रहा है या किसी के इशारे पर या इस तरह के अन्य बाहरी विचारों के लिए उसका नाम ले रहा है। अदालत को ऐसे सबूतों का इलाज करने में सावधानी बरतनी होगी और

भूसी को अनाज से अलग करने का प्रयास करना होगा। यदि सबूतों की इतनी सावधानीपूर्वक जांच के बाद, अदालत की राय है कि इस तरह से बरी किए गए व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए सबूत मौजूद हैं, तो वह सीधे धारा 319 द०प्र०स० के प्रावधान का सहारा लिए बिना केवल धारा 398 द०प्र०स० के अनुसार कदम उठा सकती है।

116. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ किया जा सकता है जो जांच के अधीन नहीं है, या आरोप पत्र के कॉलम 2 में रखे गए व्यक्ति के खिलाफ और जिसके खिलाफ संज्ञान नहीं लिया गया था, या एक व्यक्ति जिसे उन्मोचन दे दी गई है। हालांकि, किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में जिसे आरोपमुक्त कर दिया गया है, धारा 398 द०प्र०स० सपठित धारा 300(5) के प्रावधानों का सहारा लिए बिना सीधे धारा 319 द०प्र०स० के तहत उसके खिलाफ कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।

6.8. **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून और ऊपर संदर्भित और पुनः प्रस्तुत टिप्पणियों और निष्कर्षों पर विचार करते हुए, यह उभरता है कि (i) न्यायालय संबंधित गवाह के मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान के आधार पर भी धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकता है और न्यायालय को जिरह तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है इस तरह के गवाह की ओर अदालत को अभियुक्त के खिलाफ सबूतों की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, जिसे जिरह द्वारा परीक्षण के लिए बुलाया जाना है; और (ii) प्राथमिकी में नामित नहीं व्यक्ति या प्राथमिकी में नामित व्यक्ति के रूप में लेकिन आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है या एक व्यक्ति जिसे आरोपमुक्त किया गया है, उसे धारा 319 द०प्र०स० के तहत तलब किया जा सकता है, जो साक्ष्य से प्रदान किया गया है (संबंधित गवाह के मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान के रूप में एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर हो सकता है), ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे व्यक्ति पर पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहे आरोपियों के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।

6.9. **एस. मोहम्मद इस्पाहानी बनाम योगेंद्र चांडक [एस. मोहम्मद इस्पाहानी बनाम योगेंद्र चांडक, (2017) 16 एस.सी.सी. 226: (2018)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 138], एस.सी.सी. प्रस्तर-35 (एस.सी.सी. पृष्ठ-243)** में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन और व्यवस्था दी है।

"35. इस बात पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि जब शिकायतकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति को प्राथमिकी में नामित किया जाता है, लेकिन पुलिस, जांच के बाद, उस व्यक्ति विशेष की कोई भूमिका नहीं पाती है और उसे फंसाए बिना आरोप-पत्र दायर करती है, तो न्यायालय शक्तिहीन नहीं है, और समन के चरण में, यदि विचारण न्यायालय को लगता है कि किसी विशेष व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाया जाना चाहिए, आरोप पत्र में नाम न होने के बावजूद वह ऐसा कर सकती है। उस स्तर पर, शिकायतकर्ता को भी एक विरोध याचिका दायर करने का मौका दिया जाता है, जिसमें विचारण न्यायालय से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह किया

जाता है, जिनका नाम प्राथमिकी में था, लेकिन आरोप पत्र में नहीं फंसाया गया था। एक बार जब वह चरण चला जाता है, तो न्यायालय अभी भी धारा 319 द०प्र०स० के आधार पर शक्तिहीन नहीं है। हालांकि, यह धारा तब शुरू हो जाती है जब मुकदमे के दौरान प्रस्तावित आरोपी के खिलाफ कुछ सबूत सामने आते हैं।

6.10. इस प्रकार, यहां तक कि एक ऐसे मामले में भी जहां शिकायतकर्ता को विरोध याचिका दायर करने का अवसर देने का चरण विचारण न्यायालय से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह करता है, जिनके नाम प्राथमिकी में थे, लेकिन आरोप-पत्र में शामिल नहीं थे, उस मामले में भी, न्यायालय अभी भी धारा 319 द०प्र०स० के आधार पर शक्तिहीन नहीं है और यहां तक कि उन व्यक्तियों को भी प्राथमिकी में नामित नहीं किया गया है, लेकिन आरोप-पत्र में नहीं फंसाया गया है मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है, मुकदमे के दौरान प्रस्तावित अभियुक्त के खिलाफ कुछ सबूत सामने आते हैं।

7. इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हमारी राय है कि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में कोई गलती की है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, यहां अपीलकर्ताओं का नाम भी प्राथमिकी में था। हालांकि, चालान/आरोप पत्र में उन्हें आरोपी के रूप में नहीं दिखाया गया था। जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, अभिलेखों पर कुछ भी नहीं है कि किसी भी समय शिकायतकर्ता को अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल न करने के खिलाफ विरोध आवेदन प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था या नहीं। न्यायालय के समक्ष गवाही में, अ०सा०-1 और अ०सा०-2 ने विशेष रूप से अपीलकर्ताओं के खिलाफ कहा है और विशिष्ट भूमिका यहां अपीलकर्ता-अभियुक्त को जिम्मेदार ठहराई गई है। इस प्रकार, न्यायालय के समक्ष अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयान को मुकदमे के दौरान "सबूत" कहा जा सकता है और इसलिए, उसी के आधार पर और जैसा कि इस न्यायालय ने हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86] में कहा है, जिन व्यक्तियों के खिलाफ कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है। इसलिए, हमारी राय है कि निचली अदालतों द्वारा अपीलकर्ताओं को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में कोई गलती नहीं की गई है।

(सी) मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2021) 18 एस.सी.सी. 321 में रिपोर्ट किए गए मामले में, हरदीप सिंह (उपरोक्त) और बृजेंद्र सिंह (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णयों सहित धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने से संबंधित मुद्दों पर विभिन्न घोषणाओं पर विचार करने के बाद, निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला गया: -

"15. धारा 319 द०प्र०स० के तहत न्यायालय की शक्तियों के दायरे पर उपरोक्त निर्णयों के अनुपात को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

15.1. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय और आरोप पत्र दाखिल नहीं किए गए व्यक्तियों को बुलाने के लिए, पूरा प्रयास किसी अपराध के वास्तविक अपराधी को बिना सजा दिए बचने की अनुमति नहीं देना है।

15.2. न्यायालयों के सशक्तिकरण के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्याय का आपराधिक प्रशासन ठीक से काम करता है।

15.3. द०प्र०स० के तहत विधायिका द्वारा कानून को उचित रूप से संहिताबद्ध और संशोधित किया गया है, यह दर्शाता है कि अदालतों को अंततः सच्चाई का पता लगाने के लिए कैसे आगे बढ़ना चाहिए ताकि निर्दोष को दंडित न किया जा सके लेकिन साथ ही, दोषियों को कानून के तहत सजा दी जाए।

15.4. वास्तविक सत्य का पता लगाने के लिए न्यायालय के कर्तव्य का निर्वहन करना और यह सुनिश्चित करना कि दोषी को दंडित किए बिना न रखा जाए।

15.5. जहां जांच एजेंसी किसी भी कारण से वास्तविक दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में नहीं पेश करती है, अदालत उक्त अभियुक्त को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है।

15.6. धारा 319 द०प्र०स० अदालत को किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में आरोपी नहीं है।

15.7. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और उस पर कानून के शासन को बनाए रखने का कर्तव्य डाला गया है और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालतों के साथ ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से इनकार करना अनुचित होगा, जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त, कभी-कभी, जांच और/या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके बच जाता है।

15.8. धारा 319 द०प्र०स० द०प्र०स० एक सक्षम प्रावधान है जो अदालत को किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही के लिए उचित कदम उठाने का अधिकार देता है, जो मुकदमे के तहत अपराध करने के लिए आरोपी नहीं है।

15.9. धारा 319(1) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग आरोप पत्र दायर होने के बाद और निर्णय सुनाए जाने से पहले, धारा 207/208 द०प्र०स०, कमिटमेंट, आदि के चरण को छोड़कर, जो प्रक्रिया को गति देने के उद्देश्य से केवल एक पूर्व-परीक्षण चरण है।

15.10. न्यायालय धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग तभी कर सकता है जब मुकदमे की कार्यवाही शुरू हो जाती है और साक्ष्य की रिकॉर्डिंग शुरू होती है।

15.11. धारा 319 द०प्र०स० में "साक्ष्य" शब्द का अर्थ केवल ऐसे साक्ष्य हैं जो अदालत के समक्ष बयानों के संबंध में और दस्तावेजों के संबंध में अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

15.12. यह केवल ऐसे साक्ष्य हैं जिन्हें मजिस्ट्रेट या अदालत द्वारा यह तय करने के लिए ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जाना है और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर नहीं।

15.13. यदि मजिस्ट्रेट/न्यायालय मुख्य परीक्षा में उपस्थित होने वाले साक्ष्य के आधार पर भी आश्वस्त है, तो वह धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकता है और ऐसे अन्य व्यक्तियों के खिलाफ कार्रवाई कर सकता है।

15.14. यदि मजिस्ट्रेट/न्यायालय मुख्य परीक्षा में उपस्थित होने वाले साक्ष्य के आधार पर भी आश्वस्त है, तो धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

15.15. धारा 319 द०प्र०स० के तहत उस शक्ति का प्रयोग मुख्य परीक्षा के पूरा होने के चरण में भी किया जा सकता है और अदालत को जिरह पर उक्त साक्ष्य का परीक्षण होने तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है।

15.16. यहां तक कि एक ऐसे मामले में जहां शिकायतकर्ता को विरोध याचिका दायर करने का अवसर देने का चरण विचारण न्यायालय से अन्य व्यक्तियों को भी बुलाने का आग्रह करता है, जिनके नाम प्राथमिकी में थे, लेकिन आरोप पत्र में शामिल नहीं थे, उस मामले में भी, अदालत अभी भी धारा 319 द०प्र०स० के आधार पर शक्तिहीन नहीं है और यहां तक कि उन व्यक्तियों को भी बुलाया जा सकता है जिन्हें प्राथमिकी में नामित किया गया है, लेकिन आरोप-पत्र में नहीं फंसाया गया है। मुकदमे का सामना करें, मुकदमे के दौरान प्रस्तावित अभियुक्त के खिलाफ कुछ सबूत सामने आते हैं (अभियोजन पक्ष के गवाहों की मुख्य परीक्षा के रूप में हो सकते हैं)।

15.17. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय अदालत को अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान/साक्ष्य की गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन करने की आवश्यकता और/या उचित नहीं है, जो मुकदमे के दौरान किया जाना आवश्यक है।

16. उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानून को मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, हमारी राय है कि विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज करने और निजी प्रतिवादियों को धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने में मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने से इनकार करने में भौतिक रूप से गलती की है। यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि प्राथमिकी संख्या-477 में सभी निजी प्रतिवादी जिन्हें अतिरिक्त आरोपी के रूप में पेश करने की मांग की गई है, विशेष रूप से उनके लिए जिम्मेदार विशिष्ट भूमिका के साथ नामित किए गए थे। यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि जब वे वापस लौट रहे थे, तो महिंद्रा XUV सं एचआर 40ए 4352 पर सरताज सिंह और सुखपाल की सड़क पर खड़ा था। तेजपाल, परब सरन सिंह, प्रीत स्मार्ट और सरताज खड़े थे। परब शरण के हाथ में लाठी थी, तेजपाल के हाथ में गंडासी थी, सुखपाल के पास डंडा, सरताज के हाथ में रिवॉल्वर थी और प्रीत सिंह जीप में बैठे थे। प्राथमिकी में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि उपरोक्त सभी व्यक्तियों ने समान इरादे से महिंद्रा XUV HR 40A 4352 को इस तरह से पार्क किया था जिससे पूरी सड़क अवरुद्ध हो गई और वे हथियारों से लैस थे।

17. उपरोक्त विशिष्ट आरोपों के बावजूद, जब आरोप-पत्र/अंतिम रिपोर्ट दायर की गई तो केवल दो व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया और निजी प्रतिवादियों, हालांकि प्राथमिकी में नामजद थे, को कॉलम 2 में रखा गया। यहां निजी प्रतिवादियों की ओर से यह मामला है कि चार अलग-अलग डीएसपी ने मामले की जांच की और उसके बाद जब उनके खिलाफ कोई सबूत नहीं पाया गया तो निजी प्रतिवादियों को कॉलम 2 में रखा गया था और इसलिए इसमें अपीलकर्ता की मुख्य परीक्षा पर विचार करने/विश्वास करने के बजाय इसे

बहुत महत्व दिया जाना चाहिए। **बृजेंद्र सिंह [बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 एस.सी.सी. 706: (2017) 4 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 144]** पर भारी भरोसा किया गया है।

18. हालांकि, कोई भी डीएसपी और/या उनकी रिपोर्ट, यदि कोई हो, आरोप पत्र का हिस्सा नहीं है। किसी भी डीएसपी को गवाह के रूप में नहीं दिखाया गया है। कोई भी डीएसपी विवेचनाधिकारी नहीं है। यहां तक कि अंतिम रिपोर्ट/आरोप-पत्र पर समग्र रूप से विचार करने पर भी अभियुक्त, निजी प्रतिवादियों के विशिष्ट आरोपों पर कोई विचार नहीं किया गया है, जिन्हें कॉलम 2 में रखा गया है। आरोप पत्र/फाइनल रिपोर्ट में पूरी चर्चा सरताज सिंह के खिलाफ ही है।

19. जहां तक निजी प्रतिवादियों का संबंध है, केवल एक बात जो बताई गई है, वह यह है: "प्रस्तुत मामले की जांच के दौरान, श्री बलजिंदर सिंह, एचपीएस, डीएसपी असंध और श्री कुशलपाल, एचपीएस, डीएसपी इंद्री ने आरोपी तेजपाल सिंह, सुखपाल सिंह, गुरदेव सिंह के बेटे, परब शरण सिंह और प्रीत सम्मट सिंह को मोहन सरूप सिंह जाति के जाट सिख के बेटे पाया। बांद्राला के निवासी निर्दोष हैं और तदनुसार मामले में भ०द०वि० की धारा 148, 149 और 341 को हटा दिया गया था और उन्हें कॉलम 2 में रखा गया था, जबकि आरोपी सरताज के खिलाफ चालान न्यायालय में पेश किया गया है।

20. अब उसके बाद जब मुख्य परीक्षा में अपीलकर्ता - पीडित - घायल चश्मदीद गवाह ने विशेष रूप से निजी प्रतिवादियों का नाम उनके लिए विशिष्ट भूमिका के साथ नामित किया है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय को निजी प्रतिवादियों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना चाहिए था। इस स्तर पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, वह एक घायल चश्मदीद गवाह है। जैसा कि इस न्यायालय ने **एमपी बनाम मानसिंह राज्य [एमपी बनाम मानसिंह राज्य, (2003)10 एस.सी.सी. 414: (2007)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 390] (प्रस्तर-9); अब्दुल सईद वी. मध्य प्रदेश राज्य [अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010)10 एस.सी.सी. 259: (2010)3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)1262]; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश, (2011)4 एस.सी.सी. 324:(2011)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 216]**, एक घायल प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर देखा गया है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, अदालत को जिरह तक इंतजार नहीं करना पड़ता है और गवाह की मुख्य परीक्षा के आधार पर, यदि कोई मामला बनता है, तो किसी व्यक्ति को धारा 319 द०प्र०स० के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है।

21. अब जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को खारिज करते हुए और धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए दिए गए तर्क का संबंध है, उच्च न्यायालय ने स्वयं कहा है कि अ०सा०-1 मंजीत सिंह घायल गवाह है और इसलिए उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे मृतक के साथ आग्नेयास्त्र की चोटें आई हैं। हालांकि,

इसके बाद उच्च न्यायालय ने कहा है कि मंजीत सिंह का बयान अति-निहितार्थ का संकेत देता है और यह कि प्रतिवादियों में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और संबंधित चोटों के लिए केवल सरताज सिंह को जिम्मेदार ठहराया गया है, यहां तक कि बहस के लिए भी अगर कोई सरताज सिंह के साथ मौजूद था, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उनका कोई सामान्य इरादा था या मन का मिलन हुआ था या जानता था कि सरताज फायरिंग करेगा। उपरोक्त तर्क बिल्कुल भी टिकाऊ नहीं हैं।

22. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के चरण में, अदालत को मामले के आरोपों की मूल्यांकन और/या योग्यता दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को भुला दिया है कि सभी आरोपियों के खिलाफ शुरू से ही आरोप धारा 302, 307, 341, 148 और 149 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए थे। उच्च न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रहा है कि धारा 149 भ०द०वि० के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए केवल गैरकानूनी सभा का हिस्सा बनना पर्याप्त है और व्यक्तिगत भूमिका और/या प्रत्यक्ष कार्य महत्वहीन है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क कि प्रतिवादियों में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और इसलिए, उन्हें आरोपी के रूप में नहीं जोड़ा जा सकता है, टिकाऊ नहीं है। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय अधिकार क्षेत्र और/या शक्तियों का प्रयोग करने में विफल रहे हैं।

23. अब जहां तक निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि एक सामान्य निर्णय और आदेश उच्च न्यायालय द्वारा सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य [सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 उप नाम सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य] के रूप में रिपोर्ट किया गया है, उस स्तर पर अपीलकर्ता ने मंजीत सिंह बनाम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ अपील नहीं की। हरियाणा राज्य [मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 [सं. :इसने सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 का भी एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा निपटाया] और इसलिए यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है, इससे संबंधित है कि उपरोक्त का कोई सार नहीं है। एक बार जब यह पाया जाता है कि विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय को निजी प्रतिवादियों को अतिरिक्त आरोपी के रूप में बुलाना चाहिए था, अपील दायर करने में देरी करनी चाहिए थी या प्रासंगिक समय पर अपील दायर नहीं करनी चाहिए थी, जब इस न्यायालय ने सत्कार सिंह बनाम में दिए गए फैसले और आदेश पर विचार किया था। हरियाणा राज्य [सी.आर.आर.संख्या-3238 वर्ष 2018 मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 उप नाम सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य] निजी प्रतिवादियों को तलब करने का निर्देश नहीं देने का आधार नहीं हो सकता है, जब इस न्यायालय ने पाया है कि यहां निजी प्रतिवादियों के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है और उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाना है।

24. अब जहां तक निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि आरोप पत्र में निजी प्रतिवादियों को कॉलम 2 में रखा गया था, उस स्तर पर शिकायतकर्ता पक्ष ने कोई विरोध आवेदन दायर नहीं किया था, इस न्यायालय द्वारा विशेष रूप से राजेश [राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2019)6 एस.सी.सी. 368:(2019)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 801] . इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में विशेष रूप से कहा है कि ऐसे मामले में भी जहां शिकायतकर्ता को विरोध याचिका दायर करने का अवसर देने का चरण विचारण न्यायालय से अन्य व्यक्तियों को बुलाने का आग्रह करता है और साथ ही जिनके नाम प्राथमिकी में थे, लेकिन आरोपपत्र में नहीं फंसाया गया था, उस मामले में भी, धारा 319 द०प्र०स० के आधार पर अदालत अभी भी शक्तिहीन नहीं है।

25. इसी तरह, निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के बाद मुकदमे में बहुत प्रगति हुई है और इसलिए इस स्तर पर धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, उपरोक्त में कोई सार नहीं है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार और जैसा कि इस न्यायालय ने हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86] में देखा है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग मुकदमे के अंतिम समापन से पहले किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। अन्यथा भी यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि जिस समय धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दिया गया था, उस समय केवल एक गवाह की जांच की गई थी और अ०सा०-1 की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई थी और जब अ०सा०-1 की जिरह चल रही थी, धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दिया गया था जिसे विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था। निचली अदालत द्वारा पारित आदेश को अस्थिर माना जाता है। यदि विचारण न्यायालय ने उस स्तर पर निजी प्रतिवादियों को तलब किया होता तो ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती। जैसा कि हो सकता है, जैसा कि यहां देखा गया है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग किसी भी स्तर पर परीक्षण शुरू करने और साक्ष्य/बयान दर्ज करने से लेकर किसी भी स्तर पर मुकदमे के समापन से पहले किया जा सकता है।

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों से, आक्षेपित निर्णय और आदेश [मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 [सं.: इसने उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक सामान्य निर्णय और आदेश] द्वारा सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 का भी निपटारा किया और विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता की ओर से निजी प्रतिवादियों को तलब करने के लिए प्रस्तुत धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज कर दिया चूंकि अतिरिक्त आरोपी अस्थिर हैं और उन्हें रद्द करने और अलग करने के लायक हैं और तदनुसार उन्हें रद्द कर दिया जाता है और अलग कर दिया जाता है। नतीजतन, शिकायतकर्ता की ओर से निजी प्रतिवादियों को तलब करने के लिए प्रस्तुत आवेदन को एतद्वारा अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह निजी प्रतिवादियों को धारा 302 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए सत्र मामले संख्या-362 वर्ष 2016 में प्राथमिकी संख्या-477 दिनांक 27-7-2016

भ०द०वि० 307, 341, 148 और 149 भ०द०वि० के तहत मामला दर्ज किया गया है जिससे से उत्पन्न मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाए।

(घ) प्रस्तुत मामले के संदर्भ में (2023)1 एस.सी.सी. 289 में रिपोर्ट किए गए सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर यहां दिए गए हैं: -

"22. इस प्रकार, मामले को परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए, विधि आयोग की सिफारिश का अवलोकन इस इरादे को इंगित करेगा कि एक अभियुक्त जो आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है, लेकिन यदि इसमें शामिल पाया जाता है, तो उसे मुक्त नहीं होना चाहिए। इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० को शामिल किया गया था जो अदालत को मुकदमे के समापन से पहले इसे सुनिश्चित करने की शक्ति का प्रयोग करने का प्रावधान करता है ताकि ऐसे अभियुक्त पर अन्य आरोपियों के साथ समन करके और आगे बढ़कर मुकदमा चलाया जा सके। **शशिकांत सिंह [शशिकांत सिंह बनाम तारकेश्वर सिंह, (2002) 5 एस.सी.सी. 738: 2002 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1203]** में, दो माननीय न्यायाधीशों की पीठ ने यह मानते हुए कि संयुक्त परीक्षण आवश्यक नहीं है, धारा 319(1) द०प्र०स० में निहित आवश्यकता को केवल निर्देशिका के रूप में माना गया है, और इस तरह आरोप-पत्र दायर अभियुक्त के खिलाफ 16-7-2001 के दोषसिद्धि के फैसले को अदालत के लिए अभियुक्त के खिलाफ आगे बढ़ने में बाधा नहीं माना गया था। दिनांक 7-4-2001 के समन आदेश द्वारा जोड़ा गया था, जो किसी भी मामले में मुकदमे के समापन से पहले था जो हमारे विचार में आवश्यकता को पूरा करता है क्योंकि समन आदेश निर्णय से पहले था। **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में भी धारा 319 द०प्र०स० के तहत अदालत की शक्ति को बरकरार रखा गया है, दोहराया गया है, और यह माना गया है कि ऐसी शक्ति निर्णय सुनाने से पहले किसी भी समय प्रयोग करने के लिए उपलब्ध है। इसलिए, उक्त निर्णयों में शक्ति के प्रयोग, जिस तरीके और स्तर पर शक्ति का प्रयोग किया जाना है, उसके संबंध में कोई विरोधाभास या विविध दृष्टिकोण नहीं है। हालांकि, धारा 319 द०प्र०स० में उप-धारा (4)(ए) में आवश्यकता सपठित उप-धारा (1) में दिखाई देने वाले वाक्यांश "अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है" वाक्यांश के अर्थ को समझाने और "निर्णय की घोषणा से पहले" वाक्यांश के अनुसार शक्ति का प्रयोग करने के सही उद्देश्य को समझने के लिए क्रीज को इस्त्री करने की एक निश्चित मात्रा की आवश्यकता होती है।

XXX XXX XXX XXX XXX XXX

38. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, हम यहां दिए गए प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

39.(I) क्या विचारण न्यायालय के पास धारा 319 द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने की शक्ति है, जब अन्य सह-अभियुक्तों के संबंध में मुकदमा समाप्त हो गया है और समन आदेश सुनाने से पहले उसी तारीख को दोषसिद्धि का निर्णय दिया गया है?

धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति को सजा के आदेश की घोषणा से पहले लागू किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग किया जाना चाहिए जहां अभियुक्त की दोषसिद्धि का निर्णय होता है। बरी होने के मामले में, बरी होने का आदेश सुनाए जाने से पहले शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसलिए, समन आदेश को दोषसिद्धि

के मामले में सजा लगाकर मुकदमे के समापन से पहले होना चाहिए। यदि आदेश उसी दिन पारित किया जाता है, तो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर इसकी जांच की जानी चाहिए और यदि इस तरह का समन आदेश या तो दोषसिद्धि के मामले में बरी करने या सजा देने के आदेश के बाद पारित किया जाता है, तो यह टिकाऊ नहीं होगा।

40.(II) क्या विचारण न्यायालय के पास धारा 319 द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त अभियुक्तों को बुलाने की शक्ति है, जब कुछ अन्य फरार अभियुक्तों (जिनकी उपस्थिति बाद में सुरक्षित है) के संबंध में मुकदमा चल रहा है/लंबित है, जिसे मुख्य मुकदमे से विभाजित किया गया है?

निचली अदालत के पास अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करने की शक्ति है, जब फरार अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के बाद उसके संबंध में मुकदमा आगे बढ़ाया जाता है, बशर्ते कि अलग-अलग (द्भाजित) मुकदमे में दर्ज सबूतों को समन की मांग की गई हो। लेकिन मुख्य निष्कर्ष के मुकदमे में दर्ज साक्ष्य समन आदेश का आधार नहीं हो सकते हैं यदि इस तरह की शक्ति का प्रयोग मुख्य मुकदमे में इसके समापन तक नहीं किया गया है।

41.(III) धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय सक्षम न्यायालय को किन दिशानिर्देशों का पालन करना चाहिए?

41.1. यदि सक्षम न्यायालय को सबूत मिलते हैं या यदि बरी करने या सजा पर आदेश पारित करने से पहले मुकदमे में किसी भी स्तर पर दर्ज किए गए सबूतों के आधार पर अपराध करने में किसी अन्य व्यक्ति की भागीदारी के संबंध में धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया जाता है, तो वह उस स्तर पर मुकदमे को रोक देगा।

41.2. इसके बाद न्यायालय पहले अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने की आवश्यकता या अन्यथा निर्णय लेगा और उस पर आदेश पारित करेगा।

41.3. यदि न्यायालय का निर्णय धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करना और अभियुक्त को तलब करना है, तो मुख्य मामले में मुकदमे को आगे बढ़ाने से पहले ऐसा सम्मन आदेश पारित किया जाएगा।

41.4. यदि अतिरिक्त अभियुक्त का सम्मन आदेश पारित किया जाता है, तो यह उस चरण पर निर्भर करता है जिस पर इसे पारित किया जाता है, तो अदालत इस तथ्य पर भी अपना ध्यान लगाएगी कि क्या ऐसे समन किए गए अभियुक्त पर अन्य अभियुक्तों के साथ मुकदमा चलाया जाना है या अलग से।

41.5. यदि निर्णय संयुक्त परीक्षण के लिए है, तो बुलाए गए अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के बाद ही नया परीक्षण शुरू किया जाएगा।

41.6. यदि निर्णय यह है कि बुलाए गए अभियुक्त पर अलग से मुकदमा चलाया जा सकता है, तो इस तरह के आदेश पर अदालत को जारी रखने और उन अभियुक्तों के खिलाफ मुकदमे को समाप्त करने में कोई बाधा नहीं होगी जिनके साथ कार्यवाही की जा रही थी।

41.7. यदि उपरोक्त प्रस्तर-41.1 के अनुसार कार्यवाही रोक दी जाती है, तो ऐसे मामले में है जहां जिन अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया गया था, उन्हें बरी किया जाना है, और निर्णय यह है कि बुलाए गए अभियुक्त पर अलग से नए सिरे से मुकदमा चलाया जा सकता है, तो मुख्य मामले में बरी होने का निर्णय पारित करने में कोई बाधा नहीं होगी।

41.8. यदि शक्ति का उपयोग मुख्य मुकदमे में उसके समापन तक नहीं किया जाता है और यदि कोई विभाजन (द्विभागीय) मामला है, तो धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग या प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब उस आशय के सबूत हों, जो अतिरिक्त अभियुक्त की भागीदारी की ओर इशारा करते हुए विभाजित (द्विभागीय) मुकदमे में बुलाया जा सकता है।

41.9. यदि, दलीलों की सुनवाई के बाद और मामले को निर्णय के लिए आरक्षित कर दिया जाता है, तो न्यायालय के लिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने और उसका प्रयोग करने का अवसर उत्पन्न होता है, तो न्यायालय के लिए उचित तरीका यह है कि वह इसे फिर से सुनवाई के लिए निर्धारित करे।

41.10. इसे पुनः सुनवाई के लिए निर्धारित करने पर, सम्मन के बारे में निर्णय लेने के लिए उपरोक्त निर्धारित प्रक्रिया; संयुक्त परीक्षण या अन्यथा आयोजित करने का निर्णय लिया जाएगा और तदनुसार आगे बढ़ाया जाएगा।

41.11. यहां तक कि इस तरह के एक मामले में, उस स्तर पर, यदि निर्णय अतिरिक्त अभियुक्त को बुलाने और एक संयुक्त परीक्षण आयोजित करने के लिए है परीक्षण नए सिरे से अवधारित किया जाएगा और नए सिरे से कार्यवाही आयोजित की जाएगी।

41.12. यदि, उस परिस्थिति में, पहले बताए गए समन किए गए अभियुक्त के मामले में एक अलग से सुनवाई करने का निर्णय है:

(क) मुख्य मामले का निर्णय दोषसिद्धि और सजा सुनाकर किया जा सकता है और फिर समन किए गए अभियुक्त के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाई की जा सकती है।

(ख) बरी होने की स्थिति में मुख्य मामले में उस आशय का आदेश पारित किया जाएगा और फिर समन किए गए अभियुक्त के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही की जाएगी।

(ई) यशोधन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में, (2023) लाइवलों (एस.सी.) 576: 2023 आई.एन.एस.सी. 652 में रिपोर्ट किया गया है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरदीप सिंह (उपरोक्त), बृजेंद्र सिंह (उपरोक्त), सुखपाल सिंह खैरा (उपरोक्त) और जोगेंद्र और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य (2015) 9 एस.सी.सी. 244 में रिपोर्ट किया गया, के मामले में पारित निर्णय सहित विभिन्न फैसलों पर विचार किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावित आरोपी को अवसर की आवश्यकता है, और उसके बाद यशोधन सिंह और अन्य द्वारा दायर अपील को खारिज कर दिया। प्रासंगिक प्रस्तर-यहां पुनः प्रस्तुत किए गए हैं: -

"22. हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86] में प्रासंगिक प्रस्तर-को निम्नानुसार क्रिस्टलीकृत किया जा सकता है:

22.1. इस न्यायालय की संविधान पीठ तीन पहलुओं से संबंधित थी: पहला, वह चरण जिस पर धारा 319 दंप्रंस० के तहत शक्तियों का उपयोग किया जा सकता है; दूसरे, जिन सामग्रियों के आधार पर धारा 319 दंप्रंस० के तहत शक्तियों का आह्वान उचित ठहराया जा सकता है; और तीसरा, जिस तरह से धारा 319 दंप्रंस० के तहत शक्तियों का प्रयोग किया जाना है। प्रस्तर-117 में संविधान पीठ को संदर्भित पांच प्रश्नों का उत्तर देते हुए, यह निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला गया: (हरदीप सिंह मामला [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86], एस.सी.सी. पीपी 141-42)

"117. हम तदनुसार अपने निष्कर्षों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं:

प्रश्न (i) और (iii)

- वह कौन सा चरण है जिस पर धारा 319 दंप्रंस० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है?

और

- क्या धारा धारा 319(1) दंप्रंस० में प्रयुक्त "साक्ष्य" शब्द का उपयोग व्यापक अर्थों में किया गया है और इसमें जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्य शामिल हैं या "साक्ष्य" शब्द मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सबूतों तक सीमित है?

हल

117.1. धर्मपाल मामले में [धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 306: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 159: ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 3018] में, संविधान पीठ ने पहले ही माना है कि अपराध करने के बाद, किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है जिसका नाम आरोपी के रूप में नहीं है, लेकिन जिसके खिलाफ जांच पूरी होने के बाद पुलिस द्वारा दायर कागजात से सामग्री उपलब्ध है। इस तरह का संज्ञान दंप्रंस० की धारा 193 के तहत लिया जा सकता है और सत्र न्यायाधीश को अतिरिक्त आरोपी को बुलाने के लिए धारा 319 दंप्रंस० के तहत "सबूत" उपलब्ध होने तक इंतजार करने की आवश्यकता नहीं है।

117.2. धारा 319 दंप्रंस०, महत्वपूर्ण रूप से, दो अभिव्यक्तियों का उपयोग करता है जिन पर ध्यान दिया जाना है अर्थात् (1) जांच (2) परीक्षण। चूंकि आरोप तय करने के बाद मुकदमा शुरू होता है, इसलिए जांच को केवल पूर्व-परीक्षण जांच के रूप में समझा जा सकता है। दंप्रंस० की धारा 200, 201, 202 के तहत और धारा 398 दंप्रंस० के तहत पूछताछ धारा 319 दंप्रंस० द्वारा विचारित जांच की प्रजातियां हैं। इस तरह की पूछताछ के दौरान अदालत के समक्ष आने वाली सामग्री का उपयोग मुकदमा शुरू होने के बाद अदालत में दर्ज किए गए सबूतों की पुष्टि के लिए, धारा 319 दंप्रंस० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए किया जा सकता है, और एक आरोपी को जोड़ने के लिए भी किया जा सकता है जिसका नाम आरोप पत्र के कॉलम 2 में दिखाया गया है।

117.3. उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए, धारा 319 द०प्र०स० में "साक्ष्य" शब्द को व्यापक रूप से समझा जाना चाहिए, न कि शाब्दिक रूप से, यानी मुकदमे के दौरान लाए गए सबूत के रूप में।

प्रश्न (ii)—क्या धारा 319(1) द०प्र०स० में प्रयुक्त शब्द "साक्ष्य" का अर्थ केवल जिरह द्वारा परीक्षण किए गए साक्ष्य हो सकता है या अदालत संबंधित गवाह के मुख्य परीक्षा में दिए गए बयान के आधार पर भी उक्त प्रावधान के तहत शक्ति का प्रयोग कर सकती है?

हल

117.4. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक व्यक्ति जिसके खिलाफ सामग्री का खुलासा किया गया है, उसे केवल मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाता है और ऐसी स्थिति में धारा 319 (4) द०प्र०स० के तहत ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही संज्ञान लेने के चरण से शुरू होनी है, अदालत को आरोपी के खिलाफ सबूत की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है जिसे जिरह द्वारा परीक्षण के लिए बुलाया जाना है।

प्रश्न (iv)—किसी अभियुक्त को अभियोग लगाने के लिए धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए आवश्यक संतुष्टि की प्रकृति क्या है? क्या धारा 319(1) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब अदालत संतुष्ट हो कि समन किए गए आरोपी को पूरी संभावना में दोषी ठहराया जाएगा?

हल

117.5. हालांकि धारा 319 (4)(बी) द०प्र०स० के तहत आरोपी को बाद में माना जाता है कि वह एक आरोपी था जब अदालत ने शुरू में अपराध का संज्ञान लिया था, धारा 319 द०प्र०स० के तहत किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए आवश्यक संतुष्टि की डिग्री एक आरोप तय करने के लिए समान होगी [एड। प्रस्तर-106, पृष्ठ 138 सी-डी में बताए गए कानून के निष्कर्ष की तुलना की जा सकती है: "इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि अदालत के समक्ष पेश किए गए सबूतों से केवल एक प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जरूरी नहीं कि जिरह की निहाई पर परीक्षण किया जाए, इसके लिए उसकी मिलीभगत की संभावना की तुलना में बहुत मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है। जिस परीक्षण को लागू किया जाना है, वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करते समय प्रयोग किया गया था, लेकिन इस हद तक संतुष्टि की कमी है कि सबूत, यदि अखंडित हो जाता है, तो दोषसिद्धि हो सकती है। विशेष रूप से प्रस्तर-100 में पृष्ठ 136 एफजी पर भी देखें। मूल अभियुक्त और बाद के अभियुक्त को तलब करने के लिए संतुष्टि की डिग्री में अंतर इस तथ्य के कारण है कि मूल अभियुक्त के खिलाफ मुकदमा पहले ही शुरू हो चुका हो सकता है और इस तरह के मुकदमे के दौरान नए समन किए गए अभियुक्त के खिलाफ सामग्री का खुलासा किया जाता है। एक आरोपी को नए सिरे से बुलाने से मुकदमे में देरी होगी, इसलिए आरोपी (मूल और बाद) को तलब करने के लिए संतुष्टि की डिग्री अलग होनी चाहिए।

प्रश्न (v) – क्या धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति उन व्यक्तियों तक फैली हुई है जिनका नाम प्राथमिकी में नहीं है या जिनका नाम प्राथमिकी में नहीं है, लेकिन आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है या जिन्हें बरी कर दिया गया है?

हल

117.6. प्राथमिकी में नामित नहीं व्यक्ति या प्राथमिकी में नामित व्यक्ति के रूप में एक व्यक्ति, लेकिन आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है या एक व्यक्ति जिसे बरी कर दिया गया है, उसे धारा 319 द०प्र०स० के तहत बुलाया जा सकता है, सबूतों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे व्यक्ति पर पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहे अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है। हालांकि, जहां तक एक आरोपी जिसे बरी कर दिया गया है, उसका संबंध है, उसे नए सिरे से तलब करने से पहले द०प्र०स० की धारा 300 और 398 की आवश्यकता का पालन करना होगा।

22.2. उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर देते समय, इस न्यायालय ने **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 92: (2014)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में कहा कि यदि जांच एजेंसी किसी भी कारण से वास्तविक दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में पेश नहीं करती है, तो अदालत उक्त अभियुक्त को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। इसलिए, पूरा प्रयास किसी अपराध के वास्तविक अपराधी को बिना सजा के भागने देना है। उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यह है कि एक रचनात्मक और उद्देश्यपूर्ण व्याख्या अपनाई जानी चाहिए जो न्याय के कारण को आगे बढ़ाती है और कानून के इरादे को कमजोर नहीं करती है, जो अदालत को उस अपराध के कमीशन (गठन) में एक सहयोगी के रूप में अदालत की संतुष्टि के लिए व्यक्ति की कोशिश करने के लिए शक्ति प्रदान करती है, जो कि परीक्षण का विषय है। इस न्यायालय द्वारा यह उचित रूप से देखा गया कि मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल है कि एक अभियुक्त कभी-कभी जांच या जांच के चरण में भी खुद को बरी करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

22.3. एक परीक्षण को एक जांच से अलग करते हुए, इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि परीक्षण एक जांच के बाद होता है और परीक्षण का उद्देश्य प्रस्तुत तथ्यों और नेतृत्व किए गए सबूतों के आधार पर किसी व्यक्ति पर जिम्मेदारी डालना है। धारा 319 द०प्र०स० में प्रयुक्त "पाठ्यक्रम" शब्द पर जोर देते हुए, यह देखा गया कि उक्त प्रावधान के तहत किसी भी व्यक्ति के खिलाफ अदालत द्वारा जांच के प्रारंभिक चरण से लेकर मुकदमे के समापन तक उक्त शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। चूंकि आरोप पत्र दाखिल होने के बाद न्यायालय जांच के चरण में पहुंच जाता है और जैसे ही न्यायालय आरोप तय करता है, विचारण शुरू हो जाता है। इस प्रकार, धारा 319(1) द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग फैसले की घोषणा से पहले आरोप पत्र दायर होने के बाद किसी भी समय किया जा सकता है, सिवाय धारा 207/208 द०प्र०स०, प्रतिबद्धता आदि के चरण को छोड़कर।

22.4. धारा 319 द०प्र०स० की बारीकियों को विस्तार से बताते हुए, यह आगे **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 92: (2014)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में देखा गया था कि धारा 319 द०प्र०स० के उद्देश्य के लिए जो आवश्यक है वह यह है कि किसी व्यक्ति के खिलाफ कुछ सबूत दिखाई देने चाहिए जिसके खिलाफ कार्यवाही नहीं की गई है; कार्यवाही का चरण अप्रासंगिक है। धारा 319 द०प्र०स० विशेष रूप से एक सशक्त प्रावधान है जहां शिकायतकर्ता कई व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही में सावधानी बरतता है, लेकिन अदालत की राय है कि कुछ अन्य व्यक्तियों की मिलीभगत की ओर इशारा करते हुए कुछ सबूत भी हैं।

22.5. यह भी देखा गया कि धारा 319 के तहत किसी व्यक्ति को बुलाने के लिए न्यायालय द्वारा निष्कर्ष निकाले जाने की ओर ले जाने वाली परिस्थितियां न्यायालय के समक्ष आने वाले तथ्यों और सामग्री की उपलब्धता से उत्पन्न होती हैं। सामग्री को अपराध के कमीशन (गठन) में व्यक्ति की मिलीभगत का खुलासा करना चाहिए, जो कि अपराध की किसी भी जांच या परीक्षण के दौरान साक्ष्य से प्रकट होने वाली सामग्री होनी चाहिए।

22.6. इस न्यायालय द्वारा **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में यह भी देखा गया था कि मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए सख्त कानूनी अर्थों में साक्ष्य के अलावा, कोई भी सामग्री जो संज्ञान लेने के बाद और मुकदमे शुरू होने से पहले अदालत द्वारा प्राप्त की गई है, इसका उपयोग केवल पुष्टि के लिए और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए अदालत द्वारा दर्ज किए गए सबूतों का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। यह मानते हुए कि "साक्ष्य" अभिव्यक्ति को एक व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए, यह देखा गया कि सामग्री जो अदालत के समक्ष दर्ज की गई वास्तव में सबूत नहीं है, लेकिन अदालत द्वारा एकत्र की गई सामग्री है, का उपयोग आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को बुलाने के उद्देश्य से पहले से दर्ज किए गए सबूतों की पुष्टि करने के लिए किया जा सकता है। इस तरह की सामग्री किसी अन्य साथी की व्याख्या को सुविधाजनक बनाने के लिए सहायक होगी, जिसकी अपराध में मिलीभगत को दबा दिया गया हो या अदालत के नोटिस से बच गया हो। इसलिए, मुकदमे से पहले ही अदालत के समक्ष लाई गई किसी भी सामग्री को धारा 319 द०प्र०स० के प्रयोजन के लिए "साक्ष्य" अभिव्यक्ति के अर्थ में पढ़ा जा सकता है। मुकदमे के दौरान निकलने वाले सबूतों पर विचार करते समय, इस न्यायालय द्वारा यह देखा गया कि मुख्य परीक्षा के माध्यम से दर्ज किए गए साक्ष्य और जो जिरह द्वारा परीक्षण नहीं किए गए हैं, फिर भी साक्ष्य हैं जिन पर अदालत द्वारा धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए विचार किया जा सकता है, जब तक कि अदालत को ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अन्य व्यक्ति जो मुकदमे का सामना नहीं कर रहा है, हो सकता है कि वह अपराध में भी शामिल हो।

22.7. इसके अलावा, धारा 319 द०प्र०स० भी "ऐसे व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है" शब्दों का उपयोग करता है, जिसका अर्थ है कि धारा 319 द०प्र०स० के चरण में परीक्षा और जिरह करके एक मिनी-विचारण नहीं करना और उसके बाद ऐसे व्यक्ति के प्रत्यक्ष कार्य पर प्रथम दृष्टया निष्कर्ष पर आना चाहिए। इस तरह का

एक मिनी-विचारण उस व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित करेगा जिसे आरोपी के रूप में पेश किए जाने की मांग की गई थी, न कि कोई जिरह न हो। धारा 319 द०प्र०स० (4) के तहत, ऐसे व्यक्ति को अभियोजन पक्ष के गवाहों से जिरह करने और बचाव पक्ष के गवाहों की जांच करने और अपनी दलीलें आगे बढ़ाने का अधिकार है। यह भी देखा गया कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग मुख्य परीक्षा पूरी होने के बाद भी किया जा सकता है और अदालत को जिरह पर उक्त साक्ष्य का परीक्षण होने तक इंतजार नहीं करना पड़ता है, क्योंकि यह अदालत की संतुष्टि है जिसे कुछ अन्य व्यक्तियों की मिलीभगत के संबंध में अदालत द्वारा दर्ज किए गए कारणों से एकत्र किया जा सकता है जो अपराध में मुकदमे का सामना नहीं करना।

22.8. जिस परीक्षण को लागू किया जाना है, वह वह है जो प्रथम दृष्टया मामले से अधिक है जैसा कि आरोप तय करने के समय प्रयोग किया गया है, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि खंडन नहीं किया जाता है, तो दोषसिद्धि का कारण बनेगा। इसलिए, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए ऐसी संतुष्टि अनिवार्य शर्त है। अंततः, शक्ति का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के मुकदमे के लिए होता है जिन्हें पहले से ही मुकदमे में आरोपी के साथ बुलाया जाता है, न कि अभियुक्त के साथ दोषसिद्धि के लिए। इसलिए, उस स्तर पर, अदालत को अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई निश्चित राय बनाने की आवश्यकता नहीं है।

22.9. इस न्यायालय ने आगे कहा कि मूल अभियुक्त और बाद के अभियुक्त को बुलाने के लिए संतुष्टि की डिग्री में अंतर इस तथ्य के कारण है कि मूल अभियुक्त के खिलाफ मुकदमा पहले ही शुरू हो चुका हो सकता है और इस तरह के मुकदमे के दौरान नए समन किए गए अभियुक्त के खिलाफ सामग्री का खुलासा किया जाता है। इसलिए, मुकदमे के दौरान मूल अभियुक्त और बाद में तलब किए गए अभियुक्त को तलब करने के लिए संतुष्टि की डिग्री अलग है।

22.10. इस न्यायालय द्वारा आगे यह देखा गया था कि एक व्यक्ति, जिसका नाम प्राथमिकी या आरोप पत्र में भी नहीं आता है या जिसका नाम प्राथमिकी में दिखाई देता है और आरोप पत्र के मुख्य भाग में नहीं बल्कि कॉलम 2 में है और धारा 193 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आरोपी के रूप में नहीं बुलाया गया है, उसे अभी भी अदालत द्वारा तलब किया जा सकता है, बशर्ते न्यायालय संतुष्ट हो कि उक्त वैधानिक प्रावधानों में प्रदान की गई शर्तें पूरी हो गई हैं। हालांकि, एक व्यक्ति जिसे पहले ही बरी कर दिया गया है, वह उस व्यक्ति की तुलना में अलग स्तर पर खड़ा है, जिसकी कभी जांच नहीं की गई थी या यदि उसके अधीन किया गया था, लेकिन आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। ऐसा व्यक्ति अदालत के समक्ष जांच के चरण में खड़ा रहा है और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री की न्यायिक जांच के बाद, अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ आगे बढ़ने के लिए प्रथम दृष्टया मामला भी नहीं है। इसलिए, अदालत को यह ध्यान रखना चाहिए कि गवाह इस तरह से आरोपमुक्त व्यक्ति के खिलाफ गवाही देते समय, केवल बदला लेने के लिए ऐसा नहीं कर रहा है या किसी के इशारे पर या ऐसे अन्य बाहरी विचारों के लिए उसका नाम ले रहा है।

22.11. इस न्यायालय ने आगे कहा कि उसे ऐसे सबूतों का इलाज करने में सावधानी बरतनी चाहिए और भूसी को अनाज से अलग करने का प्रयास करना चाहिए। यदि सबूतों की इतनी सावधानीपूर्वक जांच के बाद, अदालत की राय है कि इस तरह से आरोपमुक्त किए गए व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए सबूत मौजूद हैं, तो वह सीधे धारा 319 द०प्र०स० के प्रावधान का सहारा लिए बिना केवल धारा 398 द०प्र०स० के अनुसार कदम उठा सकती है। धारा 398 द०प्र०स० एक पुनरीक्षण शक्ति की प्रकृति में है जिसका प्रयोग केवल उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश द्वारा किया जा सकता है, जैसा भी मामला हो। हालांकि, एक व्यक्ति को फिर से आरोपी के रूप में भी आरोपित किया जा सकता है, लेकिन केवल एक जांच के बाद जैसा कि धारा 300(5) और 398 द०प्र०स० द्वारा विचार किया गया है। यदि इस तरह की जांच के दौरान या बाद में, ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कोई सबूत प्रतीत होता है, तो धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

23. हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 92: (2014)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)86] में इस न्यायालय की संविधान पीठ की उपरोक्त टिप्पणियों से, यह नोट किया जाता है कि एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ एक जांच पर विचार किया जाता है, जिसे धारा 227 द०प्र०स० के संदर्भ में मुकदमा शुरू होने से पहले उन्मोचन दे दी गई है, जैसा कि ऊपर निकाला गया है, लेकिन एक जांच पर, यदि ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे उन्मोचित किए गए व्यक्ति के खिलाफ सबूत हैं, तो ऐसे उन्मोचित किए गए व्यक्ति के खिलाफ धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि जब कोई व्यक्ति जिसे उन्मोचित नहीं किया गया है, लेकिन अभिलेखों पर मौजूद सबूतों पर अदालत द्वारा प्राप्त संतुष्टि के आधार पर धारा 319 द०प्र०स० के अनुसार तलब किया जाना है, तो कोई जांच या सुनवाई पर विचार नहीं किया जाता है। इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत और धारा 319 द०प्र०स० के तहत तलब किए गए व्यक्ति को सुनने के अवसर पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। जांच का ऐसा अधिकार केवल उस व्यक्ति को प्राप्त होगा जो परीक्षण शुरू होने से पहले ही उसी कार्यवाही में उन्मोचन दे चुका है। यह इस धारणा से अलग है कि एक व्यक्ति जिसे धारा 319 द०प्र०स० के तहत तलब किया गया है, उसे अन्य आरोपियों के साथ मुकदमा चलाने के लिए आरोपी के रूप में जोड़े जाने से पहले प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार सुनवाई का अधिकार है।

24. इसके अलावा, जब किसी व्यक्ति को धारा 319 द०प्र०स० के तहत एक आरोपी के रूप में बुलाया जाता है, जो मुकदमे के दौरान सामने आए सबूतों पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई संतुष्टि पर आधारित होता है ताकि अन्य अभियुक्त के साथ आरोपी के रूप में बुलाए गए व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सके, तो समन किया गया आरोपी आरोपमुक्त करने की मांग नहीं कर सकता है। यह बताना आवश्यक है कि धारा 227 द०प्र०स० के तहत माना गया निर्वहन मुकदमे की शुरुआत से पहले और आरोप तय करने के तुरंत बाद एक चरण में है, लेकिन जब धारा 319 द०प्र०स० के तहत किसी व्यक्ति को अन्य आरोपियों के साथ मुकदमा चलाने के लिए मुकदमे में आरोपी के रूप में शामिल करने के लिए बुलाने की शक्ति का प्रयोग किया जाता है, ऐसा व्यक्ति आरोपमुक्त करने की मांग नहीं कर सकता है क्योंकि अदालत ने धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग मुकदमे के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य के दौरान सामने आए सबूतों से प्राप्त संतुष्टि के आधार पर

किया होगा और ऐसी संतुष्टि उस संतुष्टि से अधिक है जो आरोप तय करते समय अदालत द्वारा प्राप्त की जाती है।

25. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. नागमुथु ने दृढ़ता से तर्क दिया कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए बुलाए गए व्यक्ति को अन्य अभियुक्तों के साथ मुकदमे में आरोपी के रूप में जोड़े जाने से पहले सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए और ऐसे व्यक्ति को उन्मोचन की मांग करते हुए आवेदन दायर करने का अवसर मिलना चाहिए। **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में दिए गए फैसले के मद्देनजर इसकी स्पष्ट रूप से परिकल्पना नहीं की गई है और इसलिए उक्त तर्कों को खारिज कर दिया जाता है।

26. इसके अलावा, धारा 319 द०प्र०स० से जुड़ी कोई अंतिमता नहीं है। यह केवल अतिरिक्त अभियुक्त के खिलाफ मुकदमे की शुरुआत का संकेत देता है। तर्क यह है कि किसी व्यक्ति को आरोपी के रूप में जोड़े जाने या पेश किए जाने से पहले सुनने की आवश्यकता नहीं है। जब एक बंद रिपोर्ट दायर की जाती है, तो विरोध याचिका के रूप में शिकायतकर्ता को सुनवाई के अवसर का संदर्भ और निर्भरता पूरी तरह से गलत है क्योंकि क्लोजर रिपोर्ट में अंतिमता होती है; इसलिए शिकायतकर्ता को एक अवसर दिया जाता है।

27. सुखपाल सिंह खैरा [सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य, (2023) 1 एस.सी.सी. 289: (2023)1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 454] में और हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम राज्य पंजाब का, (2014) 3 एस.सी.सी. 92: (2014) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86] ने निम्नानुसार संदर्भित प्रश्न का उत्तर दिया: (सुखपाल सिंह खैरा मामला [सुखपाल सिंह खैरा बनाम पंजाब राज्य, (2023)1 एस.सी.सी. 289: (2023)1 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 454], एस.सी.सी. पीपी 311-13, प्रस्तर-39-41), इस न्यायालय की एक संविधान पीठ, जिसका हम में से एक सदस्य (नागरत्ना) था, ने द०प्र०स० की अन्य संबद्ध धाराओं सपठित धारा 319 के संदर्भ में "मुकदमे का निष्कर्ष" अभिव्यक्ति के अर्थ पर विचार किया।

20. उपरोक्त मुद्दों/प्रश्नों पर, यह न्यायालय सर्व श्रमिक संगठन (केवी) बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2008)1 एस.सी.सी. 494 और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम बनाम अनिल गर्ग और अन्य (2017)14 एस.सी.सी. 634 में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय (निर्णयों) के प्रासंगिक प्रस्तर को संदर्भित करना भी उचित समझता है।

(ए) सर्व श्रमिक संगठन (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय में, सरगुजा ट्रांसपोर्ट (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "सरगुजा परिवहन मामले [(1987)1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] में इस न्यायालय के निर्णय को यूक्लिड के सूत्र के रूप में नहीं माना जा सकता है"। इसके अलावा, इस फैसले के अनुसार, सरगुजा ट्रांसपोर्ट (उपरोक्त) में दिए गए फैसले से 'बेंच हंटिंग' से संबंधित कदाचार को हतोत्साहित किया गया। यह निर्णय इस

बात की भी ओर इशारा करता है कि किसी निर्णय का किस तरीके से पालन किया जाना चाहिए। संक्षेप में, इस निर्णय के अनुसार, "न्यायालयों के निर्णयों को कानून के रूप में नहीं माना जाना चाहिए" और "किसी निर्णय पर आँख बंद करके मामलों का निपटान उचित नहीं है" और यह भी कि "तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों का थोड़ा अंतर किसी निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है"। पुनरुत्पादन संबंधी प्रासंगिक प्रस्तर-इस प्रकार हैं:-

"11. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी [(1987)1 एस.सी.सी.5:1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)1:ए.आई.आर.1987 एस.सी. 88] में इस न्यायालय के फैसले पर दृढ़ता से भरोसा किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि उस निर्णय में इस न्यायालय ने निर्धारित किया है कि यदि उच्च न्यायालय में दायर एक रिट याचिका को नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना वापस ले लिया जाता है, तो उसी राहत के लिए दूसरी रिट याचिका पर रोक लगा दी जाती है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि श्रम आयुक्त के दिनांक 12-4-2007 के आदेश में, जिसकी एक प्रति इस अपील के अनुलग्नक पी-4 में है, केवल यह उल्लेख किया गया है कि आवेदक कंपनी को धारा 25-ओ(1) के तहत अपनी कपड़ा मिल को बंद करने की अनुमति मांगने के लिए अपना आवेदन वापस लेने की अनुमति है, लेकिन उक्त आदेश में कोई उल्लेख नहीं है कि कंपनी को स्वतंत्रता दी गई है या इसके तहत एक नया आवेदन दायर करने की अनुमति दी गई है। धारा 25-ओ(1)। तदनुसार, उन्होंने प्रस्तुत किया कि सरगुजा परिवहन मामले [(1987)एस.सी.सी.5:1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर.1987 एस.सी. 88] का निर्णय प्रस्तुत मामले पर पूरी तरह से लागू होता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यद्यपि सरगुजा परिवहन मामले [(1987)1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] में निर्णय एक रिट याचिका से संबंधित था, उस निर्णय का अनुपात सार्वजनिक नीति पर आधारित था और इसलिए यह औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-ओ के तहत कार्यवाही के लिए भी लागू था।

12. हमने सरगुजा परिवहन सेवा मामले [(1987)1 एस.सी.सी.5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)19: ए.आई.आर.1987 एस.सी. 88] के निर्णय की सावधानीपूर्वक जांच की है। उक्त निर्णय में इसका उल्लेख प्रस्तर-8 में इस प्रकार किया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 11)

"8. ... यह सामान्य ज्ञान है कि अक्सर कुछ समय के लिए एक रिट याचिका पर सुनवाई के बाद जब याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता को पता चलता है कि अदालत द्वारा याचिका को स्वीकार करने का आदेश पारित करने की संभावना नहीं है, तो याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता द्वारा अनुरोध किया जाता है कि याचिकाकर्ता को एक नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना रिट याचिका वापस लेने की अनुमति दी जाए। एक अदालत जो याचिका को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, वह आमतौर पर एक नई याचिका दायर करने की स्वतंत्रता नहीं देगी, जबकि वह याचिका को वापस लेने की अनुमति देने के लिए सहमत हो सकती है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-9 में, इसका भी उल्लेख इस प्रकार किया गया है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 12)

"9. ... लेकिन हमारा विचार है कि संहिता के आदेश 23 के नियम 1 में अंतर्निहित सिद्धांत को न्याय प्रशासन के हित में रिट याचिका को वापस लेने के मामलों में भी विस्तारित किया जाना चाहिए, न कि न्याय के आधार पर बल्कि सार्वजनिक नीति के आधार पर जैसा कि ऊपर बताया गया है। यह वादी को बेंच-हंटिंग रणनीति में शामिल होने से भी हतोत्साहित करेगा। (महत्व सन्निविष्ट)

हमारी राय है कि सरगुजा परिवहन मामले [(1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] में निर्णय को प्रस्तर-8 और 9 में टिप्पणियों के आलोक में समझा जाना चाहिए, जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है। उक्त निर्णय सार्वजनिक नीति के आधार पर दिया गया था कि, यदि पहली रिट याचिका की सुनवाई करते समय पीठ इसे खारिज करने के लिए इच्छुक है, और अधिवक्ता याचिका को वापस ले लेता है ताकि वह एक अधिक उपयुक्त या सुविधाजनक पीठ के समक्ष दूसरी रिट याचिका दायर कर सके, तो यदि वह इसे वापस लेता है, तो उसे दूसरी रिट याचिका दायर करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि ऐसा करने की स्वतंत्रता न दी जाए। दूसरे शब्दों में, बेंच-हंटिंग की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

13. अक्सर ऐसा होता है कि किसी याचिका की सुनवाई के दौरान अदालत मौखिक टिप्पणियां करती है जो यह दर्शाती है कि वह याचिका को खारिज करने के लिए इच्छुक है। इस स्तर पर अधिवक्ता अधिक सुविधाजनक पीठ के समक्ष एक नई याचिका दायर करने के इरादे से गुण-दोष पर फैसला आए बिना अपनी याचिका वापस लेने की मांग कर सकता है। यह कदाचार था जिसे सरगुजा परिवहन मामले [(1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] में निर्णय द्वारा हतोत्साहित करने की मांग की गई थी।

14. मिसालों के विषय पर लॉर्ड हैल्सबरी, एल.सी., ने क्विन बनाम लीथम [1901 एसी 495: (1900-1903) इला० ईआर प्रतिनिधि 1 (एचएल)] : (सभी ईआर पी. 7 जीआई) "एलन वी [1898 एसी 1: (1895-1899) सभी ईआर प्रतिनिधि 52 (एचएल)] और उसमें जो निर्णय लिया गया था, एक सामान्य चरित्र के दो अवलोकन हैं जो मैं करना चाहता हूं; और एक बात यह है कि मैंने पहले जो कहा है उसे दोहराना है - कि प्रत्येक निर्णय को साबित किए गए या साबित किए जाने वाले विशेष तथ्यों पर लागू होने के रूप में पढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि वहां पाए जाने वाले अभिव्यक्तियों की व्यापकता पूरे कानून की व्याख्या करने का इरादा नहीं है, बल्कि उस मामले के विशेष तथ्यों द्वारा शासित और योग्य है जिसमें ऐसी अभिव्यक्तियां पाई जानी हैं। दूसरा यह है कि एक मामला केवल एक अधिकार है जो वह वास्तव में तय करता है। मैं पूरी तरह से इनकार करता हूं कि इसे एक प्रस्ताव के लिए उद्धृत किया जा सकता है जो इससे तार्किक रूप से अनुसरण कर सकता है। तर्क का ऐसा तरीका मानता है कि कानून आवश्यक रूप से एक तार्किक संहिता है, जबकि प्रत्येक अधिवक्ता को यह स्वीकार करना चाहिए कि कानून हमेशा तार्किक नहीं होता है। (महत्व सन्निविष्ट)

हम उपरोक्त टिप्पणियों से पूरी तरह सहमत हैं।

15. अंबिका क्वारी वर्क्स बनाम गुजरात राज्य [(1987) 1 एस.सी.सी. 213] (एस.सी.सी. पी. 221, प्रस्तर-18 के अनुसार) इस न्यायालय ने कहा:

"18. किसी भी निर्णय के अनुपात को उस मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। यह बहुत समय पहले कहा गया है कि एक मामला केवल एक प्राधिकरण है जो वह वास्तव में तय करता है, न कि तार्किक रूप से इसका अनुसरण करता है।

16. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना चीनी मिल (प्रा) लिमिटेड [(2003) 2 एस.सी.सी. 111] (एस.सी.सी. पी. 130, प्रस्तर-59 के अनुसार) में इस न्यायालय ने कहा:

"59. ... यह भी अच्छी तरह से तय है कि तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा अंतर किसी निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है। (महत्व सन्निविष्ट)

17. जैसा कि भारत पेट्रोलियम कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम एनआर वैरामणि [(2004) 8 एस.सी.सी. 579: ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 4778] में अवधारित किया गया है कि तथ्यात्मक स्थिति का खुलासा किए बिना किसी निर्णय पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उसी फैसले में न्यायालय ने यह भी कहा: (एस.सी.सी. पीपी 584-85, प्रस्तर-9-12)

"9. अदालतों को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर भरोसा नहीं करना चाहिए कि तथ्यात्मक स्थिति उस निर्णय की तथ्य स्थिति के साथ कैसे फिट बैठती है जिस पर भरोसा किया गया है। न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और न ही किसी कानून के प्रावधानों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए और वह भी उनके संदर्भ से बाहर कर दिया जाना चाहिए। इन टिप्पणियों को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें उन्हें कहा गया प्रतीत होता है। अदालतों के निर्णयों को कानून के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। किसी कानून के शब्दों, वाक्यांशों और प्रावधानों की व्याख्या करने के लिए, न्यायाधीशों के लिए लंबी चर्चा करना आवश्यक हो सकता है, लेकिन चर्चा व्याख्या करने के लिए होती है न कि परिभाषित करने के लिए। न्यायाधीश कानूनों की व्याख्या करते हैं, वे निर्णयों की व्याख्या नहीं करते हैं। वे विधियों के शब्दों की व्याख्या करते हैं; उनके शब्दों की व्याख्या कानून के रूप में नहीं की जानी चाहिए। लंदन में ग्रेविंग डॉक कंपनी लिमिटेड बनाम हॉर्टन [1951 एसी 737: (1951) 2 इला० ईआर 1 (एचएल)] (पृष्ठ 761 एसी) पर लॉर्ड मैकडरमोट ने देखा: (सभी ईआर पी. 14 सी-डी)

बेशक, इस मामले को केवल विल्स के इप्सिसिमा वर्बा के साथ व्यवहार करके नहीं सुलझाया जा सकता है जैसे कि वे संसद के एक अधिनियम का हिस्सा थे और उस पर उपयुक्त व्याख्या के नियमों को लागू करते थे। यह उस सबसे प्रतिष्ठित न्यायाधीश द्वारा वास्तव में उपयोग की जाने वाली भाषा को दिए जाने वाले महान महत्व को कम करने के लिए नहीं है, ...'

10. गृह कार्यालय बनाम डोरसेट यॉट कंपनी लिमिटेड [1970 एसी 1004: (1970) 2 डब्ल्यूएलआर 1140: (1970) 2 इला० ईआर 294 (एचएल)] लॉर्ड रीड ने कहा: 'लॉर्ड एटकिन का भाषण ... इसे ऐसा नहीं माना जाना चाहिए जैसे कि यह एक वैधानिक परिभाषा हो। इसके लिए नई परिस्थितियों में योग्यता की आवश्यकता होगी।

(सभी ईआर पी. 297 ग्राम) शेफर्ड होम्स लिमिटेड बनाम सैंडहैम में मेगरी (संख्या-2) [(1971) 1 डब्ल्यूएलआर 1062: (1971) 2 इला० ईआर 1267], अवलोकन किया : (सभी ईआर पी. 1274डी)

'किसी को, निश्चित रूप से, यहां तक कि रसेल, एलजे के एक आरक्षित निर्णय को भी नहीं समझना चाहिए जैसे कि यह संसद का एक अधिनियम था,' और, ब्रिटिश रेलवे बोर्ड बनाम हेरिंगटन [1972 एसी 877: (1972) 2 डब्ल्यूएलआर 537: (1972) 1 इला० ईआर 749 (एचएल)] लॉर्ड मॉरिस ने कहा: (ईआर पी. 761सी) 'किसी भाषण या निर्णय के शब्दों को ऐसे मानने में हमेशा खतरा होता है जैसे कि वे एक विधायी अधिनियम के शब्द हों, और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कथन किसी विशेष मामले के तथ्यों की सेटिंग में किए जाते हैं।

11. परिस्थितिजन्य लचीलापन, एक अतिरिक्त या अलग तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच अंतर की दुनिया बना सकता है। किसी निर्णय पर आंख मूंदकर मामलों का निपटारा करना उचित नहीं है।

12. मिसालें लागू करने के मामले में हिदायतुल्लाह के निम्नलिखित शब्द लोकस क्लासिकस बन गए हैं: (अब्दुल कयूम बनाम सीआईटी [ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 680], ए.आई.आर. पृष्ठ 688, प्रस्तर-19)

'19. ... प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे के बीच घनिष्ठ समानता पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है, ऐसे मामलों को तय करने में, किसी को मामलों को तय करने के प्रलोभन से बचना चाहिए (जैसा कि कार्डोजो ने कहा है) दूसरे के रंग के खिलाफ एक मामले के रंग का मिलान करके। इसलिए, यह तय करने के लिए कि कोई मामला रेखा के किस तरफ पड़ता है, दूसरे मामले के साथ व्यापक समानता बिल्कुल भी निर्णायक नहीं है।

'मिसाल का पालन केवल तब तक किया जाना चाहिए जब तक कि यह न्याय के मार्ग को चिह्नित करता है, लेकिन आपको मृत लकड़ी को काटना होगा और साइड की शाखाओं को काटना होगा अन्यथा आप खुद को झाड़ियों और शाखाओं में खोया हुआ पाएंगे। मेरा अनुरोध है कि न्याय के मार्ग को उन बाधाओं से दूर रखा जाए जो इसमें बाधा डाल सकती हैं।' (महत्व सन्निविष्ट)

18. हमने पूर्वोक्त निर्णयों और उसमें निर्धारित सिद्धांतों का उल्लेख किया है, क्योंकि अक्सर पूरे निर्णय और उसमें निहित तर्क को पढ़े बिना किसी प्रस्ताव के लिए निर्णयों का हवाला दिया जाता है। हमारी राय में, सरगुजा परिवहन मामले [(1987) 1 एस.सी.सी. 5:1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] में इस न्यायालय के निर्णय को यूक्लिड के सूत्र के रूप में नहीं माना जा सकता है।

19. प्रस्तुत मामले में, हम संतुष्ट हैं कि धारा 25-ओ(1) के तहत पहली याचिका को वापस लेने के लिए आवेदन को वास्तविक बनाया गया था क्योंकि प्रतिवादी कंपनी को 5-4-2007 को उप श्रम आयुक्त से एक पत्र प्राप्त हुआ था जिसमें पक्षगण की बैठक बुलाई गई थी ताकि एक सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए प्रयास किया जा सके।

वास्तव में, प्रतिवादी कंपनी धारा 25-O(1) के तहत अपना आवेदन दाखिल करने की तारीख से 60 दिनों की समाप्ति का इंतजार कर सकती थी, जिसकी समाप्ति पर आवेदन को धारा 25-O(3) के तहत अनुमति दी गई मानी जाती। तथ्य यह है कि उसने ऐसा नहीं किया, और इसके बजाय धारा 25-O(1) के तहत अपने आवेदन को वापस लेने के लिए आवेदन किया, इसकी ईमानदारी को दर्शाता है। प्रतिवादी कंपनी एक सौहार्दपूर्ण समाधान के लिए प्रयास कर रही थी, और यह स्पष्ट रूप से वास्तविक था, और यह बेंच-हंटिंग का मामला नहीं था जब उसने पाया कि इसके खिलाफ एक प्रतिकूल आदेश पारित किए जाने की संभावना थी। इसलिए, सरगुजा परिवहन मामला [(1987)1 एस.सी.सी.5:1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] स्पष्ट रूप से अलग है, और केवल तभी लागू होगा जहां पहली याचिका बेंच-हंटिंग करने के लिए या किसी अन्य दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य के लिए वापस ले ली गई थी।

20. हम अपीलकर्ता के अधिवक्ता से सहमत हैं कि यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-ओ(1) के तहत कार्यवाही पर सख्ती से लागू नहीं होती है, या किसी अन्य अधिनियम के तहत अन्य न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यवाही, सीपीसी में कुछ सामान्य सिद्धांत लागू हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, भले ही धारा 11 सीपीसी सख्ती से लागू नहीं होती है क्योंकि दोनों कार्यवाही सूट नहीं हो सकती हैं, रस जुडिकाटा (पूर्व न्याय निश्चित विषय) का सामान्य सिद्धांत पांडिचेरी खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड बनाम पी. कुलोथंगन [(2004)1 एस.सी.सी. 68: 2004 एस.सी.सी. (एल & एस) 32] के माध्यम से लागू हो सकता है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि सीपीसी के सभी प्रावधान उन कार्यवाहियों पर सख्ती से लागू होंगे जो सूट नहीं हैं।

21. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने उत्तर प्रदेश राज्य ब्रासवेयर कॉर्पोरेशन में इस न्यायालय के निर्णय में एक टिप्पणी पर भरोसा किया है। लिमिटेड बनाम उदय नारायण पांडे [(2006) 1 एस.सी.सी. 479: 2006 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 250] (एस.सी.सी. पृष्ठ 491) जिसके प्रस्तर-38 में यह कहा गया है:

"38. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 7 नियम 7 अदालत को किसी भी स्थिति में राहत देने की शक्ति प्रदान करता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होते हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

यह ध्यान दिया जा सकता है कि उपरोक्त निर्णय में यह टिप्पणी कि सीपीसी के प्रावधान औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होते हैं, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7 नियम 7 के संदर्भ में किया गया था, जो अदालत को किसी भी स्थिति में राहत देने की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए, उपरोक्त अवलोकन को इसके उचित संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, और इसका मतलब यह नहीं निकाला जा सकता है कि सीपीसी के सभी प्रावधान औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत कार्यवाही पर सख्ती से लागू होंगे।

22. इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश 23 नियम 1(4) सीपीसी में कहा गया है कि जहां वादी अदालत की अनुमति के बिना मुकदमा वापस लेता है, उसे उसी विषय-वस्तु के संबंध में कोई नया मुकदमा दायर करने से

रोक दिया जाता है। हालाँकि, हमारी राय में, यह प्रावधान केवल मुकदमों पर लागू होगा। धारा 25-ओ(1) के तहत एक आवेदन एक मुकदमा नहीं है, और इसलिए, उक्त प्रावधान ऐसे आवेदन पर लागू नहीं होगा।
(ख) हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के प्रस्तर-13 से 16 निम्नानुसार हैं -

"13. यह प्रश्न कि क्या वाद को वापस लेकर दावे का परित्याग किया गया है, यह कानून और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है जैसा कि **रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट [रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एस.सी.सी. 58: (2009) 1 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 706]** में अवधारित किया गया है। वापसी के आदेश की भाषा हमेशा निर्धारक नहीं होगी। उचित और न्यायपूर्ण निर्णय के लिए पृष्ठभूमि के तथ्यों की जांच करनी होगी। **सरगुजा परिवहन सेवा [सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी, (1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88]** को एक अमूर्त प्रस्ताव के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है या किसी मामले के तथ्यों के बिना अनुपात लागू नहीं किया जा सकता है। नीचे दिए गए उद्धरण को इस प्रकार प्रासंगिक माना जाता है: **(विक्रम सीमेंट मामला [रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एस.सी.सी. 58: (2009) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 706]**, एस.सी.सी. पीपी 79-80, प्रस्तर-62)

"62. ... '9. ... जबकि एक नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना उच्च न्यायालय में दायर एक रिट याचिका को वापस लेने से मुकदमे जैसे अन्य उपायों पर रोक नहीं लग सकती है। (सरगुजा परिवहन सेवा मामला [सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी, (1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88], एस.सी.सी. पी. 12, प्रस्तर-9)" (मूल में बल वर्धित)

14. वापसी के लिए आवेदन में कहा गया है कि यह अधिनियम के तहत उपायों को आगे बढ़ाने के लिए किया जा रहा था। निस्संदेह अधिनियम के तहत कार्यवाही एक मुकदमे की तुलना में वसूली के लिए अधिक त्वरित है, जिसे डिफ्री के बाद निष्पादन कार्यवाही के बाद पालन करने की आवश्यकता होती है। अधिनियम की धारा 3(1)(d)(iv) में प्रावधान किया गया है कि इसके तहत उपाय किसी अन्य कानून के तहत उपलब्ध किसी अन्य उपाय पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना था। इसलिए, अपीलकर्ता ने कभी भी मुकदमा वापस लेकर अपने दावे को छोड़ने का इरादा नहीं किया। पृष्ठभूमि के तथ्यों पर विचार किए बिना निकासी आदेश की भाषा निर्धारक नहीं हो सकती।

15. आदेश 23 नियम 1 के तहत बार केवल एक नए मुकदमे पर लागू होगा और अधिनियम के तहत कार्यवाही पर नहीं। सर्व श्रमिक संगठन (केवी) बनाम महाराष्ट्र राज्य [सर्व श्रमिक संगठन (केवी) बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008)1 एस.सी.सी. 494 (2008)1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 215] औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 25-ओ के तहत वचन पत्र को बंद करने के लिए आवेदन वापस ले लिया गया था क्योंकि मामले के निपटारे के प्रयास किए गए थे। समझौता संभव नहीं होने के कारण, प्रबंधन ने एक नया आवेदन दायर किया। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23 के तहत इसका विरोध किया गया था क्योंकि सरगुजा परिवहन सेवा [सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी, (1987)1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19:

ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] पर भरोसा करते हुए पहले के आवेदन को बिना शर्त वापस ले लिया गया था। इस तर्क को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत कार्यवाही एक मुकदमा नहीं थी और यह वापसी सौहार्दपूर्ण समाधान का पता लगाने के लिए वास्तविक थी। यह दुर्भावनापूर्ण तरीके से या बैंच हंटिंग होल्डिंग के लिए निम्नानुसार वापसी नहीं थी: (सर्व श्रमिक संगठन मामला [सर्व श्रमिक संगठन (केवी) बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 1 एस.सी.सी. 494: (2008) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 215] , एस.सी.सी. पी 502, प्रस्तर-22)

"22. इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश 23 नियम 1(4) सीपीसी में कहा गया है कि जहां वादी अदालत की अनुमति के बिना मुकदमा वापस लेता है, उसे उसी विषय-वस्तु के संबंध में कोई नया मुकदमा दायर करने से रोक दिया जाता है। हालाँकि, हमारी राय में, यह प्रावधान केवल मुकदमों पर लागू होगा। धारा 25-ओ(1) के तहत एक आवेदन एक मुकदमा नहीं है, और इसलिए, उक्त प्रावधान ऐसे आवेदन पर लागू नहीं होगा।

16. विक्रम सीमेंट [रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एस.सी.सी. 58: (2009) 1 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 706] में पहले की याचिका को खारिज कर दिया गया था क्योंकि इसे दबाया नहीं गया था और दूसरे आवेदन का विरोध किया गया था क्योंकि यह सुनवाई योग्य नहीं है। आपति को खारिज करते हुए यह इस प्रकार देखा गया: (एस.सी.सी. पी. 80, प्रस्तर-85)

"65. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह कंपनी द्वारा दावे को छोड़ने या छोड़ने का मामला नहीं था। लेकिन, कार्यालय की आपति, व्यावहारिक कठिनाई और लॉजिस्टिक समस्याओं को देखते हुए, याचिकाकर्ता कंपनी ने कई श्रमिकों के खिलाफ "सर्वग्राही" और समग्र याचिका के साथ आगे नहीं बढ़े और उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा सुझाए गए अलग-अलग याचिकाएं दायर कीं।

21. इसके अलावा, उपरोक्त संकेतित मुद्दों/प्रश्नों का उत्तर देने के लिए, अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक नीति' पर भी ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय सरगुजा परिवहन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर आधारित है। जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश XXIII के उप-नियम 1 नियम 4 पर विचार करने के बाद कहा कि "उपरोक्त नियम में अंतर्निहित सिद्धांत सार्वजनिक नीति पर आधारित है"

(ए) अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक नीति' के संबंध में, पी. रथिनम बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के निम्नलिखित प्रस्तर-3 और (1994) 3 एस.सी.सी. 394 में रिपोर्ट किए गए एक अन्य पर संदर्भ दिया जा सकता है, जो यहां निकाले गए हैं: -

"92. सार्वजनिक नीति की अवधारणा, हालांकि, भ्रामक, भिन्न और अनिश्चित है। इसे "अविश्वसनीय मार्गदर्शक", "अनियंत्रित घोड़ा" आदि के रूप में भी वर्णित किया गया है। सार्वजनिक नीति के सिद्धांत का वर्णन करने वाले

प्रमुख निर्णय को पार्क, बी. में एगर्टन बनाम ब्राउनलो [(1853) 4 एचएलसी 121] जिसमें यह पृष्ठ 123 पर नीचे कहा गया था, जैसा कि घेरूलाल पारख बनाम महादेवदास मैया [ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 781: 1959 सप्प (2) एस.सी.आर 406] के प्रस्तर-22 के रूप में स्वीकार किया गया है और उद्धृत किया गया है:

"सार्वजनिक नीति" एक अस्पष्ट और असंतोषजनक शब्द है, और कानूनी अधिकारों के निर्णय पर लागू होने पर अनिश्चितता और त्रुटि की ओर ले जाने के लिए गणना की जाती है; यह विभिन्न अर्थों में समझा जा सकता है; इसका अर्थ हो सकता है, और करता है, अपने सामान्य अर्थों में, 'राजनीतिक समीचीनता' या वह जो समुदाय की आम भलाई के लिए सबसे अच्छा है; और इस अर्थ में प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा की आदतों, प्रतिभाओं और स्वभावों के अनुसार हर तरह की राय हो सकती है, जिसे यह तय करना है कि कोई कार्य सार्वजनिक नीति के खिलाफ है या नहीं। इसे न्यायिक निर्णय का आधार बनने की अनुमति देने के लिए, सबसे बड़ी अनिश्चितता और भ्रम पैदा होगा। यह राजनेता का प्रांत है, न कि अधिवक्ता, चर्चा करने के लिए, और विधायिका का यह निर्धारित करने के लिए कि जनता की भलाई के लिए सबसे अच्छा क्या है और उचित अधिनियमों द्वारा इसके लिए प्रदान करने के लिए। यह केवल कानून की व्याख्या करने के लिए न्यायाधीश का प्रांत है; कानून से लिखित; हमारे पूर्ववर्तियों और हमारी मौजूदा अदालतों के निर्णयों से अलिखित या सामान्य कानून, स्वीकृत अधिकार के पाठ लेखकों से, और सिद्धांतों पर ठोस कारण और न्यायपूर्ण अनुमान द्वारा उनसे स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए; यह अनुमान लगाने के लिए नहीं कि उनकी राय में, समुदाय के लाभ के लिए सबसे अच्छा क्या है। इनमें से कुछ निर्णय निस्संदेह जनता की भलाई की प्रचलित और न्यायपूर्ण राय पर आधारित हो सकते हैं; उदाहरण के लिए, विवाह या व्यापार के संयम में अनुबंधों की अवैधता। वे मान्यता प्राप्त कानून का एक हिस्सा बन गए हैं, और इसलिए हम उनसे बंधे हैं, लेकिन इस तरह हम कानून के रूप में वह सब कुछ स्थापित करने के लिए अधिकृत नहीं हैं जो हम जनता की भलाई के लिए सोच सकते हैं, और हर उस चीज को प्रतिबंधित करते हैं जो हम अन्यथा सोचते हैं।

93. उपरोक्त मामले में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने पृष्ठ 795 पर यह कहकर सार्वजनिक नीति के सिद्धांत को संक्षेप में प्रस्तुत किया कि सार्वजनिक नीति या कानून की नीति एक भ्रामक अवधारणा है; इसे "अविश्वसनीय मार्गदर्शक", "परिवर्तनशील गुणवत्ता", "अनिश्चित एक", "अनियंत्रित" आदि के रूप में वर्णित किया गया है।

94. देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों को भी **भगवंत गेनुजी गिरमे बनाम गंगाबिसन रामगोपाल** [ए.आई.आर. 1940 बॉम 369:42 बीएलआर 750:191 आईसी 806] में अपने निर्णयों में इस अवधारणा पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर मिला है; माफिजुद्दीन खान चौधरी बनाम हबीबुद्दीन शेख [ए.आई.आर. 1957 कैल 336] ; कोलापती वेंकटरेड्डी बनाम कोलापती पेडा वेंकटचलम [ए.आई.आर. 1964 एपी 465: (1964) 1 अंधा डब्ल्यूआर 248] और रतनचंद हीराचंद बनाम अस्कर नवाज जंग [ए.आई.आर. 1976 एपी 112: आईएलआर (1975) एपी 843: (1975)1 एपीएलजे (एचसी) 344] कोलापाटी मामले में [ए.आई.आर. 1964 एपी 465: (1964)1 अंधा डब्ल्यूआर 248] में यह कहा गया था कि सार्वजनिक नीति शब्द एक सटीक परिभाषा में सक्षम नहीं है और जो कुछ भी संचालन के अन्याय, स्वतंत्रता के संयम, वाणिज्य और प्राकृतिक या कानूनी अधिकारों

के लिए जाता है; जो कुछ भी न्याय में बाधा डालता है या किसी कानून का उल्लंघन करता है और जो कुछ भी अच्छी नैतिकता के खिलाफ है, उसे सार्वजनिक नीति के खिलाफ कहा जा सकता है। इन निर्णयों ने यह भी बताया है कि सार्वजनिक नीति की अवधारणा विस्तार और संशोधन में सक्षम है। रतनचंद [ए.आई.आर. 1976 एपी 112: आईएलआर (1975) एपी 843: (1975) 1 एपीएलजे (एचसी) 344] मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की एक पीठ ने चिनप्पा रेड्डी के माध्यम से बोलते हुए, पृष्ठ 117 पर प्रोफेसर विनफील्ड के एक महत्वपूर्ण अंश को उद्धृत किया, "अंग्रेजी आम कानून में सार्वजनिक नीति पर निबंध" (42 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 76)। वही नीचे है:

"सार्वजनिक नीति आवश्यक रूप से परिवर्तनशील है। यह न केवल एक सदी से दूसरी सदी में परिवर्तनशील हो सकता है, न केवल एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बल्कि एक ही पीढ़ी में भी। इसके अलावा, यह न केवल उन विशेष विषयों के संबंध में भिन्न हो सकता है जिन्हें इसमें शामिल किया जा सकता है, बल्कि किसी एक विशेष विषय से संबंधित नियमों के संबंध में भी भिन्न हो सकता है। सार्वजनिक नीति की यह परिवर्तनशीलता सिद्धांत की इमारत में एक पत्थर है और उस पर फेंकी जाने वाली मिसाइल नहीं है। इसके बिना सार्वजनिक नीति लगभग बेकार होगी।

95. सार्वजनिक नीति के "अनियंत्रित घोड़े" ने अंग्रेजी कानून को कैसे प्रभावित किया, इसके बारे में डब्ल्यू फ्रीडमैन ने अपने कानूनी सिद्धांत (5 वें संस्करण) में भाग III में पृष्ठ 479 एट सेक, धारा 2 में "कानूनी सिद्धांत, सार्वजनिक नीति और कानूनी मूल्यांकन" के रूप में वर्णित किया है। सार्वजनिक नीति को "अनियंत्रित घोड़े" के रूप में वर्णन के रूप में, यह कहा जा सकता है कि असहनीय घोड़ों से दूर नहीं भागने के लिए न्यायाधीश रहे हैं। लॉर्ड डेनिंग उनमें से एक हैं। इस महान न्यायाधीश ने एंडरबी टाउन फुटबॉल क्लब लिमिटेड बनाम फुटबॉल एसोसिएशन लिमिटेड [(1971) सीएच 591, 606] में पृष्ठ 606 में जो कहा वह है "काठी में एक अच्छे आदमी के साथ, अनियंत्रित घोड़े को नियंत्रण में रखा जा सकता है। यह बाधाओं पर कूद सकता है। (देखें सेंट्रल इनलैंड वाटर ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम ब्रोजो नाथ गांगुली [(1986) 3 एस.सी.सी. 156: 1986 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 429: (1986) 1 एटीसी 103: ए.आई.आर. 1986 एस.सी. 1571] का प्रस्तर-93 देखें। किन्तु लॉर्ड डेनिंग के समकक्ष कितने ही न्यायाधीश क्यों न हों, वह अपने आप में विशिष्ट एवं अद्वितीय (*sui generis*) हैं।

96. जो सार्वजनिक नीति है या नहीं है या सार्वजनिक नीति का हिस्सा हो सकता है, उसकी भयावहता और जटिलता, शब्द और वाक्यांशों के पृष्ठ 454 से 539 में इस बारे में जो कहा गया है, उसके बारे में विहंगम दृष्टि से स्पष्ट होगा (स्थायी संस्करण, खंड 35, 1963)। इसे घर लाने के लिए कुछ अंश पर्याप्त होंगे। यह पहली बार उप-शीर्षक "सामान्य रूप से" के तहत नीचे पृष्ठ 455 और 456 में कहा गया है:

"सार्वजनिक नीति" कुछ ऐसा आयात करती है जो अनिश्चित और उतार-चढ़ाव वाली होती है, जो लोगों की बदलती आर्थिक जरूरतों, सामाजिक रीति-रिवाजों और नैतिक आकांक्षाओं के साथ बदलती है। बारविन बनाम रेडी [307 पी 2 डी 175, 181: 62 एनएम 183] ।

'सार्वजनिक नीति' अपनी प्रकृति में इतनी अनिश्चित और उतार-चढ़ाव वाली है, जो उस समय की आदतों और फैशन के साथ, वाणिज्य के विकास और व्यापार के उपयोग के साथ भिन्न होती है, कि किसी भी डिग्री की सटीकता के साथ इसकी सीमा निर्धारित करना मुश्किल है। इसे अदालतों द्वारा कभी भी परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन धोखाधड़ी की तरह ही इसे परिभाषा से मुक्त और मुक्त छोड़ दिया गया है। पेंडलेटन बनाम ग्रीवर [जे 193 पी. 885, 887, जे 80 ओके1, 35:17 एएलआर 317]।

'सार्वजनिक नीति' एक ऐसा शब्द है जिसे परिभाषित करना हमेशा आसान नहीं होता है और यह अलग-अलग हो सकता है क्योंकि लोगों की आदतें, राय और कल्याण अलग-अलग हो सकते हैं, और एक राज्य या देश की सार्वजनिक नीति दूसरे में नहीं हो सकती है। फ्रैंकलिन फायर इंस कंपनी बनाम मोल [58 एनई 2 एन 947, 950, 951: 115 इंड. ऐप 289]

(ख) 'सार्वजनिक नीति' की अभिव्यक्ति पर, हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के प्रस्तर-19 का उल्लेख करना भी उचित होगा, जो निम्नानुसार है: -

"19. वाक्यांश "सार्वजनिक नीति" सटीक परिभाषा में सक्षम नहीं है। पी. रथिनम बनाम में। भारत संघ [पी. रथिनम बनाम भारत संघ, (1994) 3 एस.सी.सी. 394: 1994 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 740], यह देखा गया था: (एस.सी.सी. पी. 424, प्रस्तर-92)

"92. सार्वजनिक नीति की अवधारणा, हालांकि, भ्रामक, भिन्न और अनिश्चित है। इसे "अविश्वसनीय मार्गदर्शक", "अनियंत्रित घोड़ा", आदि के रूप में भी वर्णित किया गया है।

मोटे तौर पर इसका मतलब यह होगा कि समाज के व्यापक हित में क्या है जिसमें धार्मिकता, अच्छे विवेक और समानता के प्रश्न शामिल हैं, जो कानून को बनाए रखते हैं, न कि प्रतिगामी व्याख्या। ऋण चुकाने के लिए कानूनी दायित्व से बचने के लिए ऋणदाता को सुविधा प्रदान करने के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। ऋणी व्यक्ति का अपने वादे का पालन करने और चुकाने का पवित्र कर्तव्य है। समय पर पुनर्भुगतान उन लोगों को ऋण की सुविधा सुनिश्चित करता है जो जरूरतमंद हो सकते हैं। सार्वजनिक नीति को प्रभावी ढंग से ऋणदाता को अनुचित रूप से कानून का दुरुपयोग करने से पुनर्भुगतान से रोकने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। मामले के तथ्यों में चुनाव के सिद्धांत के सिद्धांत का आह्वान पूरी तरह से गलत था।

(ग) इस न्यायालय के विचार में, आपराधिक मामलों के संबंध में 'सार्वजनिक नीति' क्या होगी, इसका अनुमान निम्नलिखित कहातों से लगाया जा सकता है: -

(a) अपराध से उत्पन्न या अपराध द्वारा प्राप्त की गई संपत्ति दूषित (vitiating) होती है।

(b) कोई भी व्यक्ति अपने ही अपराध या अन्याय से कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। अपराध से उत्पन्न प्रत्येक कार्य, अधिकार अथवा कार्यवाही दूषित हो जाती है। दूसरे शब्दों में, अपराध अपने से उत्पन्न सभी परिणामों को अमान्य कर देता है।

(c) राज्य एवं समाज के हित में यह आवश्यक है कि अपराध दण्डहीन न रहें।

(d) दुष्कृत्य दण्डहीन नहीं छोड़े जाने चाहिए, क्योंकि दण्ड से मुक्ति अपराधी को निरंतर अपराध करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

(e) कुछ व्यक्तियों को दिया गया दण्ड समस्त समाज में भय उत्पन्न करता है; अर्थात् कुछ को दण्ड, किंतु भय सभी को।

(f) दण्ड से बच निकलने की आशा अपराध करने के लिए निरंतर प्रलोभन प्रदान करती है।

(g) जहाँ दोष है, वहाँ दण्ड का होना आवश्यक है।

(h) जहाँ कोई व्यक्ति अपराध करता है, वहीं उसे दण्डित किया जाना चाहिए।

(घ) पी. रथिनम (उपरोक्त) और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के उपरोक्त संदर्भित प्रस्तर और ऊपर उद्धृत मैक्सिमों के संयुक्त रूप से पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि प्रस्तुत मामले के संदर्भ में या आपराधिक मामलों के संदर्भ में या धारा 482 द०प्र०स० (अब निरसित किया गया)/धारा 528 बी.एन.एस.एस. के तहत आच्छादित किए गए मामले के संदर्भ में 'सार्वजनिक नीति' की अभिव्यक्ति से पता चलता है। इस न्यायालय के विचार में यह होगा कि अपराध/अपराध करने वाले व्यक्ति को दंडित किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जहां तक आपराधिक मामलों का संबंध है, अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक नीति' यह होगी कि 'बुरे कर्मों को दंडित नहीं किया जाना चाहिए'। इसलिए, एक ज्ञात संदिग्ध/अभियुक्त को मुकदमे का सामना किए बिना मुक्त नहीं होना चाहिए।

(ई) उपरोक्त को मजबूत करने के लिए, हरदीप सिंह (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के निम्नलिखित भाग का उल्लेख करना उचित होगा: -

"..... हमें ऐसा लगता है कि इस विशेष प्रावधान का मुख्य उद्देश्य यह है कि सभी ज्ञात संदिग्धों के खिलाफ पूरे मामले को तेजी से आगे बढ़ाया जाना चाहिए, और सुविधा के लिए यह आवश्यक है कि नए जोड़े गए अभियुक्त के खिलाफ अन्य अभियुक्तों के खिलाफ उसी तरह से संज्ञान लिया जाना चाहिए।"

XXX XXX XXX XXX XXX XXX

12. धारा 319 द०प्र०स० सिद्धांत से निकलती है जुडेक्स दमनातुर कम नोसेन्स एबसोल्वितुर (दोषी को बरी होने पर न्यायाधीश की निंदा की जाती है) और इस सिद्धांत को धारा 319 द०प्र०स० के अधिनियमन के अंतर्निहित दायरे और भावना की व्याख्या करते समय एक प्रकाशस्तंभ के रूप में उपयोग किया जाना चाहिए।

13. वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करना न्यायालय का कर्तव्य है। जहां जांच एजेंसी किसी भी कारण से वास्तविक दोषियों में से एक को आरोपी के रूप में पेश नहीं करती है, अदालत उक्त आरोपी को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में शक्तिहीन नहीं है। सवाल यह है कि धारा 319 द०प्र०स० में परिकल्पित अदालत को किन परिस्थितियों में और किस स्तर पर अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहिए?

XXX XXX XXX XXX XXX XXX

17. धारा 319 द०प्र०स० अदालत को किसी भी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने की अनुमति देती है जो उसके समक्ष किसी मामले में आरोपी नहीं है। इस प्रकार, जिस व्यक्ति के खिलाफ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करते हुए समन जारी किया जाता है, जरूरी नहीं कि वह पहले से ही मुकदमे का सामना कर रहा आरोपी हो। वह या तो धारा 173 द०प्र०स० के तहत दायर आरोपपत्र के कॉलम 2 में नामित व्यक्ति हो सकता है या एक ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम अदालत के समक्ष किसी भी सामग्री में प्रकट किया गया है, जिस पर

अपराध की सुनवाई के उद्देश्य से विचार किया जाना है, लेकिन जांच नहीं की गई है। वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी मिलीभगत का संकेत दिया जा सके और अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

18. विधायिका को यह नहीं माना जा सकता है कि उसने सभी परिस्थितियों की कल्पना की है और इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों को पूर्ण रूप से लागू करे ताकि किसी भी स्थिति को शामिल किया जा सके जिससे अदालत को किसी अपराध की सुनवाई के लिए आगे बढ़ते समय निपटना पड़ सके और किसी ऐसे व्यक्ति को अनुमति न दी जाए जो मुकदमे में दोषी न ठहराए जाने के बावजूद मुकदमा चलाने के लिए मुकदमा चलाने का हकदार है। उसकी मिलीभगत की संभावना जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों से एकत्र की जा सकती है।

19. न्यायालय न्याय का एकमात्र भंडार है और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए उस पर एक कर्तव्य डाला गया है और इसलिए, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अदालतों के साथ ऐसी शक्तियों के अस्तित्व से इनकार करना अनुचित होगा, जहां यह असामान्य नहीं है कि वास्तविक अभियुक्त, कभी-कभी, जांच और/या अभियोजन एजेंसी में हेरफेर करके भाग जाता है। मुकदमे से बचने की इच्छा इतनी प्रबल है कि एक आरोपी कई बार जांच या जांच के चरण में भी खुद को बरी करने का प्रयास करता है, भले ही वह अपराध के कमीशन (गठन) से जुड़ा हो।

22. कानूनी कहावत "प्रति इंक्यूरियम" की व्याख्या माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई है, जिसे निम्नलिखित मामलों से निकाला जा सकता है।

(ए) **केएस पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य, [2013]1 एसीआर 994 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -**

"प्रस्तर-: 30. वर्तमान में, हम प्रति इंक्यूरियम की अवधारणा से निपटने के लिए आगे बढ़ेंगे। ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक, (1988) 2 एस.सी.सी. 602 में, सब्यसाची मुखर्जी (उस समय माननीय न्यायमूर्ति के रूप में) ने उक्त अवधारणा से निपटने के दौरान इस प्रकार देखा था:

42. ... 'प्रति अनिश्चित' वे निर्णय हैं जो किसी असंगत वैधानिक प्रावधान की अज्ञानता या विस्मृति में दिए गए हैं या संबंधित न्यायालय पर बाध्यकारी कुछ प्राधिकारी हैं, ताकि ऐसे मामलों में निर्णय का कुछ हिस्सा या तर्क में कुछ कदम जिस पर यह आधारित है, उस कारण से स्पष्ट रूप से गलत पाया जा सके।

प्रस्तर-: 31. फिर से, उक्त निर्णय में, बाद के चरण में, न्यायालय ने कहा:

47.... यह एक स्थापित नियम है कि यदि कोई निर्णय दिया गया है तो अदालत इसे नजरअंदाज कर सकती है।

प्रस्तर-: 32. पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम श्रम न्यायालय, (1990) 3 एस.सी.सी. 682 में, एक अन्य संविधान पीठ ने प्रति गणना के मुद्दे से निपटते हुए, निम्नानुसार राय व्यक्त की:

40. लैटिन अभिव्यक्ति 'प्रति इंक्यूरियम' का अर्थ है अनजाने के माध्यम से। एक निर्णय को आम तौर पर प्रति अकुरियन कहा जा सकता है जब इस न्यायालय ने अपने स्वयं के पिछले निर्णय की अनदेखी में कार्य किया है या जब किसी उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय की अनदेखी में कार्य किया है।

प्रस्तर-: 33. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड, (1991) 4 एस.सी.सी. 139, में एक दो-न्यायाधीशों की पीठ ने प्रति इंक्यूरियम के पहलू पर विस्तार से विज्ञापन दिया और निम्नानुसार प्रकाश डालने के लिए आगे बढ़ाया:

40. 'इंकुरियम' का शाब्दिक अर्थ है 'लापरवाही'। व्यवहार में प्रति इंक्यूरियम का मतलब प्रति अज्ञानता प्रतीत होता है। अंग्रेजी अदालतों ने इस सिद्धांत को घूरने के निर्णय के नियम में छूट में विकसित किया है। 'कानून में उद्धृत करने योग्य' से बचा जाता है और अनदेखा किया जाता है यदि इसे 'किसी कानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकरण की अनभिज्ञता में' प्रस्तुत किया जाता है। (यंग बनाम ब्रिस्टल एरोप्लेन कंपनी लिमिटेड, [1944] 1944 इला० ईआर 293 (सीए)) इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 141 की व्याख्या करते हुए इसे स्वीकार किया गया है, अनुमोदित किया गया है और अपनाया गया है, जो कानून के मामले के रूप में मिसालों के सिद्धांत का प्रतीक है।

प्रस्तर-: 34. सिद्धाराम सतलिंगप्पा महेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011)1 एस.सी.सी. 694 ने प्रति इंक्यूरियम के मुद्दे को संबोधित करते हुए, ब्रिस्टल एयरोप्लेन कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त) में कहावत और हैल्सबरी के इंग्लैंड के कानून और रघुबीर सिंह (उपरोक्त) के कुछ अंशों का उल्लेख करने के बाद दो-न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार कहा है:

138. अंग्रेजी और भारतीय कानून का विश्लेषण स्पष्ट रूप से इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष की ओर ले जाता है कि न केवल एक बड़ी ताकत का निर्णय छोटी ताकत के निर्णय पर बाध्यकारी है, बल्कि एक समान शक्ति का निर्णय भी सह-समान शक्ति के न्यायाधीशों की पीठ पर बाध्यकारी है। इस मामले में, प्रस्तर-124 और 125 में उल्लिखित निर्णय इस न्यायालय के दो या तीन न्यायाधीशों द्वारा दिए गए हैं। इन निर्णयों ने सिब्बिया मामले (1980) 2 एस.सी.सी. 565 में इस न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले को स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया है, जिसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के सभी पहलुओं पर व्यापक रूप से विचार किया है। नतीजतन, इस फैसले के प्रस्तर-124 और 125 में उल्लिखित निर्णय प्रति असंगत हैं।

प्रस्तर-: 35. आंध्र प्रदेश सरकार में वी. बी. सत्यनारायण राव (मृत) द्वारा एल (2000) 4 एस.सी.सी. 262 द्वारा किया गया था। इस न्यायालय ने कहा है कि प्रति इंकुरियम का नियम लागू किया जा सकता है जहां एक अदालत उसी अदालत या उच्च न्यायालय की एक बाध्यकारी मिसाल पर विचार करने के लिए छोड़ देती है जो उसी मुद्दे पर प्रदान की गई है या जहां कोई अदालत उस मुद्दे पर निर्णय लेते समय किसी कानून पर विचार करने से चूक जाती है।

(बी) संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य (2014)16 एस.सी.सी. 623: (2015)3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 558 में रिपोर्ट किए गए के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: (एस.सी.सी. पी 642, प्रस्तर-19)

'19. इस बात पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है कि एक मिसाल द्वारा मांगे गए अनुशासन या प्रति इंक्यूरियम नियम के आवेदन पर निर्णय की अयोग्यता या कमी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बिना, कानून की निश्चितता, फैसलों की स्थिरता और अदालतों की समिति एक महंगी दुर्घटना बन जाएगी। कोई निर्णय या निर्णय किसी संविधि, नियम या विनियम में किसी भी प्रावधान के अनुसार हो सकता है, जिसे न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था। एक निर्णय या निर्णय प्रति असंगत भी हो सकता है यदि सह-समान या बड़ी पीठ के पहले से घोषित निर्णय के साथ इसके अनुपात को समेटना संभव नहीं है; या यदि किसी उच्च न्यायालय का निर्णय इस न्यायालय के विचारों के अनुरूप नहीं है। यह तुरंत स्पष्ट किया जाना चाहिए कि प्रति इंक्यूरियम नियम सख्ती से और सही ढंग से अनुपात निर्णय पर लागू होता है और ओबिटर डिक्टा के लिए नहीं। उच्च न्यायालयों में अक्सर यह सामना करना पड़ता है कि बार में सर्वोच्च न्यायालय के दो या दो से अधिक पारस्परिक रूप से असंगत निर्णयों का हवाला दिया जाता है। हमें लगता है कि अनुल्लंघनीय सहारा जल्द से जल्द दृष्टिकोण को लागू करना है क्योंकि बाद वाले प्रति इंक्यूरियम की श्रेणी में आएंगे। (अदालत द्वारा बल)

(ग) इसी प्रकार, पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम के मामले में उच्चतम न्यायालय ने भी इस संबंध में निर्णय लिया है। लिमिटेड बनाम लेबर कॉमर [पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम लेबर कमांड, (1990)3 एस.सी.सी. 682: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 71] ने निम्नानुसार निर्णय दिया है: (एस.सी.सी. पी. 705, प्रस्तर-40)

'40. अब हम संविधान पीठ के फैसलों का कथित रूप से पालन नहीं करने के कारण प्रति इंक्यूरियम के प्रश्न से निपटते हैं। प्रति इंक्यूरियम लैटिन अभिव्यक्ति का अर्थ है अनजाने में। एक निर्णय को आम तौर पर प्रति अकुरियन कहा जा सकता है जब इस न्यायालय ने अपने स्वयं के पिछले निर्णय की अनदेखी में कार्य किया है या जब किसी उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के निर्णय की अनदेखी में कार्य किया है। इस बात पर संदेह नहीं किया जा सकता है कि अनुच्छेद 141 कानून के शासन के रूप में, उन मिसालों के सिद्धांत का प्रतीक है जिन पर हमारी न्यायिक प्रणाली आधारित है। बंगाल में इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड वि. बिहार राज्य [बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड बनाम बिहार राज्य, (1955) 6 एस.टी.सी 446: 1955 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2: ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 661: (1955) 2 एस.सी.आर 603], यह माना गया था कि अनुच्छेद 141 के शब्द, "भारत के क्षेत्र के भीतर सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी", हालांकि उच्चतम न्यायालय को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक हैं, उच्चतम न्यायालय को शामिल नहीं करते हैं, और यह अपने स्वयं के निर्णयों से बाध्य नहीं है, लेकिन उचित मामलों में उन पर पुनर्विचार करने के लिए स्वतंत्र है। कानून और न्याय के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है। हाउस ऑफ लॉर्ड्स में निर्णय दिए जाने से पहले उन्हीं कारणों से हो सकता है लॉयड्स बैंक लिमिटेड बनाम डॉसन [डॉसन सेटलमेंट लॉयड्स बैंक लिमिटेड बनाम डॉसन, [1966] 1

डब्ल्यूएलआर 1234] , 26-7-1966 को लॉर्ड गार्डिनर, एलसी ने अपनी और लॉर्ड्स ऑफ अपील की ओर से सामान्य रूप से निम्नलिखित बयान दिया:

"माननीय न्यायमूर्ति मिसाल के उपयोग को एक अनिवार्य आधार के रूप में मानते हैं जिस पर यह तय किया जा सके कि कानून क्या है और व्यक्तिगत मामलों में इसका आवेदन क्या है। यह कम से कम कुछ हद तक निश्चितता प्रदान करता है जिस पर व्यक्ति अपने मामलों के संचालन में भरोसा कर सकते हैं, साथ ही कानूनी नियमों के व्यवस्थित विकास के लिए एक आधार भी प्रदान करता है। फिर भी माननीय न्यायमूर्ति मानते हैं कि मिसाल का बहुत कठोर पालन किसी विशेष मामले में अन्याय का कारण बन सकता है और कानून के उचित विकास को भी अनुचित रूप से प्रतिबंधित कर सकता है। इसलिए, वे अपने प्रस्तुत अभ्यास को संशोधित करने का प्रस्ताव करते हैं और, इस सभा के पूर्व निर्णयों को सामान्य रूप से बाध्यकारी मानते हुए, पिछले निर्णय से हटने का प्रस्ताव करते हैं, जब ऐसा करना सही प्रतीत होता है।

इस संबंध में वे पूर्वव्यापी रूप से उस आधार को परेशान करने के खतरे को ध्यान में रखेंगे जिस आधार पर अनुबंध, संपत्ति के निपटान और राजकोषीय व्यवस्था में प्रवेश किया गया है और आपराधिक कानून के रूप में निश्चितता की विशेष आवश्यकता भी है।

(डी) संदीप कुमार बाफना [संदीप कुमार बाफना बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 16 एस.सी.सी. 623: (2015) 3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 558] मामले और पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड मामले [पंजाब भूमि विकास और सुधार निगम लिमिटेड बनाम लेबर कमांड, (1990) 3 एस.सी.सी. 682: 1991 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 71] में उपरोक्त निर्णयों से, यह उभर कर सामने आता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि एक मिसाल द्वारा मांगे गए अनुशासन या प्रति इंक्यूरियम नियम के आवेदन पर निर्णय की अयोग्यता या कमी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बिना, कानून की निश्चितता, फैसलों की स्थिरता और अदालतों की समानता एक महंगी दुर्घटना बन जाएगी। कोई निर्णय या निर्णय किसी संविधि, नियम या विनियम में कोई भी प्रावधान हो सकता है जिसे न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था या यदि उच्च न्यायालय का निर्णय उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है तो निर्णय या निर्णय भी हो सकता है।

(ई) बिलकिस याकूब रसूल बनाम भारत संघ और अन्य (2024) 5 एस.सी.सी. 481 में रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"145. हम मामले पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करना चाहते हैं। इस न्यायालय का आदेश दिनांक 13-5-2022 [राधेश्याम भगवानदास शाह बनाम गुजरात राज्य, (2022) 8 एस.सी.सी. 552: (2022) 3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 517] भी इस कारण से असंगत है कि यह इस न्यायालय के पहले के बाध्यकारी निर्णयों का पालन करने में विफल रहता है, जिसमें वी. श्रीहरन [भारत संघ बनाम वी. श्रीहरन, (2016) 7 एस.सी.सी. 1: (2016) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 695] बनाम उपयुक्त सरकार जो धारा 432 द०प्र०स० की उप-धारा (7) के अनुसार माफी के लिए एक आवेदन पर विचार करने की शक्ति के साथ निहित है और नरेश श्रीधर मिराजकर [नरेश श्रीधर मिराजकर बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1966 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 10 : ए.आई.आर. 1967 एस.सी. 1] में नौ-न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के साथ कि अनुच्छेद के तहत एक कार्यवाही में उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द नहीं किया जा सकता है।

146. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड [स्टेट ऑफ यूपी बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड, (1991)4एस.सी.सी. 139] ("सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स"), इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ (सहाय के माध्यम से बोलते हुए, जिन्होंने थॉमस के साथ सहमति निर्णय भी लिखा था) ने कहा कि प्रति इंक्यूरियम अभिव्यक्ति का अर्थ प्रति अज्ञानता है। यह सिद्धांत घूरने के निर्णय के नियम का अपवाद है। "कानून में उद्धरण" से बचा जाता है और अनदेखा किया जाता है यदि इसे "किसी कानून या अन्य बाध्यकारी प्राधिकरण की अनभिज्ञता में" प्रस्तुत किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप एक निर्णय या आदेश होगा जो प्रति असंगत है। सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स [स्टेट ऑफ यूपी बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड, (1991)4 एस.सी.सी. 139] में, उच्च न्यायालय ने सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड [सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1990)1 एस.सी.सी. 109] में संविधान पीठ के फैसले के प्रस्तर-86 में टिप्पणियों पर भरोसा किया, अर्थात्, "प्रस्तुत मामले में औद्योगिक शराब पर बिक्री कर नहीं लगाया जा सकता है, क्योंकि एथिल अल्कोहल (मूल्य नियंत्रण) आदेश के तहत राज्य द्वारा औद्योगिक शराब पर बिक्री कर नहीं लगाया जा सकता है" और लेवी को हटा दिया।

XXX XXX XXX XXX XXX XXX

153. इस प्रकार, हालांकि यह अनुपात निर्णय है जो एक मिसाल है और निर्णय में अंतिम आदेश नहीं है, हालांकि, मिसालों के नियम के कुछ अपवाद हैं जो प्रति इंक्यूरियम और उप साइलेंटियो के सिद्धांतों द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। इंक्यूरिया का कानूनी अर्थ है लापरवाही और प्रति अज्ञानता के बराबर किया जा सकता है। यदि कोई निर्णय किसी कानून या बाध्यकारी प्राधिकरण की अज्ञानता में प्रदान किया जाता है, तो यह प्रति निर्णय बन जाता है। इस प्रकार, अपने स्वयं के या समन्वय या उच्च क्षेत्राधिकार की अदालत की अज्ञानता से या किसी कानून की शर्तों या कानून के बल वाले नियम की अज्ञानता से प्रदान किया गया निर्णय प्रति असंगत है। इस तरह के प्रति निर्णय का कोई पूर्ववर्ती मूल्य नहीं होगा। यदि कोई निर्णय प्रति निर्णय प्रदान किया गया है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अच्छे कानून को निर्धारित करता है, भले ही इसे मुकेश के. त्रिपाठी बनाम एलआईसी [मुकेश के. त्रिपाठी बनाम एलआईसी, (2004) 8 एस.सी.सी. 387: 2004 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 1128], प्रस्तर-23 के माध्यम से स्पष्ट रूप से खारिज नहीं किया गया हो। इस प्रकार, प्रति निर्णय बाध्यकारी नहीं है।

154. मिसालों के नियम का एक और अपवाद उप मौन का नियम है। एक निर्णय तब पारित किया जाता है जब किसी निर्णय में कानून के विशेष बिंदु को न्यायालय द्वारा नहीं माना जाता है या उसके दिमाग में मौजूद नहीं होता है या न्यायालय द्वारा सचेत रूप से निर्धारित नहीं किया जाता है और यह अनुपात निर्णय का हिस्सा नहीं होता है। बिहार राज्य [अर्जित दास (1) बनाम बिहार राज्य, (2000) 5 एस.सी.सी. 488: 2000 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 962]।

23. अब इस न्यायालय द्वारा उत्तर दिए जाने वाले मुद्दों/प्रश्नों पर लौटते हैं, जो पुनरावृत्ति की कीमत पर, यहां निकाले गए हैं: -

- (i) क्या मामले के तथ्यों में, जिसमें दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश घायल गवाहों अर्थात् राजाराम (अ०सा०-1) और महेंद्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) की गवाही पर आधारित है, इस न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए इस आधार पर आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप किया जाना चाहिए कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरा आवेदन नया आवेदन दायर करने के लिए न्यायालय से उन्मोचन/स्वतंत्रता/अनुमति मांगे बिना दायर किया दी गई थी; और इसलिए इसे बनाए रखने योग्य नहीं था।
- (ii) क्या बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय प्रति असंगत निर्णय है और ऐसा होने की उपेक्षा की जा सकती है।

24. मुद्दे/प्रश्न संख्या-1 के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णयों में प्रतिपादित कानून और मामले के तथ्यों पर उचित विचार करने पर, मेरा विचार है कि दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश धारा 482 द०प्र०स० (अब निरसित)/धारा 528 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 (संक्षेप में "बी.एन.एस.एस.")। यह निम्नलिखित कारणों से है: -

- (i) घायल गवाहों अर्थात् राजाराम (अ०सा०-1) और महेंद्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) की गवाही पर ध्यान देने के बाद विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया है।
- (ii) घायल गवाहों की गवाही के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों के एक कैटेना में कहा है कि घायल गवाहों की गवाही का अधिक साक्ष्य मूल्य है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए।
- (iii) इस स्तर पर, विचारण न्यायालय अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान/साक्ष्य की गुण-दोष के आधार पर मूल्यांकन करने के लिए बाध्य नहीं है, जो विचारण के दौरान किया जाना अपेक्षित है।
- (iv) उपर्युक्त के संबंध में, मंजीत सिंह (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के निम्नलिखित पैराग्राफों को संदर्भित करना अनुचित नहीं होगा: -

"20. अब उसके बाद जब मुख्य परीक्षा में अपीलकर्ता - पीड़ित - घायल चश्मदीद गवाह ने विशेष रूप से निजी प्रतिवादियों का नाम लिया है, जिसमें उनकी विशिष्ट भूमिका है, तो विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय को निजी प्रतिवादियों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना चाहिए था। इस स्तर पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहां तक अपीलकर्ता का संबंध है, वह एक घायल चश्मदीद गवाह है। जैसा कि इस न्यायालय ने एमपी बनाम मानसिंह राज्य [एमपी बनाम मानसिंह राज्य, (2003) 10 एस.सी.सी. 414: (2007) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 390] (प्रस्तर-9) में देखा है; अब्दुल सईद वी. मध्य प्रदेश राज्य [अब्दुल सईद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010) 10 एस.सी.सी. 259: (2010) 3 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1262]; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश [उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश, (2011) 4 एस.सी.सी. 324: (2011) 2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 216], एक घायल प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य का अधिक साक्ष्य मूल्य होता है और जब तक बाध्यकारी कारण मौजूद न हों, उनके बयानों को हल्के में नहीं छोड़ा जाना चाहिए। जैसा कि ऊपर देखा गया है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, अदालत को जिरह तक इंतजार नहीं करना पड़ता है और

गवाह की मुख्य परीक्षा के आधार पर, यदि कोई मामला बनता है, तो किसी व्यक्ति को धारा 319 द०प्र०स० के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जा सकता है।

21. अब जहां तक उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन को खारिज करते हुए और धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज करने वाले विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए दिए गए तर्क का संबंध है, उच्च न्यायालय ने स्वयं कहा है कि अ०सा०-1 मंजीत सिंह घायल गवाह है और इसलिए उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे मृतक के साथ आग्नेयास्त्र की चोटें आई हैं। हालांकि, इसके बाद उच्च न्यायालय ने कहा है कि मंजीत सिंह का बयान अति-निहितार्थ का संकेत देता है और यह कि प्रतिवादियों में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और संबंधित चोटों के लिए केवल सरताज सिंह को जिम्मेदार ठहराया गया है, यहां तक कि बहस के लिए भी अगर कोई सरताज सिंह के साथ मौजूद था, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उनका कोई सामान्य इरादा था या मन का मिलन हुआ था या जानता था कि सरताज फायरिंग करेगा। उपरोक्त तर्क बिल्कुल भी टिकाऊ नहीं हैं।

22. धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के चरण में, अदालत को मामले के आरोपों की मूल्यांकन और/या योग्यता दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को भुला दिया है कि सभी आरोपियों के खिलाफ शुरू से ही आरोप धारा 302, 307, 341, 148 और 149 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए थे। उच्च न्यायालय इस तथ्य को समझने में विफल रहा है कि धारा 149 भ०द०वि० के तहत अपराध को आकर्षित करने के लिए केवल गैरकानूनी सभा का हिस्सा बनना पर्याप्त है और व्यक्तिगत भूमिका और/या प्रत्यक्ष कार्य महत्वहीन है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्क कि प्रतिवादियों में से किसी को भी कोई चोट नहीं लगी है, सिवाय इसके कि वे हथियारों से लैस थे और इसलिए, उन्हें आरोपी के रूप में नहीं जोड़ा जा सकता है, टिकाऊ नहीं है। विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय अधिकार क्षेत्र और/या शक्तियों का प्रयोग करने में विफल रहे हैं।

23. अब जहां तक निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि एक सामान्य निर्णय और आदेश उच्च न्यायालय द्वारा सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य [सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 उप नाम सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य] के रूप में रिपोर्ट किया गया है, उस स्तर पर अपीलकर्ता ने मंजीत सिंह बनाम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ अपील नहीं की। हरियाणा राज्य [मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 [सं.:सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 का भी एक सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा निपटाया]] और इसलिए यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है, इससे संबंधित है कि उपरोक्त का कोई सार नहीं है। एक बार जब यह पाया जाता है कि विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय को निजी प्रतिवादियों को अतिरिक्त आरोपी के रूप में बुलाना चाहिए था, अपील दायर करने में देरी करनी चाहिए थी या प्रासंगिक समय पर अपील दायर नहीं करनी चाहिए थी, जब इस न्यायालय ने सत्कार सिंह बनाम में दिए गए फैसले और आदेश पर

विचार किया था। हरियाणा राज्य [सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 उप नाम सत्कार सिंह बनाम हरियाणा राज्य] निजी प्रतिवादियों को तलब करने का निर्देश नहीं देने का आधार नहीं हो सकता है, जब इस न्यायालय ने पाया है कि यहां निजी प्रतिवादियों के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है और उन्हें मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाना है।

24. अब जहां तक निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि आरोप पत्र में निजी प्रतिवादियों को कॉलम 2 में रखा गया था, उस स्तर पर शिकायतकर्ता पक्ष ने कोई विरोध आवेदन दायर नहीं किया था, इस न्यायालय द्वारा विशेष रूप से राजेश [राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2019)6 एस.सी.सी. 368: (2019)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 801] इस न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में विशेष रूप से कहा है कि ऐसे मामले में भी जहां शिकायतकर्ता को विरोध याचिका दायर करने का अवसर देने का चरण विचारण न्यायालय से अन्य व्यक्तियों को बुलाने का आग्रह करता है और साथ ही जिनके नाम प्राथमिकी में थे, लेकिन आरोपपत्र में नहीं फंसाया गया था, उस मामले में भी, धारा 319 द०प्र०स० के आधार पर अदालत अभी भी शक्तिहीन नहीं है।

25. इसी तरह, निजी प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश के बाद मुकदमे में बहुत प्रगति हुई है और इसलिए इस स्तर पर धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है, उपरोक्त में कोई सार नहीं है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कानून के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार और जैसा कि इस न्यायालय ने **हरदीप सिंह [हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014)3 एस.सी.सी. 92: (2014)2 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 86]** में देखा है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग मुकदमे के अंतिम समापन से पहले किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। अन्यथा भी यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि जिस समय धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दिया गया था, उस समय केवल एक गवाह की जांच की गई थी और अ०सा०-1 की मुख्य परीक्षा दर्ज की गई थी और जब अ०सा०-1 की जिरह चल रही थी, धारा 319 द०प्र०स० के तहत आवेदन दिया गया था जिसे विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था। निचली अदालत द्वारा पारित आदेश को अस्थिर माना जाता है। यदि विचारण न्यायालय ने उस स्तर पर निजी प्रतिवादियों को तलब किया होता तो ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती। जैसा कि हो सकता है, जैसा कि यहां देखा गया है, धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग किसी भी स्तर पर परीक्षण शुरू करने और साक्ष्य/बयान दर्ज करने से लेकर किसी भी स्तर पर मुकदमे के समापन से पहले किया जा सकता है।

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और ऊपर बताए गए कारणों से, आक्षेपित निर्णय और आदेश [मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन पी एंड एच 2782 [सं.: इसने उच्च न्यायालय द्वारा पारित एक सामान्य निर्णय और आदेश] द्वारा सी.आर.आर. संख्या-3238 वर्ष 2018 का भी निपटारा किया और विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता की ओर से निजी प्रतिवादियों को तलब करने के लिए प्रस्तुत धारा 319

द०प्र०स० के तहत आवेदन को खारिज कर दिया चूंकि अतिरिक्त आरोपी अस्थिर हैं और उन्हें रद्द करने और अलग करने के लायक हैं और तदनुसार उन्हें रद्द कर दिया जाता है और अलग कर दिया जाता है। नतीजतन, शिकायतकर्ता की ओर से निजी प्रतिवादियों को तलब करने के लिए प्रस्तुत आवेदन को एतद्वारा अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह निजी प्रतिवादियों को धारा 302 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए सत्र मामले संख्या-362 वर्ष 2016 में प्राथमिकी संख्या-477 दिनांक 27-7-2016 भ०द०वि० की धारा 307, 341, 148 और 149 भ०द०वि० के मामले दर्ज किए गए हैं, और उससे उत्पन्न मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाए।

(v) यदि यह न्यायालय दिनांक 09.02.2023 के आक्षेपित आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप करता है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत दूसरा आवेदन सुनवाई योग्य नहीं था, तो उस स्थिति में एक व्यक्ति/आरोपी (आवेदक) मुकदमे का सामना किए बिना बिना छूट जाएगा और यह 'सार्वजनिक नीति' के खिलाफ होगा, जैसा कि इस निर्णय के प्रस्तर-21 में देखा गया है।

(vi) धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन अदालत से बचने के लिए नहीं बल्कि वास्तविक कारण से वापस लिया गया था। यह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए है कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन संख्या-30-खा को 03.10.2022 को इस कारण से खारिज कर दिया गया था कि धारा 319 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को दाखिल करने के बाद, बचाव पक्ष ने सूचित किया कि पुष्पा सिंह (उक्त आवेदन में दर्शाया गया नाम) पहले ही समाप्त हो चुका है और उसके बाद 08.12.2022 को, दूसरा आवेदन यानी आवेदन संख्या-37-ख धारा 319 द०प्र०स० के तहत दायर किया दी गई थी।

25. जारी/प्रश्न संख्या के संबंध में, (ii), उपर्युक्त पर उचित विचार करने पर, मेरा विचार है कि बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ का निर्णय/निर्णय एक 'प्रति अनिश्चित' निर्णय है और ऐसा होने के कारण इसकी अनदेखी की जा सकती है। मैं तदनुसार समझता हूं। यह निम्नलिखित कारणों से है: -

(i) बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय इस निर्णय के प्रस्तर-19 में निर्दिष्ट घोषणाओं/निर्णयों में व्यक्त माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 319 द०प्र०स० के उद्देश्य को समझाया है और धारा 319 द०प्र०स० के तहत शक्ति का प्रयोग कैसे किया जाएगा। जिसके अनुसार, संक्षेप में, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह वास्तविक अपराधी को दंडित करके न्याय करे और एक संदिग्ध या ज्ञात अभियुक्त को मुकदमे का सामना किए बिना बेदाग नहीं होना चाहिए।

(ii) बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय पारित करते समय, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने सर्व श्रमिक संगठन (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर विचार नहीं किया है, जिसमें यह देखा गया है कि "किसी निर्णय पर आँख बंद करके मामलों का निपटान सरगुजा परिवहन मामले में इस न्यायालय का निर्णय है [(1987)1 एस.सी.सी.5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.)19: ए.आई.आर.1987 एस.सी. 88] को यूक्लिड के सूत्र के रूप में नहीं माना जा सकता है" और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम (उपरोक्त) का मामला भी, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

"13. यह प्रश्न कि क्या वाद को वापस लेकर दावे का परित्याग किया गया है, यह कानून और तथ्य का मिश्रित प्रश्न है जैसा कि **रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट [रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एस.सी.सी. 58: (2009) 1 एस.सी.सी. (एलएंडएस) 706]** में अवधारित किया गया है। वापसी के आदेश की भाषा हमेशा निर्धारक नहीं होगी। उचित और न्यायपूर्ण निर्णय के लिए पृष्ठभूमि के तथ्यों की जांच करनी होगी। सरगुजा परिवहन सेवा [सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी, (1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88] को एक अमूर्त प्रस्ताव के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है या किसी मामले के तथ्यों के बिना अनुपात लागू नहीं किया जा सकता है। नीचे दिए गए उद्धरण को इस प्रकार प्रासंगिक माना जाता है: (विक्रम सीमेंट मामला [रमेश चंद्र सांकला बनाम विक्रम सीमेंट, (2008) 14 एस.सी.सी. 58: (2009) 1 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 706] , एस.सी.सी. पीपी 79-80, प्रस्तर-62)

"62. ... '9. ... जबकि एक नई रिट याचिका दायर करने की अनुमति के बिना उच्च न्यायालय में दायर एक रिट याचिका को वापस लेने से मुकदमे जैसे अन्य उपायों पर रोक नहीं लग सकती है। (सरगुजा परिवहन सेवा मामला [सरगुजा परिवहन सेवा बनाम एस.टी.एटी, (1987) 1 एस.सी.सी. 5: 1987 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 19: ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 88], एस.सी.सी. पी. 12, प्रस्तर-9)" (मूल में बल वर्धित)"

(iii) पी. रथिनम (उपरोक्त) और हिमाचल प्रदेश वित्तीय निगम (उपरोक्त) के मामले में पारित निर्णय के साथ-साथ इस निर्णय के प्रस्तर-21 में निर्दिष्ट कानूनी मैक्सिम (उपरोक्त) को ध्यान में रखते हुए, आपराधिक मामलों/कार्यवाहियों के संदर्भ में 'सार्वजनिक नीति' की अभिव्यक्ति पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में निर्णय देते समय विचार नहीं किया गया है।

(iv) बच्चा लाल @ विजय सिंह (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मामले के उन तथ्यों का विज्ञापन नहीं किया है जो इस मुद्दे पर निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए आवश्यक थे कि क्या धारा 319 द०प्र०स० के तहत पहला आवेदन वास्तविक कारणों से वापस ले लिया गया था या संबंधित अदालत से बचने के लिए वापस ले लिया गया था।

26. इस मामले में, विचारण न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.02.2023 का आक्षेपित आदेश घायल गवाहों राजाराम (अ०सा०-1) और महेंद्र प्रताप सिंह/शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) की गवाही पर आधारित है, जिन्होंने आवेदक के खिलाफ विशिष्ट आरोप लगाए थे, जिनके खिलाफ एन.सी.आर. में भी आरोप लगाए गए थे, और इसलिए, इस न्यायालय का विचार है कि विचारण न्यायालय ने दिनांक 09.02.2023 के आक्षेपित आदेश को पारित करने में कोई अनियमितता और अवैधता नहीं की है और वर्तमान आवेदक को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना।

27. उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय को प्रस्तुत आवेदन में कोई बल नहीं मिलता है। तदनुसार इसे **खारिज** किया जाता है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

28. न्यायालय सुश्री उर्मिश शंकर, रिसर्च एसोसिएट, जो मेरे साथ जुड़ा हुआ है, द्वारा दी गई बहुमूल्य सहायता को दर्ज करता है।

(2025) 6 ILRA 58

मूल अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजनीश कुमार

धारा 528 BNSS के अंतर्गत आवेदन संख्या 526 सन् 2025

विनय एवं अन्य

... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षी पक्षकारगण

आवेदकगण के अधिवक्ता: शशांक शुक्ला, प्राची शुक्ला

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि – भारतीय न्याय संहिता, 2023 – धाराएँ 115(2), 352, 351(2), 118(1) एवं 109(1) – भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 – धारा 174 – आपराधिक कार्यवाहियों का विखण्डन – दिनांक 28.11.2024 को उसी दिन घटित घटना के संबंध में BNS की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत NCR दर्ज की गई – तत्पश्चात चिकित्सीय रिपोर्ट में धारदार हथियार से कारित सिर की चोट का उल्लेख हुआ – इस आधार पर धारा 118(1) BNS, जो संज्ञेय एवं अजमाननीय है, जोड़ी गई तथा NCR को FIR में परिवर्तित किया गया – तत्पश्चात आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया – आरोप-पत्र दाखिल होने के उपरान्त मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया एवं सम्मन जारी किया, जो कि चुनौती के अधीन है – याचिकाकर्ताओं ने पूर्व में रिट याचिकाएँ संस्थित की थीं, किन्तु दिनांक 02.05.2025 को उन्हें वही आधार पुनः उठाने की स्वतंत्रता के बिना वापस ले लिया गया – वे आधार अब उपलब्ध नहीं हैं – चूँकि चिकित्सीय रिपोर्ट के आधार पर संज्ञेय अपराध जोड़े जाने के कारण NCR को FIR में परिवर्तित किया गया, अतः पुलिस विधिक रूप से विवेचना करने के लिए सशक्त थी – समग्र तथ्यों पर विचार करने पर कार्यवाहियों में कोई अवैधता नहीं पाई गई – आवेदन में कोई गुण-दोष नहीं, निरस्त किया गया। (पैरा 6, 12, 15)

आवेदन निरस्त। (E-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. आसिफ खान पठान बनाम राज्य, लोक अभियोजक के माध्यम से, बम्बई उच्च न्यायालय पोर्वोरिम, गोवा एवं अन्य – आपराधिक रिट याचिका संख्या 573, 2023 (F) 482

2. शावेज एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य – धारा के अंतर्गत आवेदन MANU/UP/4929/2019 – 38936 of 2019

(माननीय न्यायमूर्ति राजनीश कुमार द्वारा उद्घोषित)

1. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक शुक्ला तथा राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. यह याचिका दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 वर्तमान में भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 की धारा 528 के अंतर्गत प्राथमिकृत की गई है, जिसमें सीआईएस संख्या 12917/2025 में दिनांक 04.03.2025 को पारित आह्वान आदेश तथा दिनांक 05.02.2025 के आरोप पत्र संख्या 01 को चुनौती दी गई है, जो अपराध संख्या 420/2024, धारा 115(2), 352, 351(2), 118(1), 109(1) भारतीय न्याय संहिता (बीएनएस), 2023, थाना-कटरा बाजार, जनपद-गोंडा से उत्पन्न होता है।

3. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि समरूप तथ्यों के आधार पर दिनांक 28.11.2024 को एनसीआर पंजीकृत की गई थी किंतु विवेचना के लिए कोई अनुमति नहीं मांगी गई थी। उनका यह भी प्रस्तुतीकरण है कि समान तथ्यों पर दिनांक 30.11.2024 को प्राथमिकी दर्ज की गई तथा विवेचना के उपरांत, आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, जो नहीं किया जा सकता था। उन्होंने गोवा में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा **आपराधिक रिट याचिका संख्या 573/2023 (एफ) [श्री आसिफ खान पठान बनाम राज्य लोक अभियोजक के माध्यम से, पोरवोरिम, गोवा में बॉम्बे उच्च न्यायालय एवं अन्य]** में दिनांक 16.10.2023 को पारित अधिनिर्णय एवं आदेश पर निर्भरता व्यक्त की है।

4. इसके विपरीत, विद्वान शासकीय अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि एन.सी.आर. के पंजीकरण के उपरांत, चिकित्सा रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिसमें धारदार हथियार से सिर में चोट पाई गई, अतः धारा 118(1) बीएनएस, 2023 जोड़ी गई तथा तदनुसार, एनसीआर को प्राथमिकी में परिवर्तित कर तदनुसार पंजीकृत किया गया। इस प्रकार, आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क भ्रामक है तथा पोषणीय नहीं है। उनका यह भी प्रस्तुतीकरण है कि याचिकाकर्ता संख्या 1-विनय ने इस न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 387/2025 (विनय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य) पूर्व में प्राथमिकृत की थी तथा दिनांक 22.01.2025 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय की खंडपीठ ने विवेचना अधिकारी को प्राथमिकी की विवेचना की अनुमति हेतु संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया था। तदनुसरण में, विवेचना अधिकारी द्वारा संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसे दिनांक 03.02.2025 के आदेश द्वारा अनुमत किया गया तथा तत्पश्चात, विवेचना पूर्ण करने के उपरांत, उपरोक्त सभी तथ्यों का उल्लेख करते हुए दिनांक 05.02.2025 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उक्त रिट याचिका वापस ली गई है, जिसे दिनांक 02.05.2025 के आदेश द्वारा उक्त रिट याचिकाओं में उठाए गए आधारों को आह्वान

आदेश की चुनौती के मामले में उठाने की स्वतंत्रता के बिना अनुमत किया गया है, अतः उक्त आधार अब आवेदकों के लिए उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण भ्रामक है तथा योग्यता से रहित है तथा यह आवेदन खारिज किए जाने योग्य है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा धारा 482 के अंतर्गत **आवेदन संख्या - 38936/2019 (शावेज एवं 2 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)** में दिनांक 05.11.2019 को पारित अधिनिर्णय एवं आदेश पर निर्भरता व्यक्त की है।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्तुतीकरणों पर विचार करते हुए, मैंने इस आवेदन के अभिलेख पर रखे गए दस्तावेजों का अवलोकन किया है।

6. यह स्पष्ट है कि एनसीआर संख्या 0116/2024 दिनांक 28.11.2024 को धारा 115(2), 352 एवं 351(2) बीएनएस, 2023 के अंतर्गत थाना-कटरा बाजार, जनपद-गोंडा में दर्ज की गई थी, जो दिनांक 28.11.2024 को प्रातः 07:30 बजे घटित हुई घटना के संबंध में थी। अभिलेख पर विद्यमान दस्तावेजों से स्पष्ट होता है कि दिनांक 28.11.2024 की चिकित्सा रिपोर्ट प्राप्त हुई, जिसमें धारदार हथियार से सिर में चोट पाई गई। परिणामस्वरूप धारा 118(1) बीएनएस, 2023 जोड़ी गई, जो संज्ञेय एवं अजमानतीय है, तदनुसार इसे प्राथमिकी में परिवर्तित किया गया, जो पंजीकृत की गई। पुलिस संज्ञेय अपराध में मामले की विवेचना करने हेतु सशक्त है, तत्पश्चात विवेचना संचालित की गई।

7. भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता (इसके पश्चात "बीएनएसएस" के रूप में संदर्भित) की धारा 174 असंज्ञेय मामलों एवं ऐसे मामलों की विवेचना के बारे में सूचना प्रदान करती है। बीएनएसएस की धारा 174 की उप-धारा (2) यह प्रावधान करती है कि कोई भी पुलिस अधिकारी ऐसे मामले का विचारण करने या मामले को विचारण हेतु सुपुर्द करने की शक्ति रखने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना असंज्ञेय मामले की विवेचना नहीं करेगा। बीएनएसएस की धारा 174 की उप-धारा (4) यह प्रावधान करती है कि जहां कोई मामला दो या अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामला संज्ञेय मामला माना जाएगा, इस तथ्य के होते हुए भी कि अन्य अपराध असंज्ञेय हैं। बीएनएसएस की धारा 174 यहां उद्धृत की जाती है:-

"174. असंज्ञेय मामलों के बारे में सूचना एवं ऐसे मामलों की विवेचना-

(1) जब किसी थाना प्रभारी अधिकारी को ऐसे थाने की सीमा के भीतर किसी असंज्ञेय अपराध के किए जाने की सूचना दी जाती है, तो वह ऐसी सूचना का सार ऐसे अधिकारी द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में ऐसे प्रारूप में, जो राज्य सरकार इस संबंध में नियमों द्वारा विहित करे, दर्ज करेगा या दर्ज कराएगा, तथा,-

(i) सूचनाकर्ता को मजिस्ट्रेट के पास भेजेगा;

(ii) ऐसे सभी मामलों की दैनिक डायरी रिपोर्ट पाक्षिक रूप से मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा।

(2) कोई भी पुलिस अधिकारी ऐसे मामले का विचारण करने या मामले को विचारण हेतु सुपुर्द करने की शक्ति रखने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना असंज्ञेय मामले की विवेचना नहीं करेगा।

(3) ऐसा आदेश प्राप्त करने वाला कोई भी पुलिस अधिकारी विवेचना के संबंध में (बिना वारंट गिरफ्तारी की शक्ति के अतिरिक्त) वही शक्तियां प्रयोग कर सकता है जो थाना प्रभारी अधिकारी संज्ञेय मामले में प्रयोग कर सकता है।

(4) जहां कोई मामला दो या अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, तो मामला संज्ञेय मामला माना जाएगा, इस तथ्य के होते हुए भी कि अन्य अपराध असंज्ञेय हैं।"

8. उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में, यह स्पष्ट है कि यदि कोई मामला दो या अधिक अपराधों से संबंधित है, जिनमें से एक अपराध संज्ञेय है, तो मामला संज्ञेय मामला माना जाएगा, इस तथ्य के होते हुए भी कि अन्य अपराध असंज्ञेय हैं।

9. निर्विवाद रूप से, धारदार हथियार से सिर में चोट की चिकित्सा रिपोर्ट की प्राप्ति के उपरांत, बीएनएस, 2023 की धारा 118(1) जोड़ी गई, अतः यह मामला बीएनएसएस की धारा 174(4) के अंतर्गत आएगा क्योंकि अपराधों में से एक संज्ञेय है। बीएनएस, 2023 की धारा 118 प्रासंगिक होने के कारण यहां उद्धृत की जाती है:-

"धारा 118. खतरनाक हथियारों या साधनों द्वारा स्वेच्छया चोट या गंभीर चोट पहुंचाना।

(1) जो कोई, धारा 122 की उप-धारा (1) द्वारा प्रदान किए गए मामले के अतिरिक्त, किसी गोली चलाने, छुरा घोंपने या काटने के लिए किसी यंत्र द्वारा, या किसी ऐसे यंत्र द्वारा, जो आक्रामक हथियार के रूप में प्रयोग किए जाने पर मृत्यु कारित करने की संभावना रखता है, या अग्नि या किसी तप्त पदार्थ द्वारा, या किसी विष या किसी संक्षारक पदार्थ द्वारा, या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा, या किसी ऐसे पदार्थ द्वारा जिसे श्वास में लेना, निगलना या रक्त में प्राप्त करना मानव शरीर के लिए हानिकारक है, या किसी पशु द्वारा, स्वेच्छया चोट पहुंचाता है, उसे किसी भी प्रकार के कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकती है, या बीस हजार रुपये तक के जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

(2) जो कोई, धारा 122 की उप-धारा (2) द्वारा प्रदान किए गए मामले के अतिरिक्त, उप-धारा (1) में निर्दिष्ट किसी साधन द्वारा स्वेच्छया गंभीर चोट पहुंचाता है, उसे आजीवन कारावास से, या किसी भी प्रकार के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम नहीं होगी किंतु जो दस वर्ष तक हो सकती है, दंडित किया जाएगा, तथा जुर्माने से भी दंडनीय होगा।"

10. उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में, आवेदकों के अधिवक्ता का तर्क भ्रामक है। अन्यथा भी, याचिकाकर्ता संख्या 1-विनय ने इस न्यायालय के समक्ष उक्त प्राथमिकी एवं एनसीआर को उन्हीं समरूप आधारों पर चुनौती दी थी, जिन पर यह आवेदन प्राथमिकृत किया गया है तथा खंडपीठ ने दिनांक 22.01.2025 के आदेश द्वारा आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता के प्रस्तुतीकरणों को अभिलिखित करते हुए यह प्रावधान किया था कि संबंधित विवेचना अधिकारी द्वारा आज से एक सप्ताह के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत किया

जाए तथा संबंधित विचारण न्यायालय उक्त आवेदन पर तत्पश्चात एक सप्ताह के भीतर उपयुक्त आदेश पारित करे। समान प्रार्थनाओं के साथ, याचिकाकर्ता संख्या 2-वेदवती ने भी आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 820/2025 (वेदवती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) प्राथमिकृत करके इस न्यायालय का द्वार खटखटाया था, जो आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 387/2025 (विनय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 3 अन्य) से संबद्ध थी।

11. उक्त दिनांक 22.01.2025 के आदेश के अनुपालन में, विवेचना अधिकारी ने दिनांक 29.01.2025 को न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय, गोंडा के समक्ष बीएनएसएस की धारा 174(2) के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 03.02.2025 के आदेश द्वारा अनुमत किया गया तथा तत्पश्चात, विवेचना पूर्ण करने के उपरांत दिनांक 05.02.2025 को उपरोक्त सभी तथ्यों का संक्षेप में खंड 16 में उल्लेख करते हुए आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जो यहां उद्धृत किए जाते हैं:-

"श्रीमान जी निवेदन है कि मुकदमा उपरोक्त वादी की तहरीरी सूचना पर दिनांक 28.11.24 को थाना स्थानीय पर एनसीआर नं० 118/24 धारा 115(2), 352, 351 (2) बीएनएस पंजीकृत हुआ मजरूब मोहित कुमार पाठक के सिर में शार्प एज्ड इंजरी मेडिकल रिपोर्ट में आने के उपरान्त अभियोग में धारा 118 (1) बीएनएस को बढ़ोतरी कर एनसीआर उपरोक्त को मु० अ 0 सं० 420/24 धारा 115(2), 352, 351(2), 118(1) बीएनएस तरमीम कर पंजीकृत हुआ हस्व आदेश प्र०नि० महोदय के विवेचना मुझ उ०नि० को सुपुर्द हुई मुझ उ 0 नि० द्वारा विवेचना ग्रहण कर विवेचनात्मक कार्यवाही सम्पादित किया गया संलग्न साक्ष्य से धारा 109 (1) बीएनएस का पर्याप्त आधार मिलने के उपरान्त अभियोग में उक्त धारा की बढ़ोतरी किया गया। अभियोग में नामित अभियुक्तगण कु 1. अजय कुमार; 2. सिद्ध कुमार उर्फ पहलवान पुत्रगण गुरुप्रसाद मिश्रा निवासी कंधईपुरवा पुरे संगम मौजा बमडेरा थाना कटरा बाजार जनपद गोण्डा को दिनांक 12.01.2025 को गिरफ्तार हुआ जो वर्तमान समय में न्यायिक अभिरक्षा में जिला कारागार गोण्डा में निरुद्ध है तथा अभियुक्त विनय कुमार व अभियुक्ता वेदवती की गिरफ्तारी पर मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद खण्डपीठ लखनऊ द्वारा गिरफ्तारी पर स्थगन आदेश निर्गत किया गया है। अब तक की तमामी विवेचना बयान वादी, निरीक्षण घटनास्थल, बयान मजरूब, बयान गवाहान, बयान डाक्टर अवलोकन मेडिकल रिपोर्ट, अवलोकन सीटी स्कैन व एक्स रे रिपोर्ट, व अन्य साक्ष्य संलग्न साक्ष्य से अभियोग में नामित अभियुक्तगण कु 1. विनय कुमार 2. अजय कुमार, 3. सिद्ध कुमार उर्फ पहलवान पुत्रगण गुरुप्रसाद मिश्रा 4. वेदवती पत्नी गुरुप्रसाद निवासीगण कंधईपुरवा पुरे संगम मौजा बमडेरा थाना कटरा बाजार जनपद गोण्डा के विरुद्ध जुर्म धारा 115(2), 352, 351(2), 118(1), 109 (1) बीएनएस का अपराध बाखूबी साबित है। अतः अभियुक्तगण कु 1. विनय कुमार 2. अजय कुमार, 3. सिद्ध कुमार उर्फ पहलवान, 4. वेदवती उपरोक्त का चालान अन्तर्गत धारा 115 (2), 352, 351 (2), 118(1), 109(1) बीएनएस में जरिये आरोप पत्र मा० न्यायालय प्रेषित किया जा रहा है। श्रीमान जी से निवेदन है कि सबूत तलब कर दण्डित करने की कृपा करें विवेचना जरिये आरोप पत्र समाप्त की जाती है।"

12. आरोप पत्र प्रस्तुत किए जाने के उपरांत, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया है तथा आह्वान आदेश जारी किया गया है, जिसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है। आह्वान आदेश जारी किए जाने के उपरांत,

याचिकाकर्ताओं द्वारा उक्त रिट याचिकाएं वापस ली गई हैं, जिन्हें दिनांक 02.05.2025 के आदेश द्वारा आह्वान आदेश एवं कार्यवाही की चुनौती के मामले में उक्त रिट याचिकाओं में उठाए गए आधारों को उठाने की स्वतंत्रता के बिना अनुमत किया गया है, अतः यह न्यायालय यह मत रखता है कि आवेदकों द्वारा लिया गया आधार अब आवेदकों के लिए उपलब्ध नहीं है। अन्यथा भी, उपरोक्त आधार उपलब्ध नहीं है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, क्योंकि एक बार जब एनसीआर को चिकित्सा रिपोर्ट के आधार पर संज्ञेय अपराध जोड़े जाने के कारण प्राथमिकी में परिवर्तित किया गया, तो पुलिस मामले की विवेचना करने हेतु सशक्त थी।

13. जहां तक आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा निर्भरता व्यक्त किए गए, गोवा में बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा **श्री आसिफ खान पठान (उपर्युक्त)** के मामले में पारित अधिनिर्णय का संबंध है, वह वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर लागू नहीं है क्योंकि उक्त मामले में, सूचनाकर्ता द्वारा बाद में कुछ अतिरिक्त सूचना प्रदान की गई थी, जिसके आधार पर एनसीआर को प्राथमिकी में परिवर्तित किया गया था, अतः वह वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में विभेदनीय है।

14. इस न्यायालय ने **शावेज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, मनु/यूपी//4929/2019** के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि विवेचना के दौरान यह तथ्य पाए जाने के उपरान्त कि अभियुक्त व्यक्ति ने पीड़ित को गंभीर चोटें पहुंचाई हैं तथा इस प्रकार संज्ञेय अपराध किया है, एनसीआर का प्राथमिकी में परिवर्तन न तो अवैध है और न ही अनुज्ञेय नहीं है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल यह तथ्य कि नई अपराध संख्या आवंटित की गई थी तथा नई प्राथमिकी भी निष्पादित की गई थी, कार्यवाही को किसी भी महत्वपूर्ण रीति से प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करता है तथा न ही आवेदक यह दावा कर सकते हैं कि प्राथमिकी से उन्हें पूर्वाग्रह हुआ है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि यह न्यायालय वास्तविक विचारण प्रारंभ होने से पूर्व पूर्व-विचारण करना उचित नहीं समझता है तथा इसके लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता है। प्राथमिकी एवं विवेचना अधिकारी द्वारा एकत्रित सामग्री के अवलोकन पर, जिसके आधार पर आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, इस स्तर पर अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध बनता है तथा आवेदकों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार प्रतीत होते हैं।

15. उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में तथा इस मामले के समग्र तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय आवेदकों के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है, जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग कर सके। यह आवेदन भ्रामक आधार पर प्राथमिकृत किया गया है तथा योग्यता से रहित है।

16. तदनुसार, यह आवेदन **निरस्त** किया जाता है।

(2025) 6 ILRA 62

अपीलीय अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

आपराधिक अपील संख्या 2045 सन् 2025

कमल भरभूजा

... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षी पक्षकारगण

अपीलार्थी के अधिवक्ता: श्री ब्रजेश नाथ राय, श्री राहुल मिश्रा

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: श्री अवधेश नारायण तिवारी, शासकीय अधिवक्ता

जमानत – अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम – धारा 14-A(2) के अंतर्गत आपराधिक अपील – प्रारंभ में अपीलार्थी एवं अन्य के विरुद्ध BNS की धारा 103 एवं अन्य धाराओं के अंतर्गत FIR दर्ज की गई – विपक्षी पक्षकार क्रमांक 2 की पत्नी की हत्या के संबंध में – किन्तु तत्पश्चात प्रकरण को BNS की धारा 108 – आत्महत्या के लिए उकसाना – के अंतर्गत परिवर्तित किया गया – यदि अपीलार्थी का मृतका के साथ अवैध संबंध था – तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसके उकसाने के कारण उसने आत्महत्या की – जमानत स्वीकृत।

अपील स्वीकृत। (E-9)

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन द्वारा उद्घोषित)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मिश्रा, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता अवधेश नारायण तिवारी की ओर से संक्षिप्त धारण करने वाले अधिवक्ता श्री दीपक दुबे तथा राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आशुतोष श्रीवास्तव को सुना गया।

2. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14-ए(2) के अंतर्गत यह दाण्डिक अपील अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 24.01.2025 को विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (अनु.जा./अनु.ज.जा. अधिनियम), महोबा द्वारा दाण्डिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 25/2025, (कमल भरभूजा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में पारित आदेश को निरस्त करने की प्रार्थना के साथ प्राथमिकृत की

गई है, जो अपराध संख्या 685/2024, भा.न्या.सं. की धारा 108, 352, 351(3) तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(da), 3(1)(dha), 3(2)(5ka), 3(2)(5) (अधिनियम संख्या 1/2015 के अंतर्गत यथा संशोधित), कोतवाली नगर, जनपद-महोबा से उत्पन्न है।

3. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रारंभ में भा.न्या.सं. की धारा 103 तथा अन्य धाराओं के अंतर्गत अपीलकर्ता तथा अन्य के विरुद्ध विपक्षी संख्या 2 की पत्नी की हत्या के संबंध में दर्ज की गई थी, परन्तु तत्पश्चात जब यह पाया गया कि वास्तव में मृतका ने अपीलकर्ता के दुष्प्रेरण के कारण आत्महत्या की तो मामला भा.न्या.सं. की धारा 108 के अंतर्गत परिवर्तित कर दिया गया।

4. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अभियोजन के अनुसार अपीलकर्ता का मृतका के साथ अवैध संबंध था और वह उसे अपने साथ विवाह करने के लिए निरंतर दबाव डाल रहा था, इसलिए उसने आत्महत्या कर ली।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए दुष्प्रेरण का संपूर्ण आरोप पूर्णतः असत्य है, परन्तु यदि इसे स्वीकार भी कर लिया जाए तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता के दुष्प्रेरण के कारण मृतका ने आत्महत्या की।

6. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान मामले में वह दिनांक 01.01.2025 से जेल में है।

7. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि इसलिए, संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 24.01.2025 को पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा अपीलकर्ता के जमानत आवेदन को खारिज किया गया है, अवैध है और निरस्त किए जाने योग्य है तथा अपीलकर्ता वर्तमान मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी है।

8. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता तथा विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने जमानत की प्रार्थना का कड़ा विरोध किया और प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता मृतका की मृत्यु के लिए उत्तरदायी है और उसका उसके साथ केवल अवैध संबंध ही नहीं था, बल्कि उसने उसे अपने साथ विवाह करने के लिए दबाव भी डाला और इसलिए, वह जमानत का पात्र नहीं है और संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 24.01.2025 को पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है और इसलिए अपीलकर्ता द्वारा प्राथमिकृत की गई तत्काल अपील गुण-दोष से रहित है और खारिज किए जाने योग्य है।

9. मैंने दोनों पक्षों को सुना है और मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है।

10. अभिलेख से यह प्रतिबिंबित होता है कि वर्तमान मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रारंभ में भा.न्या.सं. की धारा 103 के साथ अन्य धाराओं के अंतर्गत अपीलकर्ता के विरुद्ध इस आरोप के साथ दर्ज की गई थी कि उसने विपक्षी

संख्या 2 की पत्नी की हत्या की, परन्तु तत्पश्चात विवेचना के दौरान जब यह पता चला कि अपीलकर्ता का मृतका के साथ अवैध संबंध था और वह उसे अपने साथ विवाह करने के लिए निरंतर दबाव डाल रहा था और इसलिए उसने आत्महत्या कर ली, तो मामला भा.न्या.सं. की धारा 108 के अंतर्गत परिवर्तित कर दिया गया।

11. यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों में योग्यता पाता है कि यदि अपीलकर्ता का मृतका के साथ अवैध संबंध था तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि उसके दुष्प्रेरण के कारण उसने आत्महत्या की।

12. इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान मामले में वह दिनांक 01.01.2025 से जेल में है।

13. इसलिए, उपर्युक्त विवेचित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरे विचार में, दिनांक 24.01.2025 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा संबंधित न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के जमानत आवेदन को खारिज किया गया है, अवैध है और निरस्त किए जाने योग्य है तथा अपीलकर्ता तत्काल मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी है।

14. तदनुसार, तत्काल अपील स्वीकृत की जाती है और संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 24.01.2025 को पारित आक्षेपित आदेश एतद्वारा निरस्त किया जाता है और मामले की गुणवत्ता पर कोई राय व्यक्त किए बिना, अपीलकर्ता को तत्काल मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का निर्देश दिया जाता है।

15. अपीलकर्ता **कमल भरभुजा** को उक्त मामले में संबंधित न्यायालय के समाधानप्रद व्यक्तिगत मुचलके तथा समान राशि के दो विश्वसनीय जमानतदारों को प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर मुक्त किया जाए:

(i) अपीलकर्ता विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) अपीलकर्ता अभियोजन साक्षी को दबाव/धमकी नहीं देगा।

(iii) अपीलकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष निर्धारित तिथि पर उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

(iv) अपीलकर्ता उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा जिसका वह अभियुक्त है, या जिसके किए जाने का संदेह है।

(v) अपीलकर्ता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष प्रकट करने से विरत करने के लिए कोई प्रलोभन, धमकी या वचन नहीं देगा या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

16. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में, अभियोजन को इस न्यायालय के समक्ष जमानत निरस्तीकरण आवेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होगी।

(2025) 6 ILRA 64

अपीलीय अधिकारिता – आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

आपराधिक अपील संख्या 2275 सन् 2025

अंशु कुशवाहा

... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... विपक्षी पक्षकारगण

अपीलार्थी के अधिवक्ता: श्री अभिषेक कुमार सरोज, नगेन्द्र बहादुर सिंह

विपक्षी पक्षकारों के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, सीताराम पटेल

आपराधिक विधि – भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 – धाराएँ 180 एवं 183 – अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 – धाराएँ 3(2)(V) एवं 14-A(2) – भारतीय न्याय संहिता, 2023 – धाराएँ 69, 89, 115(2), 333, 352, 351(2) एवं 351(3) – आपराधिक अपील – SC/ST अधिनियम की धारा 14-A(2) के अंतर्गत दायर – आक्षेपित आदेश को विखण्डित करने हेतु – जिसके द्वारा अवर न्यायालय ने जमानत आवेदन अस्वीकार किया – FIR – बलात्कार एवं अश्लील वीडियो निर्मित करने का अपराध – आरोप है कि आरोपी-अपीलार्थी ने विवाह के मिथ्या वचन की आड़ में पीड़िता का यौन शोषण किया – गिरफ्तारी – BNSS की धाराओं 180 एवं 183 के अंतर्गत कथन अभिलिखित – जमानत आवेदन – अस्वीकृत – बचाव में यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि पीड़िता एक वयस्क महिला है और वह सहमति पक्षकार थी – न्यायालय ने पाया कि अभिलेख में कोई वीडियो नहीं है – स्वीकार्यतः, पीड़िता महिला वयस्क है और वह सहमतिपूर्ण संबंध में थी – कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं – अभिनिर्धारित किया गया कि संबंधित न्यायालय द्वारा जिस आक्षेपित आदेश से आवेदक का जमानत आवेदन निरस्त किया गया, वह अवैध है तथा अपास्त किए जाने योग्य है और अपीलार्थी जमानत पर रिहा होने का अधिकारी है – तदनुसार, तत्काल अपील स्वीकृत होती है – अपीलार्थी को साक्ष्य से छेड़छाड़ अथवा गवाहों को प्रभावित करने से रोकने हेतु कठोर शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए, जिससे अभियोजन को किसी शर्त के उल्लंघन पर जमानत निरस्त करने हेतु आवेदन करने की अनुमति रहे। (पैरा 10, 11, 12, 13)

आवेदन स्वीकृत। (E-11)

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन द्वारा उद्घोषित)

1. विपक्षी पक्षकार संख्या 2 की ओर से पुनः पुकार में भी कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री नगेन्द्र बहादुर सिंह तथा राज्य-प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजीव धर दिवेदी को सुना गया।

3. यह दाण्डिक अपील अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 14ए(2) के अधीन अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 05.03.2025 को विद्वान सत्र न्यायाधीश, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण), औरैया द्वारा दाण्डिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 248 सन् 2025 (अंशु कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में, जो अपराध संख्या 0047 सन् 2025, भारतीय न्याय संहिता की धारा 333, 69, 115(2), 89, 352, 351(2), 351(3) एवं अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(V) के अधीन, थाना कोतवाली, जिला औरैया से उत्पन्न हुई है, में पारित आदेश को निरस्त किए जाने की प्रार्थना के साथ प्राथमिकृत की गई है।

4. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि यद्यपि आरोप के अनुसार अपीलकर्ता ने सर्वप्रथम विपक्षी पक्षकार संख्या 2 के साथ बलात्कार किया तथा तत्पश्चात् उसका अश्लील वीडियो तैयार किया और विवाह के मिथ्या वादे के बहाने उसका यौन शोषण किया, परन्तु अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए समस्त आरोप पूर्णतः असत्य हैं।

5. उनका अगला निवेदन है कि स्वीकार्यतः विपक्षी पक्षकार संख्या 2 वयस्क महिला है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं भा.ना.सु.सं. की धारा 180 तथा 183 के अधीन अभिलिखित उसके कथनों से यह प्रतिबिंबित होता है कि वह सहमति देने वाली पक्षकार थी और प्रथम दृष्टया यह सहमतिपूर्ण सम्बन्ध का मामला प्रतीत होता है। उनका आगे निवेदन है कि यद्यपि यह आरोप है कि अपीलकर्ता ने विपक्षी पक्षकार संख्या 2 का अश्लील वीडियो भी तैयार किया परन्तु विपक्षी पक्षकार संख्या 2 का ऐसा कोई वीडियो अभिलेख पर नहीं है।

6. उनका अगला निवेदन है कि अपीलकर्ता का कोई पूर्ववर्ती आपराधिक इतिहास नहीं है तथा वर्तमान मामले में वह दिनांक 19.01.2025 से कारागार में है।

7. उन्होंने आगे निवेदन किया कि इसलिए, सम्बन्धित न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.03.2025 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा अपीलकर्ता के जमानत आवेदन को खारिज कर दिया गया है, अवैध है तथा निरस्त किए जाने योग्य है और अपीलकर्ता वर्तमान मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी है।

8. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने जमानत की प्रार्थना का विरोध किया परन्तु उपरोक्त तथ्यों का खण्डन नहीं कर सके।

9. मैंने दोनों पक्षकारों को सुना है तथा मामले के अभिलेख का अवलोकन किया है।

10. यद्यपि, आरोप के अनुसार विवाह के मिथ्या वादे के अधीन अपीलकर्ता ने विपक्षी पक्षकार संख्या 2 का यौन शोषण किया तथा उसके साथ बलात्कार किया और विपक्षी पक्षकार संख्या 2 का अश्लील वीडियो भी तैयार किया, परन्तु इस सम्बन्ध में उसके आरोप को सिद्ध करने के लिए विपक्षी पक्षकार संख्या 2 का कथित अश्लील वीडियो अभिलेख पर नहीं है।

11. आगे, स्वीकार्यतः, विपक्षी पक्षकार संख्या 2 अर्थात् मामले की सूचनाकर्ता वयस्क महिला है तथा अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप की प्रकृति पर विचार करते हुए प्रथम दृष्टया वर्तमान मामला सहमतिपूर्ण सम्बन्ध का मामला प्रतीत होता है।

12. आगे, अपीलकर्ता का कोई पूर्ववर्ती आपराधिक इतिहास नहीं है तथा वर्तमान मामले में वह दिनांक 19.01.2025 से कारागार में है।

13. इसलिए, उपरोक्त विवेचित मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मेरे विचार में, दिनांक 05.03.2025 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा सम्बन्धित न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के जमानत आवेदन को खारिज कर दिया गया है, अवैध है तथा निरस्त किए जाने योग्य है और अपीलकर्ता तत्काल मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का अधिकारी है।

14. तदनुसार, तत्काल अपील अनुज्ञात की जाती है तथा सम्बन्धित न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 05.03.2025 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है और मामले के गुणागुण पर कोई अभिमत व्यक्त किए बिना, अपीलकर्ता को तत्काल मामले में जमानत पर मुक्त किए जाने का निर्देश दिया जाता है।

15. अपीलकर्ता **अंशु कुशवाहा** को उपरोक्त मामले में जमानत पर मुक्त किया जाए, उसके द्वारा सम्बन्धित न्यायालय के सम्मानप्रद रूप से व्यक्तिगत बंधपत्र तथा सम्मान राशि में दो विश्वसनीय प्रतिभूतियाँ प्रस्तुत करने पर, निम्नलिखित शर्तों के साथ:

- (i) अपीलकर्ता विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।
- (ii) अपीलकर्ता अभियोजन के साक्षी पर दबाव नहीं डालेगा/धमकाएगा नहीं।
- (iii) अपीलकर्ता विचारण न्यायालय के समक्ष निर्धारित तिथि पर उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।
- (iv) अपीलकर्ता उस अपराध के समान कोई अपराध नहीं करेगा, जिसके किए जाने का वह अभियुक्त है, अथवा जिसके किए जाने का संदेह है।
- (v) अपीलकर्ता मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई प्रलोभन, धमकी अथवा वचन नहीं देगा ताकि उसे न्यायालय अथवा किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट करने से विरत किया जा सके अथवा साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

16. उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन की दशा में, अभियोजन को इस न्यायालय के समक्ष जमानत निरसन आवेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता होगी।

(2025) 6 ILRA 66

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 19.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

आपराधिक अपील संख्या 2284/2025

दानिश @ बकरा @ दिलशाद

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रतिपक्ष

अपीलकर्ता के वकील: श्री जे.बी. सिंह

प्रतिपक्ष के वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (5) और 14-ए (2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा - 201 और 302- आपराधिक अपील - एससी / एसटी अधिनियम की धारा 14-ए (2) के तहत दायर, - आरोपित आदेश को रद्द करने के लिए - जिसके तहत निचली अदालत ने जमानत आवेदन खारिज कर दिया - एफआईआर - हत्या का अपराध - गिरफ्तारी - जमानत आवेदन - खारिज - बचाव में यह दलील दी गई कि, हालांकि अपील करने वाले का नाम FIR में है, लेकिन यह हालात के सबूत का मामला है और सिर्फ आखिरी बार देखे जाने के कथित सबूत के आधार पर अपील करने वाले को आरोपी बनाया गया है - कोर्ट ने पाया कि, यह हालात के सबूत का मामला है और ऐसा लगता है कि आखिरी बार देखे जाने के सबूत और इस बात के अलावा कि अपील करने वाले के बताने पर, जुर्म में कथित तौर पर इस्तेमाल की गई ईंट बरामद की गई थी और कोई और सबूत नहीं हैं- साथ ही कोई पिछला क्रिमिनल हिस्ट्री भी नहीं है - माना गया कि, सिर्फ अपील करने वाले की निशानदेही पर एक ईंट मिलने के आधार पर इस स्टेज पर यह नहीं कहा जा सकता कि अपील करने वाले ने मर्डर किया है - इसलिए, जिस ऑर्डर से संबंधित कोर्ट ने आवेदक की बेल एप्लीकेशन खारिज की है, वह गैर-कानूनी है और उसे रद्द किया जा सकता है और अपील करने वाला बेल पर रिहा होने का हकदार है - तुरंत अपील मंजूर की जाती है- अपील करने वाले को सबूतों से छेड़छाड़ या गवाहों को प्रभावित करने से रोकने के लिए सख्त शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए, और अगर कोई शर्त तोड़ी जाती है तो सरकारी वकील जमानत रद्द करने की मांग कर सके। (पैरा - 11, 13, 14, 15, 16)

आवेदन स्वीकार किया गया। (E-11)

(माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन)

1. ऑफिस रिपोर्ट तारीख 30.04.2025 के अनुसार, विरोधी पक्ष नंबर 2 को खुद नोटिस भेजा गया है। नोटिस देने के बावजूद, विरोधी पक्ष नंबर 2 की तरफ से कोई पेश नहीं हुआ। इसलिए, इस अपील पर मेरिट के आधार पर सुनवाई हो रही है।
2. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री जे.बी. सिंह और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजीव धर द्वािवेदी को सुना गया।
3. धारा 14-ए (2) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत यह अपराधिक अपील, अपीलकर्ता द्वारा जमानत आवेदन संख्या 4489/2024 (दानिश @ बकरा @ दिलशाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) पर विद्वान विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी अधिनियम), गौतम बुद्ध नगर द्वारा दिनांक 29-11-2024 को पारित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है, जो केस अपराध संख्या 177/2024 के तहत धारा- 302/201 आईपीसी और धारा- 3 (2) 5 एससी / एसटी अधिनियम पुलिस स्टेशन-दनकौर, जिला-गौतम बुद्ध नगर से उत्पन्न हुआ है।
4. अपील करने वाले के वकील ने कहा कि, हालांकि अपील करने वाले का नाम प्राथमिकी में है, लेकिन यह हालात के सबूत का मामला है और ऐसा लगता है कि सिर्फ आखिरी बार देखे गए कथित सबूत के आधार पर अपील करने वाले को इस मामले में आरोपी बनाया गया है।
5. अगली बात, गवाहों के बयानों से, जिन्होंने आखिरी बार देखे जाने का सबूत दिया, यह पता चलता है कि आखिरी बार देखे जाने का सबूत भी पक्का नहीं है।
6. हालांकि, उन्होंने आगे कहा कि प्रॉसिक्यूशन के अनुसार, जब अपील करने वाले को गिरफ्तार किया गया था, तो आखिरी बार देखे जाने के सबूत के अलावा, उनके बताने पर जुर्म में इस्तेमाल की गई एक ईट भी बरामद की गई थी, लेकिन पूरी बरामदगी झूठी और बेबुनियाद है। वह आगे यह प्रस्तुत करते हैं कि केवल उक्त बरामदगी के आधार पर ही, इस चरण पर यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता ने वादगत मृतक की हत्या की है।
7. वह आगे यह भी प्रस्तुत करते हैं कि उपर्युक्त साक्ष्य के अलावा अभिलेख पर अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। इसके बावजूद, न्यायालय ने दिनांक 29.11.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा अपीलकर्ता की जमानत अर्जी खारिज कर दी, जो कि गंभीर अवैधता है। इसलिए, दिनांक 29.11.2024 का पारित उक्त आदेश विधि-विरुद्ध है और निरस्त किए जाने योग्य है। अतः वर्तमान मामले में अपीलकर्ता जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार है।

8. वह आगे यह प्रस्तुत करते हैं कि अपीलकर्ता का कोई भी पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान मामले में वह 02.07.2024 से जेल में निरुद्ध है, अर्थात् लगभग 11 माह से अधिक समय से।

9. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने जमानत के प्रार्थना-पत्र का विरोध किया, किन्तु उपर्युक्त तथ्यों से इनकार नहीं कर सके।

10. मैंने दोनों पक्षों की दलीलों को सुना है तथा वाद अभिलेख का अवलोकन किया है।

11. यह एक परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है, और प्रतीत होता है कि 'लास्ट सीन' के साक्ष्य तथा यह तथ्य कि अपीलकर्ता के इशारे पर घटना में प्रयुक्त बताई गई एक ईंट बरामद हुई-इन दोनों के अलावा अभिलेख पर अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

12. जहाँ तक 'लास्ट सीन' के साक्ष्य का प्रश्न है, गवाहों के बयान पर विचार करने के पश्चात् यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अग्रसारित इस तर्क को स्वीकार करता है कि 'लास्ट सीन' का साक्ष्य विश्वसनीय या संतोषजनक प्रतीत नहीं होता।

13. इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अग्रसारित इस तर्क में भी बल पाता है कि केवल अपीलकर्ता के इशारे पर बरामद हुई ईंट के आधार पर, इस चरण पर यह नहीं कहा जा सकता कि अपीलकर्ता ने वादगत मृतक की हत्या की है।

14. इसके अलावा, अपीलकर्ता का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और वर्तमान मामले में वह 02.07.2024 से जेल में निरुद्ध है, अर्थात् लगभग 11 माह से अधिक समय से।

15. अतः, उपर्युक्त तथ्य एवं परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मेरे मत में दिनांक 29-11-2024 का वह आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा न्यायालय ने अपीलकर्ता की जमानत अर्जी खारिज की है, विधि-विरुद्ध है और निरस्त किए जाने योग्य है। इसलिए, अपीलकर्ता वर्तमान प्रकरण में जमानत पर रिहा किए जाने का हकदार है।

16. तदनुसार, वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है और न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29-11-2024 का आक्षेपित आदेश यहाँ पर निरस्त किया जाता है। तथा वाद के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, अपीलकर्ता को इस प्रकरण में जमानत पर रिहा किए जाने का निर्देश दिया जाता है।

17. अपीलकर्ता दानिश @ बकरा @ दिलशाद को उपर्युक्त वाद में **व्यक्तिगत बन्धपत्र** तथा **उसी राशि के दो विश्वसनीय जमानतदार** प्रस्तुत करने पर, जिन्हें न्यायालय स्वीकार्य पाए, जमानत पर रिहा किया जाए, बशर्ते कि वह निम्नलिखित शर्तों का पालन करे:

- (i) अपीलकर्ता विचारण के दौरान साक्ष्यों के साथ किसी प्रकार की छेड़छाड़ नहीं करेगा।
- (ii) अपीलकर्ता अभियोजन के गवाहों पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डालेगा और न ही उन्हें भयभीत करेगा।
- (iii) अपीलकर्ता नियत तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से उसे छूट न दी गई हो।
- (iv) अपीलकर्ता उस प्रकार का कोई भी अपराध नहीं करेगा, जिसके करने का उस पर आरोप है या जिसके करने का उस पर संदेह है।
- (v) अपीलकर्ता प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जो वाद के तथ्यों से परिचित हो, किसी प्रकार का प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा, ताकि वह व्यक्ति न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष तथ्य प्रकट करने से विरत हो जाए, और न ही वह साक्ष्यों से छेड़छाड़ करेगा।

18. यदि उपर्युक्त किसी भी शर्त का उल्लंघन होता है, तो अभियोजन को यह स्वतंत्रता होगी कि वह इस न्यायालय के समक्ष जमानत निरस्तीकरण हेतु प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत कर सके।

अनुरोधित

(2025) 6 ILRA 69

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद, 20.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

आदेश से प्रथम अपील संख्या 2075 वर्ष 2024

कुमारी सुनीता

...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती मन्जू एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता : श्री गौरांग द्विवेदी, श्री प्रनवेश, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता : श्री अजय सेंगर, श्री संजय अग्रवाल

अस्थायी निषेधाज्ञा - संपत्ति अंतरण अधिनियम, धारा 52 - अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा *विभाजन वाद* दायर किया गया - साथ ही प्रार्थना-पत्र 6C-2 (अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु) भी प्रस्तुत किया गया - परंतु उक्त प्रार्थना-पत्र को पारित **आक्षेपित आदेश** द्वारा अस्वीकार कर दिया गया- तीन कारकों पर विचार किया जाना आवश्यक होता है- प्रथम दृष्टया मामला, सुविधा का संतुलन तथा अपरिवर्तनीय क्षति। वर्तमान प्रकरण *विभाजन वाद* से संबंधित है, और विवादित संपत्ति पर वादिनी तथा प्रतिवादियों दोनों का समान अधिकार है- जब तक संपत्ति का विभाजन नहीं होता, उसे संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 52 का संरक्षण प्राप्त रहेगा-परन्तु यदि अस्थायी निषेधाज्ञा न दी जाए, तो इससे भविष्य में अनेक वाद उत्पन्न होने की संभावना है-अतः **आक्षेपित निर्णय, आदेश एवं डिक्री त्रुटिपूर्ण पाए जाते हैं और निरस्त किए जाते हैं-** पक्षकारों को निर्देशित किया जाता है कि वे *यथास्थिति (status quo)* बनाए रखें।

अपील स्वीकार की जाती है। (E-9)

उद्धृत वादों की सूची:

1. एच. अन्जनप्पा एवं अन्य बनाम ए. प्रभाकर एवं अन्य - सिविल अपील संख्याएँ 1180-1181, वर्ष 2025;
2. गुरमीत सिंह भाटिया बनाम किरण कान्त रॉबिन्सन एवं अन्य : (2020) 13 एस.सी.सी. 773,
3. कस्तूरी बनाम अय्यम्पेरुमल एवं अन्य : (2005) 6 एस.सी.सी. 733
4. विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा एवं अन्य : ए.आई.आर. 2020 एस.सी. 3717

5. एम/एस श्री बांखड़ी नाथ डेवलपर्स प्रा. लि. बनाम धर्मेन्द्र कुमार राठौर एवं अन्य : 2024 (3) ए.डी.जे. 723
6. अमर सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य : (2011) 7 एस.सी.सी. 69 तथा
7. अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम के.एस. इन्फ्रास्पेस एल.एल.पी. लिमिटेड एवं अन्य : (2020) 5 एस.सी.सी. 410
8. गुजरात बॉटलिंग कंपनी लिमिटेड एवं अन्य बनाम कोका कोला कंपनी एवं अन्य : (1995) 5 एस.सी.सी. 545
9. जेनिथ मेटाप्लास्ट प्रा. लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य : (2009) 10 एस.सी.सी. 388
10. सौरभ गुप्ता बनाम श्रीमती अर्चना गुप्ता एवं अन्य : 2024 (3) ए.डी.जे. 241 (एल.बी.)
11. शेख गोলাম लालचन्द बनाम नन्दू शॉ एवं अन्य : ए.आई.आर. 2024 एस.सी. 4193
12. रामकान्त अम्बालाल चोकसी बनाम हरीश अम्बालाल चोकसी एवं अन्य एम.ए.एच.यू./एस.सी./1270/2024

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा)

1. श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री प्रनवेश, विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई, को सुना गया तथा श्री अनूप त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता श्री देवांश मिश्रा एवं श्री शिवम् तिवारी, विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा की गई, को प्रतिवादी संख्याएँ 1 से 3 की ओर से सुना गया। साथ ही, प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से श्री अजय सेंगर, विद्वान अधिवक्ता, को भी सुना गया।
2. वर्तमान अपील इस प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि दिनांक 16.09.2024 के निर्णय एवं आदेश तथा दिनांक 19.09.2024 की डिक्री, जिन्हें learned सिविल जज (सीनियर डिवीजन), जालौन एट ओरई द्वारा मूल वाद संख्या 356 of 2023 (कु. सुनीता बनाम श्रीमती मन्जू एवं अन्य) में पारित किया गया है, को **आक्षेपित** कर निरस्त किया जाए तथा अस्थायी निषेधाज्ञा प्रार्थना-पत्र संख्या 6C-2 को स्वीकार किया जाए।
3. पक्षकारों के learned अधिवक्ताओं की सहमति से, अपील का निस्तारण **प्रवेश (admission) स्तर पर ही** किया जा रहा है।
4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा प्रतिवादीगण के विरुद्ध **विभाजन वाद** (मूल वाद संख्या 356 of 2023) दिनांक 11.10.2023 को दायर किया गया था, जिसमें **6C-2 प्रार्थना-पत्र** (अस्थायी निषेधाज्ञा हेतु) भी प्रस्तुत किया गया था। बहस के पश्चात्, 6C-2 प्रार्थना-पत्र को **आक्षेपित आदेश** दिनांक 16.09.2024 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इसलिए वर्तमान अपील दायर की गई है।

5. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि **आक्षेपित आदेश** मूलतः दो आधारों पर पारित किया गया है। प्रथम आधार यह है कि अपीलकर्ता/वादिनी ने कुछ तथ्य छिपाए हैं और वाद दायर करने से पहले अपने द्वारा संपन्न **विक्रय समझौते (Agreement to Sale)** के तथ्य का खुलासा नहीं किया, अतः उसने ईमानदारी का पालन नहीं किया। दूसरा आधार यह था कि उसने वाद में बाद के खरीदारों को प्रतिवादी के रूप में शामिल नहीं किया।

6. जहाँ तक प्रथम आधार का प्रश्न है, अपीलकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क किया कि **विक्रय समझौता (Agreement to Sale)** बिना कब्जे के अधिकार के संपन्न किया गया था और आज तक विक्रय पत्र (Sale Deed) निष्पादित नहीं हुआ है, अतः किसी भी *साझेदार का अधिकार प्रभावित नहीं हुआ*। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि इस तथ्य का खुलासा न करना वाद के स्वभाव या उसके परिणाम को प्रभावित नहीं करता। अतः इसे तथ्य छिपाने के रूप में नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक दूसरा आधार का प्रश्न है, उन्होंने तर्क किया कि वाद की लंबित अवधि में प्रतिवादीगण द्वारा कुल आठ विक्रय पत्र (Sale Deeds) निष्पादित किए गए और अपीलकर्ता/वादिनी को इसकी कोई जानकारी नहीं थी। अतः अपीलकर्ता/वादिनी के लिए बाद के खरीदारों को वाद में पक्षकार के रूप में शामिल करने का कोई अवसर नहीं था। विक्रय पत्र के निष्पादन की जानकारी मिलते ही, उसने संबंधित दस्तावेजों सहित अभिलेख न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर दिए। उन्होंने यह भी तर्क किया कि अपीलकर्ता/वादिनी *डोमिनस लिटस (Dominus Litus)* अर्थात् वाद की स्वामी है, इसलिए उसे किसी को वाद में प्रतिवादी के रूप में शामिल करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता/वादिनी ने उन व्यक्तियों के खिलाफ कोई राहत की मांग नहीं की, जिनके पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित किए गए हैं; अतः वे वाद में आवश्यक पक्ष नहीं हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि बाद के खरीदारों को **ऑर्डर 1, नियम 10, सी.पी.सी.** के अंतर्गत वाद में शामिल होने के लिए स्वतंत्र अधिकार है, इसलिए इस विभाजन वाद में उनकी शिकायत पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा दायर वाद परिवार के सदस्यों के बीच *विभाजन वाद* है और यदि बाद के खरीदारों को शामिल किया जाता है, तो वाद का स्वभाव और उसके परिणाम बदल जाएंगे। अतः, बाद के खरीदार वाद में आवश्यक पक्ष नहीं हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6** के अंतर्गत कुछ आपत्तियाँ उठाई गई थीं और न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इसे केवल विचारण की प्रक्रिया के दौरान, साक्ष्य प्रस्तुत होने के बाद ही तय किया जा सकता है। अतः यह मुद्दा इस चरण पर उठाया नहीं जा सकता। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की, जैसे—

- सिविल अपील संख्याएँ 1180-1181, वर्ष 2025 (एच. अन्जनप्पा एवं अन्य बनाम ए. प्रभाकर एवं अन्य)
- गुरमीत सिंह भाटिया बनाम किरण कान्त रॉबिन्सन एवं अन्य : (2020) 13 एस.सी.सी. 773
- कस्तूरी बनाम अय्यम्पेरुमल एवं अन्य : (2005) 6 एस.सी.सी. 733
- विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा एवं अन्य : ए.आई.आर. 2020 एस.सी. 3717

साथ ही, इस न्यायालय के निर्णय पर भी निर्भरता व्यक्त की गई—

- एम/एस श्री बांखड़ी नाथ डेवलपर्स प्रा. लि. बनाम धर्मेन्द्र कुमार राठौर एवं अन्य : 2024 (3) ए.डी.जे. 723

7. प्रतिवादीगण की ओर से उपस्थित श्री अनूप त्रिवेदी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपर्युक्त प्रस्तुति का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि **विक्रय समझौता (Agreement to Sale)** अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा वाद दायर करने से पूर्व संपन्न किया गया था और वाद लंबित रहते हुए एक और **पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से विक्रय समझौता** निष्पादित किया गया। ये तथ्य अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा छिपाए गए हैं। अतः, वह इस न्यायालय से किसी भी प्रकार की राहत की हकदार नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त की, जैसे—

- अमर सिंह बनाम भारत संघ एवं अन्य : (2011) 7 एस.सी.सी. 69
- अंबालाल साराभाई एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम के.एस. इन्फ्रास्पेस एल.एल.पी. लिमिटेड एवं अन्य : (2020) 5 एस.सी.सी. 410

8. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एक बार विक्रय पत्र (Sale Deed) अन्य व्यक्तियों के पक्ष में निष्पादित हो जाने के बाद, वे वाद में आवश्यक पक्ष बन जाते हैं और वादिनी के लिए उन्हें प्रतिवादी के रूप में शामिल करना आवश्यक है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जहाँ तक *डोमिनस लिटस (Dominus Litus)* का प्रश्न है, **संपत्ति अंतरण अधिनियम, धारा 52** के अंतर्गत, वाद लंबित रहते हुए किसी भी संपत्ति की बिक्री वाद के निर्णय के अधीन होगी। अतः यदि बाद के खरीदारों को प्रतिवादी के रूप में शामिल करने की आवश्यकता नहीं है, तो **धारा 52 के संदर्भ में अस्थायी संरक्षण देने का कोई आधार नहीं है।**

इस विषय पर उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **एच. अन्जनप्पा (सुप्रा)** का हवाला दिया।

9. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि **साझेदारों (co-sharers)** के विरुद्ध अस्थायी निषेधाज्ञा (Interim Injunction) नहीं दी जा सकती। इसके अतिरिक्त, अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करते समय पक्ष के आचरण, सुविधा का संतुलन और अपरिवर्तनीय क्षति पर विचार किया जाना आवश्यक है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान मामले में, निर्विवाद रूप से, पक्ष का आचरण उचित नहीं है और साझेदारों के विरुद्ध अस्थायी निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती। अतः अपीलकर्ता/वादिनी के लिए **प्रथम दृष्टया मामला (prima facie case), सुविधा का संतुलन और अपरिवर्तनीय क्षति मौजूद नहीं है।**

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों और उद्धृत निर्णयों का भी अवलोकन किया है।

11. मामले के निर्विवाद तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता/वादिनी द्वारा दायर वाद **परिवार के सदस्यों के विरुद्ध विभाजन वाद** है। अपीलकर्ता/वादिनी ने वाद दायर करने से पूर्व एक **विक्रय समझौता (Agreement to Sale)** निष्पादित किया और वाद दायर करने के बाद एक और विक्रय समझौता **पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से**

किया, और इस तथ्य का वाद में खुलासा नहीं किया गया। इसी प्रकार, 6C-2 प्रार्थना-पत्र के विरोध में, प्रतिवादीगण द्वारा निष्पादित विक्रय पत्रों का कोई खुलासा नहीं किया गया।

12. अब न्यायालय के समक्ष मूल प्रश्न यह है कि *विभाजन वाद के लंबित रहने के दौरान, अस्थायी संरक्षण (Interim Protection) प्रदान किया जाना चाहिए या नहीं।*

13. मैं अपीलकर्ता/वादिनी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत पहले तर्क पर आता हूँ, जो कुछ तथ्यों के *खुलासा न करने* से संबंधित है। यदि इन तथ्यों का खुलासा न करने से वाद का स्वभाव और परिणाम प्रभावित नहीं होता, तो इसे 6C-2 प्रार्थना-पत्र खारिज करने का आधार नहीं माना जा सकता, विशेषकर इस तथ्य के साथ कि वर्तमान मामले में दोनों पक्षों ने कुछ तथ्य छिपाए हैं।

14. मैंने **अमर सिंह (सुप्रा)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी अवलोकन किया है। उक्त निर्णय के संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

53. सदियों से न्यायालयों ने उन पक्षकारों की निंदा की है, जिन्होंने न्यायालय को भ्रमित और गुमराह करने के इरादे से, तथ्यों का पूरा खुलासा किए बिना कार्यवाही आरंभ की। न्यायालयों ने माना कि ऐसे पक्षकार *ईमानदारी का पालन नहीं कर रहे हैं* और उन्हें अपने वाद के गुण-दोष पर विचार के लिए सुनवाई का अधिकार नहीं है।

54. **डालग्लिश बनाम जारवी {2 मैक. & जी. 231, 238}** मामले में, न्यायालय ने, लॉर्ड लैंगडेल और रोलफ बी. के माध्यम से, यह निर्देश दिया:

अस्थायी निषेधाज्ञा (Injunction) मांगने वाले पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह अपने उस अधिकार के निर्णय के लिए आवश्यक सभी महत्वपूर्ण तथ्यों को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे। और यह पक्ष उसके लिए कोई बहाना नहीं है कि उसने किसी तथ्य की महत्ता को नहीं जाना, जिसे उसने प्रस्तुत करने में छोड़ा।

55. **कास्टेली बनाम कुक {1849 (7) हेयर, 89, 94}** मामले में, वाइस चांसलर विग्राम ने वही सिद्धांत निम्नानुसार स्पष्ट किए:

एक पक्षकार जो **एक्स पार्टि (ex parte)** आवेदन करता है, वह न्यायालय के साथ एक अनुबंध में आता है कि वह पूरे मामले को न्यायालय के समक्ष पूर्ण और निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत करेगा। यदि वह ऐसा नहीं करता और जब अन्य पक्ष न्यायालय से निषेधाज्ञा (Injunction) रद्द करने का आवेदन करता है, तो न्यायालय पाता है कि कोई महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया गया है या सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया गया, तो वादिनी को बताया जाता है कि न्यायालय वाद के गुण-दोष पर निर्णय नहीं करेगा और क्योंकि उसने न्यायालय के प्रति विश्वासघात किया है, इसलिए निषेधाज्ञा रद्द की जानी चाहिए।

56. रिपब्लिक ऑफ पेरु बनाम ड्रेफस ब्रदर्स एंड कंपनी {55 एल.टी. 802, 803} मामले में, न्यायाधीश के ने हमें उसी स्थिति की याद दिलाते हुए यह निर्णय दिया:

यदि कोई महत्वपूर्ण तथ्य गलत प्रस्तुत किया गया है, तो मैं स्वयं के लिए कहता हूँ कि मैंने कभी संकोच नहीं किया, और जब तक नियम परिवर्तित नहीं होता, मैं कभी संकोच नहीं करूंगा, तुरंत आदेश रद्द करने के लिए, ताकि इस न्यायालय में वाद दाखिल करने वाले सभी पक्षकारों पर यह प्रभाव पड़े कि **एक्स पार्टी (ex parte)** आवेदन करते समय न्यायालय के प्रति ईमानदारी से व्यवहार करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

57. इस सिद्धांत को मजबूत करने वाले सबसे प्रसिद्ध मामलों में से एक में, **कोर्ट ऑफ अपील में आर. बनाम केन्सिंगटन इनकम टैक्स कमिशनर {1917 (1) K.B. 486}** में, लॉर्ड जस्टिस स्कटन ने इसे निम्नानुसार स्पष्ट किया:

कई वर्षों से यह न्यायालय का नियम रहा है, और इसे बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है, कि जब कोई पक्षकार **एक्स पार्टी (ex parte)** प्रस्तुति के आधार पर न्यायालय से राहत प्राप्त करने के लिए आता है, तो उसे सभी महत्वपूर्ण तथ्यों का **पूर्ण और निष्पक्ष खुलासा** करना चाहिए—यह तथ्य अब **कानून** बन चुका है। यदि संभव हो, तो उसे कानून को गलत प्रस्तुत नहीं करना चाहिए क्योंकि न्यायालय को कानून की जानकारी होती है। लेकिन न्यायालय तथ्यों के बारे में कुछ नहीं जानता, और आवेदनकर्ता को तथ्यों का **पूर्ण और निष्पक्ष खुलासा** करना अनिवार्य है। इस कर्तव्य को न्यायालय द्वारा लागू किए जाने वाला दंड यह है कि यदि न्यायालय पाता है कि तथ्यों को पूर्ण और निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो न्यायालय उस किसी भी कार्रवाई को रद्द कर देगा, जो उसने उस अधूरी प्रस्तुति पर भरोसा करके की हो।

58. यह विधिशास्त्र के **मूलभूत सिद्धांतों** में से एक है कि पक्षकारों को अपने **अभियोजन (pleadings)** में पूर्ण स्पष्टता और ईमानदारी का पालन करना चाहिए, विशेषकर जब उसमें **अस्थायी निषेधाज्ञा (Injunction)** के लिए प्रार्थना शामिल हो।

अस्थायी निषेधाज्ञा, जो एक **समानतामूलक राहत (equitable remedy)** है, उसे **'उबेरिमा फाइडे (Uberrima Fide)'** के सिद्धांतों द्वारा शासित किया जाना चाहिए।

59. न्यायालय के प्रति ईमानदारी (Clean Hands) के साथ न्यायालय में आने की उपर्युक्त आवश्यकता को इस न्यायालय ने कई मामलों में बार-बार दोहराया है। जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- **हरी नारायण बनाम बट्टी दास**
- **वेलकम होटल और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य**
- **जी. नारायणस्वामी रेड्डी (मृत) के उत्तराधिकारियों द्वारा बनाम कर्नाटक सरकार और अन्य**
- **एस.पी. चेंगलवराया नायडू (मृत) के उत्तराधिकारियों द्वारा बनाम जगन्नाथ (मृत) के उत्तराधिकारियों और अन्य**
- **ए.वी. पप्पैया शास्त्री और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार और अन्य**
- **प्रेस्टिज लाइट्स लिमिटेड बनाम एस.बी.आई.**
- **सुनील पोद्दार और अन्य बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया**

- के.डी. शर्मा बनाम एस.ए.आई.एल. और अन्य
- जी. जयश्री और अन्य बनाम भागवन्दास एस. पटेल और अन्य
- दलिप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

60. अंतिम उल्लेखित मामले **दलिप सिंह (सुप्रा)** में, इस न्यायालय ने इस सिद्धांत को एक नया आयाम प्रदान किया है, जिसका दूरगामी प्रभाव है। अतः हम उन सिद्धांतों को यहाँ पुनः दोहराते हैं:

1. कई शताब्दियों से भारतीय समाज ने जीवन के दो मूलभूत मूल्य—‘सत्य’ (Satya) और ‘अहिंसा’ (Ahimsa)—को महत्व दिया। महावीर, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी ने लोगों का मार्गदर्शन किया कि वे इन मूल्यों को अपने दैनिक जीवन में आत्मसात करें। सत्य पूर्व-स्वतंत्रता काल में प्रचलित न्याय वितरण प्रणाली का अभिन्न हिस्सा था, और लोग परिणामों की परवाह किए बिना न्यायालयों में सत्य बोलने पर गर्व महसूस करते थे। हालाँकि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे मूल्य प्रणाली में काफी बदलाव देखे गए हैं। भौतिकवाद ने पुराने नैतिक मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है और व्यक्तिगत लाभ की खोज इतनी तीव्र हो गई है कि विवादों में शामिल पक्ष न्यायालय की कार्यवाही में झूठ, भ्रामक प्रस्तुतिकरण और तथ्यों को छिपाने से भी नहीं हिचकिचाते।

2. पिछले 40 वर्षों में, विवादों में शामिल होने वाले एक नए प्रकार के पक्षकार उभरे हैं। इस प्रकार के पक्षकारों को **सत्य का कोई सम्मान नहीं** होता। वे अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए **बेशर्मी से झूठ और अनैतिक उपायों** का सहारा लेते हैं। इस नए प्रकार के पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत चुनौती से निपटने के लिए, न्यायालयों ने समय-समय पर नए नियम विकसित किए हैं। अब यह अच्छी तरह स्थापित हो गया है कि ऐसा पक्षकार, जो **न्याय की धारा को दूषित करने का प्रयास करता है या सत्य और निष्पक्ष न्याय के स्रोत को दूषित हाथों से छूता है**, उसे किसी भी प्रकार की राहत—चाहे अस्थायी हो या अंतिम—प्राप्त करने का अधिकार नहीं है। हालाँकि, इस न्यायालय को यह कहना मजबूरी है कि ये सिद्धांत **इनका पालन करने की तुलना में उल्लंघन किए जाने में अधिक सम्मानित** होते हैं।

61. इन सिद्धांतों के पालन में, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं कि वर्तमान **रिट याचिका** याचिकाकर्ता द्वारा न्यायालय को **तुच्छ आरोपों और महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाकर भ्रमित करने का प्रयास** है। इस न्यायालय ने नोटिस जारी किया और इसके बाद **अस्थायी निषेधाज्ञा (Injunction)** आदेश पारित किया, जो अब भी लागू है।

15. उपर्युक्त उद्धृत निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट है कि **तथ्यों को छिपाने या गलत प्रस्तुत करने** के लिए न्यायालय को भ्रमित करने या किसी आदेश को धोखाधड़ी से प्राप्त करने का **इरादा होना आवश्यक** है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 61 से यह स्पष्ट होता है कि उस अपीलकर्ता ने न्यायालय को **तुच्छ आरोप और महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाकर भ्रमित करने** के लिए अपील की थी। लेकिन जहाँ तक वर्तमान मामला है, यदि तथ्यों का खुलासा न किया गया भी हो, तो भी वाद का स्वभाव नहीं बदलेगा, क्योंकि यह **परिवार के सदस्यों के बीच**

विभाजन वाद है। अतः यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता और न ही यह प्रतिवादीगण के लिए सहारा बन सकता है।

16. मैंने **अंबालाल साराभाई (सुप्रा)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी अवलोकन किया है। उक्त निर्णय के संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

23. **वांडर लिमिटेड (सुप्रा)** केवल **सावधानी का नियम** निर्धारित करता है। बहुत कुछ मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। इसे पुनः विचारणीय बनाया गया **गुजरात बॉटलिंग कंपनी लिमिटेड बनाम कोका कोला कंपनी, (1995) 5 एस.सी.सी. 545** में, जहाँ न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अवलोकन किया: **नागरिक प्रक्रिया संहिता, आदेश 39** के अंतर्गत, **अंतरिम या अस्थायी निषेधाज्ञा के आदेश में हस्तक्षेप करने का न्यायालय का अधिकार पूरी तरह समानतामूलक (equitable) होता है।** अतः, जब न्यायालय से संपर्क किया जाता है, तो अन्य विचारों के साथ-साथ उस पक्ष के **आचरण** को भी देखा जाएगा, जो न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू कर रहा है, और न्यायालय हस्तक्षेप करने से इनकार कर सकता है यदि उसका आचरण दोषमुक्त न हो। चूँकि यह राहत पूरी तरह से समानतामूलक है, इसलिए न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को लागू करने वाला पक्ष यह सिद्ध करना होगा कि वह स्वयं दोषमुक्त है और उसके कारण किसी गलती का परिणाम नहीं हुआ।

17. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट है कि मामले के तथ्य पूरी तरह भिन्न हैं। इस निर्णय में यह उल्लेख किया गया कि तथ्य का वाद के परिणाम पर प्रभाव पड़ता है, जो कि वर्तमान मामले में नहीं है। अतः यह निर्णय भी प्रतिवादीगण के लिए सहारा नहीं बन सकता।

18. अब मैं दूसरे मुद्दे पर आता हूँ कि क्या बाद के खरीदार (**subsequent purchasers**) आवश्यक पक्ष हैं या नहीं। इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एच. अन्नजप्पा (**सुप्रा**) मामले में विचार किया है। उक्त निर्णय के संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:

58. उपर्युक्त सभी निर्णयों के संक्षिप्त अवलोकन से, वर्तमान पहलू को ध्यान में रखते हुए, व्यापक रूप से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:

- i. प्रथम, **पेंडेंटे लाइटे (pendente lite)** के दौरान किसी स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (**transferee**) को पक्षकार के रूप में शामिल करने के लिए, तथ्यों और परिस्थितियों का अवलोकन किया जाना चाहिए और आवश्यक तथ्यों के आधार पर, न्यायालय ऐसे पक्ष को रिकॉर्ड में आने की अनुमति दे सकता है, चाहे वह **आदेश 10 CPC** के तहत हो या **आदेश XXII नियम 10 CPC** के तहत, यह एक सामान्य सिद्धांत के रूप में है;
- ii. द्वितीय, **पेंडेंटे लाइटे (pendente lite)** का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (**transferee**) पक्षकार के रूप में रिकॉर्ड में स्वतः शामिल होने का अधिकार नहीं रखता;

iii. तृतीय, ऐसा कोई संपूर्ण नियम नहीं है कि पेंडेंटे लाइटे (pendente lite) का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (transferee) को, न्यायालय की अनुमति से, सभी मामलों में पक्षकार के रूप में रिकॉर्ड में आने की अनुमति दी जानी चाहिए;

iv. चतुर्थ, पेंडेंटे लाइटे (pendente lite) का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (transferee) को शामिल करना वाद के स्वभाव और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के मूल्यांकन पर निर्भर करेगा;

v. पंचम, जहाँ पेंडेंटे लाइटे (pendente lite) का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (transferee) रिकॉर्ड में आने के लिए अनुमति नहीं मांगता, तो यह स्पष्ट रूप से उसकी जोखिमपूर्ण स्थिति होगी, और वाद का संचालन रिकॉर्ड में शामिल वादी (plaintiff) द्वारा अनुचित रूप से किया जा सकता है;

vi. षष्ठम, केवल इसलिए कि पेंडेंटे लाइटे (pendente lite) का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता (transferee) रिकॉर्ड में नहीं आता, इसका अर्थ यह नहीं है कि वह निर्णय द्वारा बाध्य नहीं होगा। परिणामस्वरूप, वह विवाद के परिणाम से बाध्य होगा, भले ही वह अप्रतिनिधित्वित (unrepresented) रहे;

vii. सप्तम, पेंडेंटे लाइटे (pendente lite) के दौरान की गई बिक्री लेनदेन पर स्थानांतरण संपत्ति अधिनियम, 1882 की धारा 52 लागू होती है; और,

viii. अष्टम, पेंडेंटे लाइटे का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता, जो संपत्ति में रुचि का हस्तांतरण प्राप्तकर्ता होता है, जैसा कि आदेश XXII नियम 10 CPC के अंतर्गत कल्पित है, न्यायालय से अनुमति मांग सकता है कि वह स्वयं रिकॉर्ड में आए या वाद के किसी भी पक्ष के आग्रह पर रिकॉर्ड में शामिल किया जाए।

19. उपरोक्त निर्णय के अनुच्छेद 58 के सावधानीपूर्वक अवलोकन से स्पष्ट है कि पेंडेंटे लाइटे का स्थानांतरण प्राप्तकर्ता स्वाभाविक रूप से आवश्यक पक्ष नहीं है। यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जहाँ तक वर्तमान मामला है, यह निश्चित रूप से विभाजन वाद है, अतः ऐसे कार्यवाही में बाद के खरीदार आवश्यक पक्ष नहीं हैं।

20. अब मैं डोमिनस लिटस (dominus litus) के मुद्दे पर आता हूँ। यह मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सामने गुरमित सिंह भाटिया (सुप्रा), कस्तुरी (सुप्रा) और इस न्यायालय में एम/एस श्री बांखड़ी नाथ डेवलपर्स (सुप्रा) मामलों में भी उठ चुका है। न्यायालय ने यह माना कि वादी-अपीलकर्ता (appellant-plaintiff) डोमिनस लिटस है, और उसे उस पक्ष को शामिल करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता जिसके खिलाफ वह मुकदमा लड़ना नहीं चाहता, जब तक कि कानून के नियम के अंतर्गत ऐसा प्रावधान न हो। वर्तमान मामले में, बाद के खरीदारों के खिलाफ कोई राहत नहीं मांगी गई है, इसलिए वादी-अपीलकर्ता को उन्हें प्रतिवादी के रूप में शामिल करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।

21. एक और मुद्दा है जो हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 से संबंधित है, जिसमें वादी-अपीलकर्ता की कानूनी उत्तराधिकारिता को नकारा गया है।

22. इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **विनीता शर्मा (सुप्रा)** मामले में गंभीर रूप से विचार किया था। उक्त निर्णय का संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

29. **घमंडी राम (सुप्रा)** मामले में, सह-वारिसी (coparcenary) की **रचना, अवधारणा और घटनाएँ** इस प्रकार चर्चा में आई:

5. हिंदू कानून के **मिताक्षरा संप्रदाय** के अनुसार, एक हिंदू संयुक्त परिवार की सारी संपत्ति सभी सह-वारिसियों के द्वारा **सामूहिक स्वामित्व में** रखी जाती है, जो एक प्रकार की अर्ध-संवैधानिक संस्था के रूप में होती है। मिताक्षरा के शास्त्रीय ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संयुक्त परिवार की संपत्ति **सभी वर्तमान और भविष्य में जन्म लेने वाले परिवार के सदस्यों के लिए ट्रस्ट** के रूप में रखी जाती है (देखें मिताक्षरा, अध्याय 1, 1-27)। प्रथम, किसी व्यक्ति के **प्रत्यक्ष पुरुष वंशज** तीसरी पीढ़ी तक जन्म के समय उस व्यक्ति की **पारंपरिक संपत्ति में स्वामित्व प्राप्त करते हैं**। द्वितीय, ऐसे वंशज किसी भी समय अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं और **विभाजन** की मांग कर सकते हैं। तृतीय, विभाजन तक प्रत्येक सदस्य का संपत्ति पर **संयुक्त स्वामित्व** पूरे परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रहता है। चतुर्थ, इस सह-स्वामित्व के परिणामस्वरूप संपत्ति का **कब्जा और उपयोग सभी के लिए साझा** होता है। पंचम, संपत्ति का कोई **हस्तांतरण केवल आवश्यकता के लिए**, और सह-वारिसियों की सहमति के बिना, संभव नहीं है। षष्ठ, किसी सदस्य के **मृत्यु पर उसका अधिकार** शेष जीवित सदस्यों को ही प्राप्त होता है। मिताक्षरा संप्रदाय के अंतर्गत सह-वारिसी (coparcenary) कानून द्वारा स्थापित होती है और पक्षकारों की क्रिया से उत्पन्न नहीं हो सकती, सिवाय इसके कि **गोद लेने पर गोद लिया गया पुत्र** अपने गोद लेने वाले पिता के **पारंपरिक संपत्ति में सह-वारिसी** बन जाता है। यह सिद्धांत **सुंदरनम मैस्ट्र बनाम हरसिंभुनु मैस्ट्र और अन्य, ILR 25 मद 149 पृ. 154** में माना गया है।

माननीय न्यायाधीश भाश्याम अय्यंगर ने कानूनी स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया:

मिताक्षरा सिद्धांत के अनुसार संयुक्त परिवार की संपत्ति की अवधारणा **अविभाजित परिवार के अस्तित्व पर** आधारित है, जो एक **संगठित संस्था** के रूप में होती है (गन सावंत बाल सावंत बनाम नारायण भोंद सावंत [ILR 7 बॉम 467] और मेन, हिंदू कानून और प्रथाएँ, छठा संस्करण, अनुच्छेद 270) तथा ऐसी संपत्ति का **कब्जा** इस संगठित संस्था द्वारा रखा जाता है। इसलिए पहली आवश्यकता **परिवार इकाई** है; और दूसरी आवश्यकता है कि उस परिवार के पास **संपत्ति का कब्जा** होना। वर्तमान उद्देश्य के लिए, परिवार की **महिला सदस्यों** को विचार से बाहर रखा जा सकता है और हिंदू परिवार की अवधारणा है कि एक **सामान्य पुरुष पूर्वज** अपने **पुरुष वंशजों** के साथ होता है, और जब तक वह परिवार अपनी सामान्य स्थिति यानी **अविभाजित स्थिति** में है, यह एक **संगठित संस्था** का रूप लेता है। ऐसी संगठित संस्था अपने **पारंपरिक अधिकारों** के साथ पूरी तरह से **कानून द्वारा स्थापित** होती है और इसे पक्षकारों की क्रिया से नहीं बनाया जा सकता, सिवाय इसके कि गोद लेने के माध्यम से कोई अजनबी उस संगठित परिवार का सदस्य बनाया जा सके।

6. ऐसे परिवार के स्वामित्व वाली संपत्ति के स्वभाव की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, माननीय न्यायाधीश ने यह कहा:

ऐसे परिवार की संपत्ति के संबंध में, उस परिवार को मिलने वाली **अवरोधित विरासत** अपने बढ़ोतरी सहित, परिवार के द्वारा **संगठित संस्था** के रूप में स्वामित्व में होती है, और उस परिवार की एक या अधिक शाखाएँ, प्रत्येक बड़ी संगठित संस्था के भीतर एक संगठित संस्था का रूप लेते हुए, **अलग अवरोधित विरासत** का स्वामित्व रख सकती हैं, जो अपनी बढ़ोतरी सहित केवल उस शाखा के द्वारा **संगठित संस्था** के रूप में स्वामित्व में होती है।

23. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से स्पष्ट है कि माननीय न्यायाधीश ने इस मुद्दे का निपटारा **विनीता शर्मा (सुप्रा)** के निर्णय के प्रकाश में किया है, अतः वादी-अपीलकर्ता की सह-वारिसी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

24. अब मैं इस मुद्दे पर आता हूँ कि क्या **विभाजन वाद में अंतरिम सुरक्षा (interim protection)** प्रदान करने की आवश्यकता है या नहीं। यह मुद्दा **गुजरात बॉटलिंग कंपनी लिमिटेड बनाम कोका कोला कंपनी और अन्य (1995) 5 SCC 545** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के सामने भी आया था। उक्त निर्णय का संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

46. कानूनी कार्यवाही की लंबित अवस्था में **अंतरिम निषेधाज्ञा (interlocutory injunction)** प्रदान करना ऐसा विषय है जिसमें **न्यायालय का विवेक** प्रयोग करना आवश्यक होता है। विवेक का प्रयोग करते समय न्यायालय निम्नलिखित मानदंडों को देखता है:

(i) क्या वादी का **प्रारंभिक मामला (prima facie case)** है;

(ii) क्या **सुविधा का संतुलन (balance of convenience)** वादी के पक्ष में है; और

(iii) यदि वादी की अंतरिम निषेधाज्ञा की याचिका अस्वीकृत हो जाती है, तो क्या वादी को **अपरिवर्तनीय हानि (irreparable injury)** होगी। अंतरिम निषेधाज्ञा (interlocutory injunction) देने या न देने का निर्णय उस समय लिया जाता है जब वादी द्वारा आरोपित **कानूनी अधिकार** और उसके कथित **उल्लंघन** दोनों ही विवादित और अनिश्चित हों, और यह अनिश्चितता तब तक बनी रहती है जब तक कि यह **साक्ष्यों के आधार पर मुकदमे में स्थापित** न हो जाए। अंतरिम निषेधाज्ञा के रूप में राहत वादी को उस अवधि में होने वाले **अन्याय के जोखिम को कम करने** के लिए प्रदान की जाती है जब तक यह अनिश्चितता स्पष्ट नहीं हो जाती। अंतरिम निषेधाज्ञा का उद्देश्य वादी को उसके **अधिकार के उल्लंघन** से होने वाली हानि से बचाना है, जिसके लिए उसे मुकदमे में **मुआवजा (damages)** पर्याप्त रूप से नहीं मिल सकता यदि मुकदमे में यह अनिश्चितता उसके पक्ष में सुलझ जाए। हालांकि, ऐसी सुरक्षा की आवश्यकता का **तुलनात्मक मूल्यांकन** उस प्रतिवादी की सुरक्षा की आवश्यकता के साथ करना होता है, जो अपने **कानूनी अधिकारों का प्रयोग करने** से रोके जाने के कारण होने वाली हानि के लिए पर्याप्त मुआवजा प्राप्त नहीं कर सकता। न्यायालय को इन दोनों आवश्यकताओं का **संतुलन** करना होता है और यह निर्धारित करना होता है कि **सुविधा का संतुलन (balance of convenience)** किस पक्ष में है। [देखें: *Wander Ltd. और अन्य बनाम एंटॉक्स इंडिया प्रा. लि.* MANU/SC/0595/1990] प्रतिवादी की सुरक्षा के लिए, जब उसके पक्ष में **अंतरिम निषेधाज्ञा (interlocutory injunction)** प्रदान की जाती है, तो न्यायालय

वादी से यह **प्रतिज्ञा (undertaking)** लेने की मांग कर सकता है ताकि यदि मुकदमे में अनिश्चितता उसके पक्ष में सुलझ जाए, तो प्रतिवादी को पर्याप्त मुआवजा दिया जा सके।

25. इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय ने **जेनिथ मेटाप्लास्ट प्रा. लि. बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2009) 10 SCC 388** के मामले में पुनः विचार किया। उक्त निर्णय का संबंधित अनुच्छेद नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

23. अंतरिम आदेश **प्रारंभिक (prima facie) निष्कर्षों** के आधार पर दिया जाता है, जो अस्थायी होते हैं। ऐसा आदेश **अस्थायी व्यवस्था** के रूप में दिया जाता है ताकि **स्थिति की वर्तमान स्थिति (status quo)** बनी रहे, जब तक कि मामला **अंततः निर्णीत** न हो जाए, और यह सुनिश्चित किया जा सके कि मामला **निर्फल (infructuous)** या **पूर्वनिर्धारित (fait accompli)** न बन जाए अंतिम सुनवाई से पहले। अंतरिम निषेधाज्ञा का उद्देश्य वादी को उसके **अधिकार के उल्लंघन** से होने वाली हानि से बचाना है, जिसके लिए उसे मुकदमे में **मुआवजा (damages)** पर्याप्त रूप से नहीं मिल सकता यदि मुकदमे में यह अनिश्चितता उसके पक्ष में सुलझ जाए।

(देखें: आनंद प्रसाद अग्रवाल बनाम असम राज्य बनाम तारकेश्वर प्रसाद और अन्य, AIR 2001 SC 2367; और बराक उपत्यका डी.यू. कर्मचारी संस्था, (2009) 5 SCC 694)

24. अंतरिम राहत प्रदान करने का निर्णय, उसके **स्वभाव और सीमा** के संबंध में, प्रत्येक मामले के **तथ्यों और परिस्थितियों** पर निर्भर करता है, क्योंकि कोई निश्चित और सख्त नियम (strait-jacket formula) निर्धारित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें प्रतिवादी/उत्तरदाता **वाद की संपत्ति** का ऐसा उपयोग कर सकता है कि स्थिति **अपरिवर्तनीय (irretrievable)** हो जाए। ऐसी परिस्थिति में **अंतरिम राहत (interim relief)** प्रदान की जानी चाहिए। (देखें: एम. गुरुदास और अन्य बनाम रसरंजन और अन्य, AIR 2006 SC 3275; और श्रीदेवी और अन्य बनाम मुरलीधर और अन्य, (2007) 14 SCC 721)

25. अंतरिम निषेधाज्ञा (temporary injunction) प्रदान करने का निर्णय **तीन मूलभूत सिद्धांतों** पर आधारित होता है, अर्थात्:

1. प्रारंभिक मामला (prima facie case)
2. सुविधा का संतुलन (balance of convenience)
3. अपरिवर्तनीय हानि (irreparable injury)

इन सिद्धांतों को **विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों** के परिप्रेक्ष्य में विचार करना आवश्यक होता है। हालांकि, किसी भी न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि अंतरिम निषेधाज्ञा देने के चरण में **छोटी सुनवाई (mini trial)** आयोजित की जाए।

(देखें: एस.एम. डाईकेम लिमिटेड बनाम एम/एस. कैडबरी (इंडिया) लिमिटेड, AIR 2000 SC 2114; और आनंद प्रसाद अग्रवाल (सुप्रा))

26. कोलगेट पामोलिव (इंडिया) लिमिटेड बनाम हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, AIR 1999 SC 3105 में इस न्यायालय ने अवलोकन किया कि **अंतरिम निषेधाज्ञा (injunction)** देने के लिए आवेदन या याचिका पर विचार करते समय न्यायालय को जिन अन्य कारकों का मूल्यांकन करना चाहिए, वे निम्नलिखित हैं:

- (i) हानि की सीमा (extent of damages) क्या पर्याप्त समाधान (adequate remedy) प्रदान करती है;
- (ii) वादी के अधिकारों के उल्लंघन से होने वाली हानि से वादी के हित की सुरक्षा, हालांकि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इससे प्रतिवादी को जो हानि हो सकती है।
- (iii) न्यायालय को मामले का निपटारा करते समय इस तथ्य की अनदेखी नहीं करनी चाहिए कि एक पक्ष का मामला दूसरे पक्ष की तुलना में मजबूत है।
- (iv) अंतरिम निषेधाज्ञा (injunction) देने के मामले में कोई निश्चित नियम या विचारधारा नहीं अपनाई जानी चाहिए, बल्कि प्रत्येक मामले के **तथ्यों और परिस्थितियों** के आधार पर राहत **लचीली (flexible)** रखी जानी चाहिए।
- (v) इस मुद्दे को इस दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए कि यदि निषेधाज्ञा (injunction) अस्वीकार कर दी जाती है, तो वादी को **अपरिवर्तनीय हानि (irreparable loss)** और **चोट (injury)** होगी या नहीं, साथ ही पक्षों के मामले की **मजबूती** को ध्यान में रखते हुए।
- (vi) सुविधा या असुविधा का संतुलन (balance of convenience or inconvenience) को एक महत्वपूर्ण आवश्यकता के रूप में माना जाना चाहिए, भले ही **अंतरिम निषेधाज्ञा (grant of injunction)** के समर्थन में कोई गंभीर प्रश्न या प्रारंभिक मामला (prima facie case) हो।
- (vii) क्या निषेधाज्ञा (injunction) का प्रदान या अस्वीकार करना **सामान्य जनता के हित** को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा, जिसे अन्यथा पूरा या क्षतिपूर्ति नहीं किया जा सकता।

27. डलपत कुमार एवं अन्य बनाम प्रहलाद सिंह एवं अन्य, AIR 1993 SC 276 में, सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त **महत्वपूर्ण परिस्थितियों** के दायरे को स्पष्ट किया और निम्नलिखित अवलोकन किया:

प्रारंभिक मामला (prima facie case), सुविधा का संतुलन (balance of convenience) और अपरिवर्तनीय हानि (irreparable loss) ये केवल शब्द नहीं हैं जिन्हें जादू की तरह दोहराया जाए, बल्कि ये **विस्तार और लचीलापन वाले शब्द** हैं, जो मनुष्य की सृजनात्मकता द्वारा प्रस्तुत किए गए विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनाए जाते हैं। यह हमेशा **न्यायिक विवेक (judicial discretion)** के सही प्रयोग के साथ न्याय की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाना चाहिए। तथ्य स्वयं स्पष्ट हैं और अपने आप बोलते हैं। तथ्यों से प्रारंभिक मामला (prima facie case) और सुविधा का संतुलन (balance of convenience) निकाल पाना लगभग असंभव है।

28. इस न्यायालय ने मनोहर लाल चोपड़ा बनाम राय बहादुर राव राजा सेठ हीरा लाल, AIR 1962 SC 527 में निर्णय दिया कि **नागरिक न्यायालय** के पास अपनी अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र (inherent jurisdiction) का

प्रयोग करते हुए **अंतरिम निषेधाज्ञा (interim injunction)** देने का अधिकार है, भले ही मामला **नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा ऑर्डर 39 के दायरे में न आता हो।

29. देवराज बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, AIR 2004 SC 1975 में, इस न्यायालय ने उस मामले पर विचार किया जहाँ निचली अदालतों ने अंतरिम राहत देने से इनकार कर दिया था। अपील पर विचार करते समय, न्यायालय ने अवलोकन किया कि सामान्यतः संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों में हस्तक्षेप नहीं करता। हालांकि, इस विवेकाधिकार का नियम, जो व्यवहार में अपनाया जाता है, स्वयं पर लगाए गए **न्यायसंगत प्रतिबंध** के रूप में है। ऐसी अपरिवर्तनीय हानि (irreparable injury), जो जबरदस्ती संतुलन को आवेदनकर्ता के पक्ष में झुका देती है, न्यायालय को प्रोत्साहित कर सकती है कि वह अंतरिम राहत प्रदान करे, भले ही वह अंतिम राहत देने के बराबर ही क्यों न हो।

न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:-

न्यायालय ऐसी अंतरिम राहत तभी प्रदान करेगा जब यह सुनिश्चित हो जाए कि इसे न देने से न्यायालय की चेतना को झकझोड़ा जाएगा और न्याय की भावना के विपरीत कार्य होगा, जिसके परिणामस्वरूप सुनवाई के दौरान अन्याय लगातार बना रहेगा और अंत में न्यायालय न्याय की स्थापना नहीं कर पाएगा।

30. ऐसा कदम तभी संभव है जब आवेदनकर्ता का मामला उसके मौलिक अधिकारों पर आधारित हो, जो भारत के संविधान द्वारा सुरक्षित हैं। (देखें: ऑल इंडिया अन्ना द्रविड़ मुनेत्रा कड़जगम बनाम मुख्य सचिव, तमिलनाडु सरकार एवं अन्य, (2009) 5 SCC 452)

31. बॉम्बे डाइंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम बॉम्बे एन्वायरनमेंटल एक्शन ग्रुप एवं अन्य, (2005) 5 SCC 61 में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ की:

न्यायालयों को, तथापि, दो चरम स्थितियों के बीच संतुलन बनाना होता है, अर्थात्, एक ओर यह विचार करना कि यदि अंतरिम आदेश से इनकार किया गया तो याचिका स्वयं निष्फल हो जाएगी, और दूसरी ओर यह देखना कि यदि अंतरिम आदेश पारित किया गया तो अन्य पक्षों को जो भारी नुकसान और कठिनाइयाँ सहनी पड़ सकती हैं, विशेषकर इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि ऐसी स्थिति में प्रभावित पक्षों द्वारा उठाया गया नुकसान संभवतः पूरी तरह से पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकेगा।

32. अतः इस मुद्दे पर कानून इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अंतरिम निषेधाज्ञा न्यायालय द्वारा तभी प्रदान की जानी चाहिए जब मामले के सभी पक्ष और विपक्ष, संबंधित तथ्यों के संदर्भ में, पूरी तरह से विचार किए जाएँ। यह आदेश उस पक्ष के जोखिम और जिम्मेदारी पर होता है, और यदि वह पक्ष अंततः मामला हार जाता है, तो वह इसका कोई लाभ नहीं उठा सकता। यह आदेश स्थापित सिद्धांतों के आधार पर पारित किया जा सकता है, जिसमें तीन मूलभूत आधारों का विचार किया जाता है, अर्थात् प्राथमिक दृष्टि से मामला (prima facie case), सुविधा का संतुलन (balance of convenience) और अपरिहार्य हानि (irreparable loss)।

अदालत के पास जाने में देरी निश्चित रूप से अंतरिम राहत अस्वीकार करने का एक उचित आधार हो सकती है, लेकिन अपवादस्वरूप परिस्थितियों में, जहाँ किसी पक्ष का मामला संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों पर आधारित हो और यह आशंका हो कि मुकदमे की संपत्ति ऐसी स्थिति में विकसित हो सकती है कि वह अपरिवर्तनीय (irretrievable) हो जाए, अदालत विलंबित अवस्था में भी राहत प्रदान कर सकती है, बशर्ते कि अदालत यह सुनिश्चित हो जाए कि आवेदनकर्ता मामले को आगे बढ़ाने में लापरवाह नहीं रहा है।

26. यह मुद्दा इस न्यायालय द्वारा सौरभ गुप्ता बनाम श्रीमती अर्चना गुप्ता और अन्य: 2024(3) एडीजे 241 (एलबी) के मामले में भी विचार किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नलिखित रूप में उद्धृत किए जा रहे हैं:

4. मामले का सार यह है कि अपीलकर्ता ने सिविल मुकदमा संख्या 23/2023 दायर किया, जिसमें प्रतिवादियों को प्रतिवादी बनाया गया, और यह घोषणा मांगी कि वह विवादित संपत्ति का 1/4 भाग का सह-शेयरर है। इसका आधार यह था कि यह संपत्ति संयुक्त परिवार की है और अपीलकर्ता के पिता ने इसे खरीदा था, जो प्रतिवादी संख्या 1 के पति भी थे, और संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 के नाम पर खरीदी गई थी। उक्त मुकदमे में विशेष रूप से यह दावा किया गया कि प्रतिवादी संख्या 1 गृहिणी थीं और उनका कोई स्वतंत्र आय स्रोत नहीं था। 20.10.1986 की एक बिक्री विलेख के माध्यम से, अपीलकर्ता के पिता ने राम रतन गुप्ता से विवादित संपत्ति खरीदी। plaint में यह भी उल्लेख किया गया कि अपीलकर्ता ने उस प्लॉट पर निर्माण कराया और इसके बाद पूरा परिवार वहाँ व्यवसाय चला रहा है। यह परिसर R.C. Complex के नाम से भी जाना जाता है। अतः, वर्तमान मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान, धारा 39, नियम 1 और 2 सी.पी.सी. के तहत एक आवेदन दायर किया गया कि प्रतिवादी को उक्त संपत्ति हस्तांतरित करने से रोका जाए। लिखित प्रतिवाद में, प्रतिवादियों ने यह कहा कि उक्त संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को उपहार में दी गई है। उपरोक्त अंतरिम निषेधाज्ञा का आवेदन निचली अदालत द्वारा 25.07.2023 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया।

13. मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान अंतरिम निषेधाज्ञा (interim injunction) देने का कानून सुव्यवस्थित है और इसे सर्वोच्च न्यायालय ने कई मामलों में दोहराया है। Neon Laboratories Ltd. बनाम Medical Technology Ltd. और अन्य, 2016 (2) SCC 672 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

" हालाँकि, अब यह हमारे न्यायशास्त्र में दृढ़ता से स्थापित है कि अपीलीय न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार (discretion) के प्रयोग में हल्के, मनमाने या तुच्छ हस्तक्षेप नहीं करेगा, जब तक कि उस विवेकाधिकार का प्रयोग स्पष्ट रूप से तुच्छ (palpably frivolous) न हो। विचलन (perversity) कानून की समझ या दलीलों (pleadings) या साक्ष्यों (evidence) की सराहना से संबंधित हो सकता है।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जेनिथ मेटाप्लास्ट प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2009 (10) SCC 388** के मामले में, निषेधाज्ञा (injunction) देने के संबंध में कानून स्पष्ट करते हुए कहा कि

अंतरिम आदेश (interim order) केवल एक अस्थायी प्रबंध है, जिसका उद्देश्य वर्तमान स्थिति (status quo) को बनाए रखना है, जब तक कि मामला अंतिम रूप से निपट न जाए, ताकि अंतिम सुनवाई से पहले मामला निष्फल (infructuous) या पूर्वनिर्यात (fait accompli) न हो जाए। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि अस्थायी निषेधाज्ञा (टैम्पररी इंजंक्शन) देने का निर्णय तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित होता है - अर्थात् प्राइमफेशियल केस (प्रारंभिक दृष्टि से मामला), सुविधा का संतुलन (balance of convenience), और अपरिवर्तनीय नुकसान (irreparable injury)। इन तीनों कारकों का विश्लेषण विशेष मामले की परिस्थितियों और तथ्यों के संदर्भ में सावधानीपूर्वक किया जाना आवश्यक है। संदर्भ के लिए, उपरोक्त निर्णयों के पैराग्राफ 30, 31 और 37 नीचे उद्धृत किए गए हैं।

"30. अस्थायी आदेश प्रारंभिक दृष्टि से प्राप्त तथ्यों के आधार पर पारित किया जाता है, जो अस्थायी और अनुमानित होते हैं।

ऐसा आदेश एक अस्थायी प्रबंध के रूप में पारित किया जाता है ताकि वर्तमान स्थिति को तब तक बनाए रखा जा सके जब तक मामला अंतिम रूप से निर्णय के लिए न पहुँचे, और यह सुनिश्चित किया जा सके कि अंतिम सुनवाई से पहले मामला व्यर्थ या पहले से तय (fait accompli) न हो जाए। अंतरिम निषेधाज्ञा का उद्देश्य वादी को उसके अधिकारों के उल्लंघन से होने वाली हानि से बचाना है, जिसके लिए उसे मामले में हर्जाने के रूप में पर्याप्त मुआवजा नहीं मिल सकता यदि मुकदमे में असमंजस उसके पक्ष में निपटाया जाए (संदर्भ: आनंद प्रसाद अग्रवाल बनाम तारकेश्वर प्रसाद, 2001 5 SCC 568; और राज्य असम बनाम बरक उपत्यका डी.यू. कर्मचारी संस्था, 2009 5 SCC 694)।

31. अंतरिम राहत देने का निर्णय उसकी प्रकृति और सीमा के संदर्भ में प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है, क्योंकि इसके लिए कोई निश्चित नियम या फॉर्मूला नहीं बनाया जा सकता। ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जिसमें प्रतिवादी वादित संपत्ति का उपयोग इस प्रकार करे कि परिस्थिति अपरिवर्तनीय बन जाए। ऐसी स्थिति में अंतरिम राहत प्रदान की जानी चाहिए (देखें एम. गुरुदास बनाम रसारंजन [(2006) 8 SCC 367 : AIR 2006 SC 3275]) और श्रद्धेवी बनाम मुरलीधर [(2007) 14 SCC 721])। अस्थायी निषेधाज्ञा देने के लिए तीन मूल सिद्धांतों का पालन किया जाता है: प्रारंभिक दृष्टि से मामला, सुविधा का संतुलन और अपरिवर्तनीय हानि, जिन्हें संबंधित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उचित दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है। लेकिन किसी भी न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि अस्थायी निषेधाज्ञा प्रदान करने के चरण में मिनी-ट्रायल आयोजित किया जाए [S.M. Dyechem लिमिटेड बनाम Cadbury (India) लिमिटेड [(2000) 5 SCC 573 : AIR 2000 SC 2114] और आनंद प्रसाद अग्रवाल [(2001) 5 SCC 568], SCC पृ. 570, पैरा 6]।

37. अतः इस विषय में कानून यह स्पष्ट करता है कि अस्थायी निषेधाज्ञा तभी प्रदान की जानी चाहिए जब न्यायालय संबंधित मामले के सभी पक्ष और विपक्ष, जोखिम और पक्षकार की जिम्मेदारी को ध्यान में रखते हुए विचार करे। यदि पक्षकार मामला हारता है, तो वह इसका कोई लाभ नहीं उठा सकता। यह आदेश स्थापित

सिद्धांतों के आधार पर पारित किया जा सकता है, जिसमें तीन मुख्य आधारों पर विचार किया जाता है: प्रारंभिक दृष्टि से मामला, सुविधा का संतुलन और अपरिवर्तनीय हानि।

15. इस सब के बावजूद, वर्तमान मामले में अपीलकर्ता केवल **विवादित संपत्ति में 1/4 हिस्सा घोषित किए जाने** की मांग कर रहा है। उसका आधार यह है कि यह संपत्ति **संयुक्त हिन्दू परिवार** की है, और अपीलकर्ता के पिता के जीवनकाल में यह संपत्ति **प्रतिवादी संख्या-1** के नाम खरीदी गई थी, जो गृहिणी थीं। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अंतर्गत यह न्यायालय इस तथ्य के अस्तित्व का अनुमान कर सकता है कि—यदि कोई हिन्दू पति अपनी पत्नी के नाम, जो गृहिणी है और जिसकी कोई स्वतंत्र आय नहीं है, संपत्ति क्रय करता है, तो वह संपत्ति **परिवार की संपत्ति** ही मानी जाएगी। कारण यह है कि सामान्य एवं स्वाभाविक घटनाक्रम में, कोई हिन्दू पति अपनी ऐसी पत्नी—जो गृहिणी हो और जिसका कोई आय स्रोत न हो—के नाम संपत्ति **परिवार के हित और लाभ के लिए** ही खरीदता है।

अतः ऐसे मामले में *प्रथमदृष्टया* यह संपत्ति संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति प्रतीत होती है और इसे किसी तृतीय पक्ष को हस्तांतरित किए जाने से संरक्षण देना आवश्यक है, परिणामस्वरूप यह न्यायालय पाता है कि अधीनस्थ न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 25.04.2023 पारित करते समय, जबकि *प्रथमदृष्टया* मामला उपलब्ध था, समुचित रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया, और ऐसी स्थिति में संपत्ति के आगे हस्तांतरण या उसके स्वरूप में परिवर्तन के विरुद्ध संरक्षण आवश्यक था, क्योंकि यदि संपत्ति को संरक्षण नहीं दिया गया तो इसके हस्तांतरित होने या उसके स्वरूप में परिवर्तन की संभावना है, और ऐसी स्थिति में, भले ही अपीलकर्ता का वाद अंततः डिक्री हो जाए, उसे **अपरिवर्तनीय क्षति एवं हानि** उठानी पड़ेगी।

27. एक बार पुनः **यही वही मुद्दा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एस.के. गोलाम लालचंद बनाम नंदू शॉ तथा अन्य, AIR 2024 SC 4193** के मामले में उठा, और उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ को यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

24. विवादित संपत्ति, जो **अविभाजित** है, सह-मालिकों के पास छोड़ दी जाती है ताकि वे **कानून के अनुसार** अपनी हिस्सेदारी निर्धारित और सीमांकित करवा सकें, उसके बाद ही किसी हस्तांतरण की प्रक्रिया की जा सके।

28. यह मुद्दा पुनः माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ध्यान में आया **रामाकांत अंबालाल चोकसी बनाम हरीश अंबालाल चोकसी एवं अन्य, MANU/SC/1270/2024** के मामले में, और न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:

45. अक्सर, इस प्रकार के मुकदमों में यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि प्रतिवादी को **विवादित संपत्ति का हस्तांतरण करने से रोकने वाला निषेधाज्ञा (injunction)** देना पूरी तरह से अनावश्यक था, क्योंकि प्रतिवादी द्वारा मुकदमे के बाद किया गया कोई भी हस्तांतरण **मुकदमे के परिणाम को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सकता**, यह **T.P. Act की धारा 52** के प्रावधानों के कारण है, जिसके अंतर्गत सभी ऐसे हस्तांतरण **मुकदमे**

के निर्णय के अधीन ही होंगे। यह सही है कि टी.पी. अधिनियम की धारा 52 में वर्णित लिस पेंडेंस सिद्धांत सभी पेंडेंटे लाइटे हस्तांतरणों का ध्यान रखता है; लेकिन यह हमेशा वादी के हितों की पूरी सुरक्षा करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। हम एक उपयुक्त उदाहरण दे सकते हैं, जो **विक्रय अनुबंध पर आधारित अनुबंध की विशेष पूर्ति** के लिए दायर मुकदमे का है। ऐसे मुकदमे में जिसमें वादी **अनुबंध की विशेष पूर्ति** की प्रार्थना करता है, यदि प्रतिवादी को संपत्ति को किसी तृतीय पक्ष को बेचने से रोकना न जाए और तृतीय पक्ष ने **अच्छी नीयत से मूल्य के लिए**, चल रहे मुकदमे की जानकारी के बिना संपत्ति खरीदी और उसमें सुधार या निर्माण पर भारी राशि खर्च की, तो न्यायसंगत आधार उसके पक्ष में हस्तक्षेप कर सकता है ताकि न्यायालय अपनी विवेकाधिकारिता का प्रयोग करते हुए वादी को अनुबंध की विशेष पूर्ति का न्यायसंगत राहत देने से इंकार करे और केवल वादी के पक्ष में हर्जाना देने का आदेश दे। यह ध्यान देने योग्य है कि संहिता के आदेश 39 के नियम 1 में स्पष्ट रूप से **मध्यवर्ती निषेधाज्ञा** प्रदान की गई है, जो विवादित संपत्ति के **हस्तांतरण या बिक्री** को रोकती है, और यदि टी.पी. अधिनियम की धारा 52 में लागू लिस पेंडेंस सिद्धांत को पेंडेंटे लाइटे हस्तांतरणों के खिलाफ पूरी सुरक्षा मान लिया जाता, तो विधानमंडल ने नियम 1 में विवादित संपत्ति के हस्तांतरण को रोकने के लिए मध्यवर्ती निषेधाज्ञा प्रदान करने का प्रावधान नहीं किया होता। हमारी दृष्टि में, आदेश 39 का नियम 1 स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि, टी.पी. अधिनियम की धारा 52 में लिस पेंडेंस के सिद्धांत के बावजूद, उचित और उपयुक्त मामले में **पेंडेंटे लाइटे हस्तांतरणों को रोकने के लिए निषेधाज्ञा** प्रदान करने का अवसर हो सकता है। (देखें: स्म. मुक्तकेसी डॉन एवं अन्य बनाम हरीपद मजूमदार एवं अन्य, AIR 1988 Cal 25)।

29. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि **मध्यवर्ती निषेधाज्ञा** प्रदान करने के लिए तीन कारकों पर विचार करना आवश्यक है, अर्थात् प्रथमदृष्टया मामला, सुविधा का संतुलन और अपरिवर्तनीय हानि। जहाँ तक वर्तमान मामला है, निर्विवाद रूप से यह **विभाजन के मुकदमे** का मामला है और वादी तथा प्रतिवादी दोनों का विवादित संपत्ति पर समान अधिकार है, जब तक कि यह विभाजन मुकदमे के परिणामस्वरूप विभाजित न हो जाए। अतः संपत्ति की सुरक्षा के लिए, निर्विवाद रूप से **प्रथमदृष्टया मामला और सुविधा का संतुलन** वादी के पक्ष में तो है ही, साथ ही प्रतिवादियों के पक्ष में भी है। यद्यपि टी.पी. अधिनियम की धारा 52 का संरक्षण है, लेकिन यदि **मध्यवर्ती निषेधाज्ञा** प्रदान नहीं की जाती है, तो इससे **मुकदमों की संख्या में वृद्धि** होने की संभावना पैदा हो जाएगी। अतः इस चरण में, यदि संपत्ति को **विभाजन मुकदमे के निपटारे तक सुरक्षित रखा जाता है**, तो यह **वृहत्तर न्याय के हित में होगा**।

30. जहाँ तक **अपरिवर्तनीय हानि** का प्रश्न है, मुकदमे के दौरान संपत्ति का हस्तांतरण सीधे तौर पर अपरिवर्तनीय हानि नहीं माना जा सकता, लेकिन निश्चित रूप से इससे **अनावश्यक मुकदमों की संख्या बढ़ेगी**, जिससे वर्तमान **विभाजन मुकदमे में दी गई डिक्री के निष्पादन** में अनेक जटिलताएँ उत्पन्न होंगी। इसके अलावा, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि बाद में संपत्ति खरीदने वाला व्यक्ति **विवादित संपत्ति पर नया निर्माण या परिवर्तन** कर सकता है, और इससे संपत्ति का स्वभाव पूरी तरह बदल सकता है, जिससे **अपरिवर्तनीय हानि** उत्पन्न होगी। अतः **विभाजन मुकदमे के निपटारे तक मध्यवर्ती सुरक्षा** आवश्यक है।

31. पक्षकारों के आचरण से स्पष्ट है कि एक ओर वादी ने दो विक्रय समझौते किए हैं, और दूसरी ओर प्रतिवादियों ने आठ विक्रय पत्र बनवाए हैं। अतः यदि मध्यवर्ती निषेधाज्ञा प्रदान नहीं की जाती, तो विभाजन मुकदमा दायर करने का पूरा उद्देश्य विफल हो जाएगा, और अंतिम डिक्री के होने के बाद भी उसे निष्पादित कराना अत्यंत कठिन हो जाएगा।

32. सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त कई निर्णयों में यही दृष्टिकोण अपनाया है कि ऐसे तथ्यों में संपत्ति की सुरक्षा के लिए न्यायालय द्वारा मध्यवर्ती सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है।

33. जहाँ तक आक्षेपित आदेश का प्रश्न है, यह मूल रूप से केवल दो आधारों पर पारित किया गया है, पहला तथ्यों को छिपाना और दूसरा बाद के खरीदारों को पक्षकार न बनाना, जो कि ऊपर किए गए विवेचना के दृष्टिकोण से पूरी तरह असंवहनीय है।

34. अतः, प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनज़र, दिनांक 16.09.2024 का आक्षेपित निर्णय एवं आदेश तथा मूल वाद संख्या 356 वर्ष 2023 में दिनांक 19.09.2024 को पारित डिक्री अवैध पाई जाती हैं और इन्हें निरस्त किया जाता है।”

35. दोनों पक्षकारों को निर्देशित किया जाता है कि वे संपत्ति के स्वरूप के संबंध में वर्तमान स्थिति (status quo) बनाए रखें। आगे दोनों पक्षकारों को यह भी निर्देशित किया जाता है कि वे मूल वाद संख्या 356 वर्ष 2023 के अंतिम निस्तारण तक किसी भी प्रकार का विक्रय अनुबंध, विक्रय विलेख निष्पादित न करें तथा न ही किसी तृतीय पक्ष के अधिकार का सृजन करें।

36. उपरोक्त अवलोकनों के साथ, अपील स्वीकृत/अनुमोदित की जाती है।

37. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 6 ILRA 83

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ, 11.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिज़वी

लोकहित याचिका संख्या 638 वर्ष 2025

दीबन्धु समग्र स्वस्थ एवं शिक्षा शोध संस्थान

... याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: मोतीलाल यादव, आरती रावत

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., सैयद मोहम्मद हैदर रिज़वी

लोकहित याचिका - विचारणीयता - याचिकाकर्ता की पात्रता एवं विश्वसनीयता का अनिवार्य खुलासा - नियम 1(3-A), अध्याय 22, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 - एक न्यास द्वारा उसके अध्यक्ष के माध्यम से दायर लोकहित याचिका, जिसमें नोट-2025 की भौतिकी प्रश्न-पत्र में कथित अनियमितताओं को चुनौती दी गई - याचिका में पात्रता, अनुभव एवं विश्वसनीयता से संबंधित विवरण का स्पष्ट और विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया - सामाजिक रूप से हाशिए पर रहने वाले किसी वर्ग के हित में याचिका दायर करने का कोई प्रमाण नहीं - न्यास के अध्यक्ष को कार्यवाही प्रारंभ करने की अनुमति देने वाला अधिकृत प्राधिकरण/संकल्प नहीं है - याचिका को विचारणीय नहीं माना गया। (पैरा 23, 28 से 32)

निर्णय: याचिकाकर्ता से उसकी पात्रता और योग्यताओं का खुलासा कराना आवश्यक है, ताकि उस व्यक्ति की पूर्ण पृष्ठभूमि न्यायालय के समक्ष प्रकट हो सके, जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो रहा है। यह जानकारी याचिकाकर्ता की विश्वसनीयता, न्यायसंगत हित एवं प्रामाणिकता स्थापित करने में सहायक होती है। पात्रता और योग्यताओं का विवरण देने से यह भी स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता के पास मामले की गंभीरता और महत्व को समझने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता, ज्ञान और अनुभव है। यह विवरण अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं होना चाहिए। 'पात्रता और योग्यताएँ' शब्द उस व्यक्ति के गुणों और अनुभव को दर्शाता है, जो उसे किसी विशेष कार्य को करने के लिए उपयुक्त बनाते हैं। (पैरा 23)

अतः, इस न्यायालय को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता ने संबंधित नियमों के अनुसार अपनी पात्रता और योग्यताओं का खुलासा नहीं किया है। इसके अलावा, अभिलेखों में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि याचिकाकर्ता ने यह याचिका समाज के किसी हाशिए पर रहने वाले वर्ग के सदस्य, किसी पीड़ित व्यक्ति या किसी विकलांग व्यक्ति, जो न्यायालय तक नहीं पहुँच सकता, के हित में दायर की हो, या कि प्रकरण का संबंध ऐसे किसी मौलिक मानवाधिकार के उल्लंघन या हनन से हो, जो समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्ग के लिए महत्वपूर्ण हो और जिससे याचिकाकर्ता उनके हित में कार्य करने में सक्षम हो। (पैरा 28)

बलवंत सिंह चौफाल (सुप्रा) के प्रकरण में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवलोकन किया है कि लोकहित याचिका के नाम पर न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचने के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की योग्यताओं और पात्रता का उचित खुलासा करने पर लगातार जोर दिया है। इसके अतिरिक्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के तहत, 'सटीक और विशिष्ट रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए' शब्दों का प्रावधान स्वयं यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता द्वारा योग्यताओं और पात्रता का खुलासा करना कितना महत्वपूर्ण और आवश्यक है। न्यायालय लोकहित याचिका के रूप में किसी याचिका को स्वीकार करने से पहले इस आवश्यकता की उपेक्षा या अनदेखी नहीं कर सकता। (पैरा 30)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून के अनुसार, जैसा कि उपरोक्त चर्चा में बताया गया है, तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् इस न्यायालय का मानना है कि चूंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 के अध्याय XXII, नियम 1, उप-नियम (3-A) के तहत आवश्यक पात्रता और योग्यताओं का खुलासा नहीं किया गया है, और यह याचिका समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्ग, गरीब, वंचित, निरक्षर या ऐसे विकलांग व्यक्तियों की ओर से प्रस्तुत नहीं की गई है, जो स्वयं न्यायालय में जाकर अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते या जिन्हें हुए कानूनी नुकसान या क्षति की भरपाई के लिए न्यायालय तक पहुँचने में कठिनाई है। (पैरा 31)

इसके अतिरिक्त, अभिलेखों में ऐसा कोई दस्तावेज नहीं है जिससे यह पता चले कि जो व्यक्ति स्वयं को न्यास का अध्यक्ष बता रहा है, उसे न्यास की ओर से वर्तमान रिट याचिका दायर करने का अधिकार प्राप्त है। इस विषय में कानून स्पष्ट है कि यदि किसी संकल्प या प्राधिकरण का प्रमाण न हो तो याचिका स्वीकार्य नहीं है। (पैरा 32)

अपील खारिज की जाती है। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. उत्तरांचल राज्य बनाम बलवंत सिंह चौफाल, (2010) 3 एससीसी 402; (2010) एआईआर एससीडब्ल्यू 1029
2. पंकज श्रीवास्तव बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, (2014) 3 यूपीएलबीईसी 1832
3. अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, एआईआर 2004 एससी 280

4. बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ एवं अन्य, 1984 (3) एससीसी 161

(माननीय न्यायमूर्ति न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

और

माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिज़वी द्वारा)

1. याचिकाकर्ता के पक्ष में श्री मोतीलाल यादव और सुश्री आरती रावत, अधिवक्ताओं, प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में श्री इंद्रजीत शुक्ला, अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 1/भारत संघ के पक्ष में श्री एस.बी. पांडे, वरिष्ठ अधिवक्ता एवं भारत के उप-सोलिसिटर जनरल, श्री वरुण पांडे की सहायता से, और प्रतिवादी संख्या 4 के पक्ष में श्री सैयद मोहम्मद हैदर रिज़वी, अधिवक्ता, की दलीलों को सुना गया।

2. प्रतिवादी संख्या 2/राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी को, प्रस्तावित आदेश के दृष्टिगत, नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं मानी गई है।

3. वर्तमान याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने परमादेश प्रकार के कई राहतों की मांग की है, जो निम्नलिखित हैं :-

i. परमादेश प्रकार के आदेश के रूप में यह निर्देश जारी किया जाए कि भौतिकी प्रश्न-पत्र को स्थगित/रद्द किया जाए और साथ ही 04/05/2025 को आयोजित नीट-2025 का 14/06/2025 का आगामी परिणाम, जो इस याचिका में परिशिष्ट संख्या 8 और 9 के रूप में संलग्न है, उसे भी स्थगित किया जाए।

ii. परमादेश प्रकार के आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 अर्थात् राष्ट्रीय परीक्षण एजेंसी (एनटीए) को निर्देशित किया जाए कि नीट-2025 के भौतिकी प्रश्न-पत्र को पुनः आयोजित किया जाए। यह छात्रों के व्यापक हित में किया जाए।

iii. परमादेश प्रकार के आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को निर्देशित किया जाए कि शिक्षा नीति 1986 के प्रावधानों के अनुसार नीट, जेईई, आईआईटी आदि सभी परीक्षाओं के परिणाम और उनसे संबंधित उत्तर पत्रक सार्वजनिक रूप से प्रकाशित किए जाएँ।

iv. परमादेश प्रकार के आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देशित किया जाए कि 04/05/2025 को आयोजित नीट-2025 के भौतिकी प्रश्न-पत्र में हुई हेरफेर की विस्तृत जाँच कराए और इस घोटाले में शामिल दोषियों के खिलाफ उचित कानूनी कार्रवाई करे।

v. परमादेश के रूप में आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 को निर्देशित किया जाए कि नीट-2024 के सभी राज्यों के परिणामों में विभिन्न राज्यों के छात्रों के प्राप्त अंकों में अत्यधिक अंतर के संबंध में विस्तृत जाँच कराए और इसके लिए उचित आदेश पारित करे।

vi. परमादेश के रूप में आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसमें प्रतिवादीगण/सक्षम उत्तरदाताओं को निर्देशित किया जाए कि राज्यों के सीटों में 15% ऑल इंडिया कोटा को समाप्त किया जाए, ताकि नीट परिणामों

में असामान्य भिन्नताओं से राज्य सुरक्षित रहें, जो कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के मांडेट के खिलाफ हैं।

4. सटीक रूप से, याचिकाकर्ता का मामला यह है कि याचिकाकर्ता एक पंजीकृत न्यास है, जिसका नाम दीबन्धु समग्र स्वास्थ्य एवं शिक्षा शोध संस्थान है और इसका पंजीकृत कार्यालय 17/675, इंदिरा नगर, लखनऊ में स्थित है।

5. यह बताया गया है कि न्यास का उद्देश्य विज्ञान, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देना है। याचिकाकर्ता न्यास ने याचिका के साथ न्यास पत्र की प्रति परिशिष्ट संख्या 1 के रूप में संलग्न की है, और उक्त न्यास पत्र के अनुच्छेद 3 में याचिकाकर्ता संस्था की स्थापना के उद्देश्य और लक्ष्य निम्नलिखित रूप से बताए गए हैं :-

अनुच्छेद 3

इस संस्था की स्थापना जिन उद्देश्यों और लक्ष्यों के लिए की गई है, वे निम्नलिखित हैं

3.1 भारत में विद्यालयों, महाविद्यालयों, अस्पतालों, चिकित्सा संस्थानों, प्रौद्योगिकी संस्थानों, नर्सिंग संस्थानों, डिस्पेंसरी, प्रसूति गृह, बाल कल्याण केंद्र, पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष, प्रयोगशालाएँ, अनुसंधान केंद्र और इसी प्रकार के अन्य संस्थानों की स्थापना, संचालन, समर्थन और वित्तीय सहायता या अन्य किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्रदान करना।

3.2 राष्ट्र तथा अंतरराष्ट्रीय एकीकरण और सहयोग की आवश्यकता के प्रति जन-जागरूकता उत्पन्न करना तथा प्रेरणा के क्षेत्र में अनुभवी, ज्ञानवान और योग्य स्वयंरोजगार व्यक्तियों के माध्यम से सामाजिक कार्य को बढ़ावा देना।

3.3 वायु, जल, ध्वनि, मिट्टी, परमाणु विकिरण और खाद्य पदार्थों की जाँच हेतु एक अनुसंधान केंद्र स्थापित करना, ताकि कार्यकर्ताओं को मानव कल्याण के लिए आध्यात्मिक प्रवचनों के माध्यम से खुली एवं अनौपचारिक शिक्षा को बढ़ावा देने वाले स्वैच्छिक और गैर-सरकारी संगठनों के निर्माण एवं स्थापना में सहायता मिल सके।

3.4. स्वास्थ्य, पर्यावरण, शांति, न्याय आदि से संबंधित समस्याओं के समाधान के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुझाव, विकल्प और उपयुक्त उपाय प्रस्तुत करना।

3.5. विश्व भर में विकास संबंधी परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु अन्य सरकारी एजेंसियों और संस्थाओं के साथ सहयोग करना, समन्वय स्थापित करना तथा उनसे संबद्ध होना।”

3.6. छात्रों को सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए तैयार करने, उन्हें प्रभावी रूप से संवाद करने में सक्षम बनाने, तथा वैश्विक जागरूकता और संवेदनशीलता विकसित करने के उद्देश्य से ऐसी शिक्षा प्रदान करना, जिससे विश्व शांति और एकता की बेहतर वैश्विक समझ विकसित हो सके।

3.7. भारत की राष्ट्रीय अखंडता और एकता के उद्देश्य को बढ़ावा देने और उसके प्रति अनुसंधान करने, तथा देश में विभाजनकारी शक्तियों का मुकाबला करने के लिए कार्य करना।

6. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का आग्रह यह है कि केंद्र सरकार ने देश के सभी चिकित्सा महाविद्यालयों में एमबीबीएस पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु अभ्यर्थियों के लिए एक समान परीक्षा आयोजित करने का निर्णय लिया, जो राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा के माध्यम से कराई जानी है, और इससे पूर्व संचालित सर्व-भारतीय पूर्व-चिकित्सा परीक्षा के स्थान पर यह नई व्यवस्था लागू की गई। केंद्र सरकार ने यह निर्णय भी लिया कि राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा का आयोजन राष्ट्रीय परीक्षण अभिकरण के अधीन किया जाएगा, जो कि समाज पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत है। राष्ट्रीय परीक्षण अभिकरण की स्थापना शिक्षा मंत्रालय द्वारा 10.11.2017 को लिए गए मंत्रिमण्डलीय निर्णय के अनुसार की गई थी।

7. यह भी याचिकाकर्ता की ओर से कहा गया है कि वर्ष 2017 से अब तक उपर्युक्त परीक्षा संबंधित प्राधिकरणों द्वारा ही कराई जाती रही है, और एनईईटी के प्रश्नपत्र तैयार करने की प्रक्रिया में किसी बाहरी व्यक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं रहा।

8. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह मुख्य निवेदन, जिससे वर्तमान याचिका उत्पन्न हुई है, यह है कि उपर्युक्त परीक्षा के प्रश्नपत्र में कुछ प्रश्न पाठ्यक्रम के बाहर से शामिल कर दिए गए हैं। उनका कहना है कि प्रश्न कभी भी पाठ्यक्रम से बाहर नहीं होने चाहिए और प्रश्नपत्र तैयार करने वाले इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकते।

9. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि उपर्युक्त परीक्षा में पूछे गए प्रश्न कुछ कोचिंग संस्थानों द्वारा पढ़ाए गए थे, और केवल उन कोचिंग संस्थानों के अभ्यर्थियों को ही इसका लाभ मिलेगा।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने रिट याचिका में कुछ प्रश्नों का उल्लेख किया है और यह आरोप लगाया है कि उक्त प्रश्न त्रुटिपूर्ण रूप से तैयार किए गए थे और 'एलेन' कोचिंग संस्थान द्वारा हल किए गए समस्याओं को 21.07.2023 को इंटरनेट पर पोस्ट किया गया था, तथा संयोगवश 'एलेन' और 'आकाश' कोचिंग संस्थानों ने अपने प्रमुख हल में बिल्कुल वही त्रुटियाँ दोहराई हैं। यह बहुत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया कि एनईईटी परीक्षा 2025 के प्रश्नपत्र तैयार करने वालों ने इन प्रश्नों को इंटरनेट पर कोचिंग संस्थानों द्वारा पोस्ट किए गए सामग्रियों से बिना अपनी विवेकपूर्ण समीक्षा किए ही लिया है।

11. श्री इन्द्रजीत शुक्ला, माननीय अपर मुख्य स्थायी वकील, जो उत्तरदाता संख्या 3 के लिए प्रस्तुत हैं, ने सबसे पहले वर्तमान जनहित याचिका की स्वीकार्यता (मेनटेनेबिलिटी) के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई, जो मुख्यतः निम्नलिखित आधारों पर आधारित है:-

(i) वर्तमान जनहित याचिका एक ट्रस्ट द्वारा उसके अध्यक्ष के माध्यम से दायर की गई है, बिना किसी संकल्प या अध्यक्ष को याचिका दायर करने के लिए अधिकार प्रदान किए।

(ii) इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय XXII के नियम 1 के उप-नियम (3-A) के अंतर्गत आवश्यक योग्यता और अन्य विवरणों की व्याख्या नहीं की गई है, जिसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के राज्य

उत्तरांचल बनाम बलवंत सिंह चौफल, (2010) 3 SCC 402; (2010) AIR SCW 1029 के निर्णय के प्रकाश में संशोधित किया गया है।

12. अपर मुख्य स्थायी वकील का तर्क है कि वर्तमान रिट याचिका न तो स्वीकार्य है और न ही मान्य है, क्योंकि अलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय XXII के नियम 1 के उप-नियम (3-A) का पालन नहीं किया गया है।

13. उन्होंने आगे तर्क दिया कि वर्तमान रिट याचिका एक प्रतिनिधि याचिका है जिसमें तथ्यों को छिपाया गया है, और इस प्रकार उक्त आधारों पर इसे खारिज किया जाना चाहिए।

14. श्री सैयद मोहम्मद हैदर रिजवी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के महानिदेशक, चिकित्सा शिक्षा एवं प्रशिक्षण (उत्तरदाता संख्या 4) के अधिवक्ता ने भी वर्तमान जनहित याचिका का विरोध किया और तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में उद्धृत प्रश्न को चुनौती देने का आधार प्रकट नहीं किया है, तथा यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा कि याचिकाकर्ता ने याचिका दायर करने से पूर्व याचिका में शामिल विषय पर कभी कोई शोध कार्य किया है।

15. उन्होंने आगे याचिकाकर्ता के पास वर्तमान याचिका में शामिल विवाद को जनहित याचिका के रूप में उठाने की योग्यता (स्थानिक अधिकार) नहीं होने की आपत्ति भी उठाई।

16. पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलों को सुना गया और अभिलेखों की समीक्षा की गई।

17. मामले की मूल बातें विचारने से पहले, उत्तरदाताओं के अधिवक्ताओं द्वारा उठाई गई रिट याचिका की स्वीकार्यता (मेनटेनेबिलिटी) के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति का निपटारा पहले किया जाना चाहिए।

18. वर्तमान याचिका की स्वीकार्यता के प्रश्न पर, विशेषकर इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, अध्याय XXII के नियम 1 के उप-नियम (3-A) के अंतर्गत आवश्यक योग्यता का प्रकट न करने के कारण, यह ध्यान देने योग्य है कि उक्त नियम उच्च न्यायालय की नियम बनाने की अर्ध-वैधानिक शक्ति का उपयोग करते हुए बनाया गया है, जिसे 01.05.2010 से नियम 1 में संशोधन के रूप में शामिल किया गया। इस नियम की वैधता की परीक्षा और पुष्टि इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने पंकज श्रीवास्तव बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय, (2014) 3 यूपीएलबीईसी 1832 के मामले में की है।

19. सुविधा के लिए, उक्त नियम निम्नानुसार प्रस्तुत किया जाता है:

"(3-A) इस अध्याय के अन्य नियमों की आवश्यकताओं को पूरा करने के अतिरिक्त, जनहित याचिका दायर करने वाला याचिकाकर्ता, अपने शपथ पत्र में, जिसमें वह अपनी योग्यता प्रस्तुत करता है, सटीक और विशेष रूप से यह स्पष्ट करे कि वह जिस सार्वजनिक कारण को प्रस्तुत करना चाहता है, उस मामले में उसका

कोई व्यक्तिगत या निजी स्वार्थ नहीं है; उठाए गए प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा कोई अधिकारिक निर्णय नहीं है; और मुकदमे का परिणाम न तो स्वयं या उसके किसी संबंधित को अनुचित लाभ देगा, न ही किसी व्यक्ति, व्यक्तियों के समूह या राज्य को अनुचित हानि पहुंचेगी।

20. उपरोक्त नियम के अनुसार, सार्वजनिक कारण प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति, अपनी योग्यता का विवरण सटीक और स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करता हुआ शपथ पत्र दाखिल करे और साथ ही वह सार्वजनिक कारण जिसे वह प्रस्तुत करना चाहता है, उसका भी विवरण स्पष्ट रूप से दे।

21. शब्द 'योग्यता' का एक विशेष अर्थ और व्यंजना है। इसे ब्लैक लॉ डिक्शनरी, 8वीं संस्करण में परिभाषित किया गया है जैसे: "1. कोई दस्तावेज़ या अन्य प्रमाण जो किसी की अधिकारिता या विशेषज्ञता को साबित करता है। 2. एक प्रशंसापत्र कि किसी व्यक्ति को विश्वास करने का अधिकार या आधिकारिक शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार है। 3. किसी राजदूत या अन्य विदेशी प्रतिनिधि को दिया गया विश्वास पत्र। 4. संसदीय कानून। किसी प्रतिनिधि के सम्मेलन या अन्य विचारणीय सभा में बैठने और मतदान करने के अधिकार का प्रमाण।"

22. इसके अतिरिक्त, ऑक्सफोर्ड इंग्लिश-हिंदी डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण में योग्यता को इस प्रकार समझाया गया है कि यह वह गुण है जो किसी व्यक्ति को किसी कार्य के लिए पूर्ण बनाता है, या ऐसा दस्तावेज़ जो प्रमाणित करता है कि उसके पास आवश्यक प्रशिक्षण और शिक्षा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वह विशेष कार्य करने के लिए योग्य व्यक्ति है।

23. याचिकाकर्ता से योग्यता का प्रकटीकरण आवश्यक है ताकि न्यायालय के समक्ष आने वाले व्यक्ति की पूर्ण पृष्ठभूमि को अभिलेखों में लाया जा सके। यह जानकारी याचिकाकर्ता की विश्वसनीयता, स्थानिक अधिकार और उसकी वास्तविकता स्थापित करने में सहायक होती है। योग्यता प्रस्तुत करने से यह भी प्रमाणित होता है कि याचिकाकर्ता के पास आवश्यक विशेषज्ञता, ज्ञान और मामले की गंभीरता को समझने की क्षमता है। यह जानकारी अस्पष्ट और अनिश्चित नहीं होनी चाहिए। शब्द 'योग्यता' का अर्थ उस व्यक्ति के गुण और अनुभव से है जो उसे किसी विशेष कार्य करने के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अशोक कुमार पांडे बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, AIR 2004 SC 280 के मामले में यह निर्देश दिया है कि जनहित याचिका को स्वीकार करते समय किन मानदंडों पर विचार किया जाना चाहिए। संबंधित पैराग्राफ 14 का अंश निम्नानुसार है:

"14. न्यायालय को यह सुनिश्चित होना चाहिए कि (क) याचिकाकर्ता की योग्यता, (ख) उसके द्वारा दी गई जानकारी की प्राथमिक रूप से शुद्धता या स्वरूप, और (ग) जानकारी अस्पष्ट और अनिश्चित न हो। दी गई जानकारी में मामले की गंभीरता और महत्व स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हो। न्यायालय को दो विरोधाभासी

हितों के बीच संतुलन स्थापित करना होता है: (i) किसी को भी दूसरों के चरित्र को कलंकित करने वाले असंगत और लापरवाह आरोप लगाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए; और (ii) सार्वजनिक हानि से बचाव करना तथा ऐसी शरारती याचिकाओं को टालना जिनके माध्यम से अन्यायपूर्ण उद्देश्य से उचित प्रशासनिक कार्यों पर हमला किया जाता है। ऐसे मामलों में, न्यायालय उदार दृष्टिकोण अपना नहीं सकता। न्यायालय को अत्यंत सतर्क रहना होगा यह देखने के लिए कि जनहित शिकायत का बहाना बनाकर, यह प्रशासन और विधायिका के लिए संविधान द्वारा आरक्षित क्षेत्र में दखल न दे?

25. इस चरण पर यह उल्लेख करना उचित है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बलवंत सिंह चौफल एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में जनहित याचिका के दुरुपयोग और इसे रोकने या नियंत्रित करने के उपायों से संबंधित मुद्दों पर विचार किया है। उक्त निर्णय का संबंधित भाग निम्नानुसार प्रस्तुत है:

"161. दुर्भाग्यवश, हाल ही में यह देखा गया है कि इतनी महत्वपूर्ण अधिकारिता, जिसे न्यायालयों द्वारा बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ विकसित, निर्मित और संवर्धित किया गया है, उसका घोर दुरुपयोग कुछ याचिकाओं को अन्यायपूर्ण उद्देश्यों के साथ दायर करके किया जा रहा है। हमारा विचार है कि ऐसा समय आ गया है जब वास्तविक और सही जनहित याचिकाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जबकि तुच्छ और शरारती जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

162. हमारे विचार में, हमें इस महत्वपूर्ण अधिकारिता की रक्षा और संरक्षण करना है ताकि देश के लोगों के व्यापक हित की रक्षा हो, लेकिन हमें न्यायालयों द्वारा दिए गए मौद्रिक और गैर-मौद्रिक निर्देशों के आधार पर इसके दुरुपयोग को रोकने और ठीक करने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए।

26. यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बंदुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ एवं अन्य, 1984 (3) SCC 161 के मामले में एक अविन्यवस्थापित संघ की याचिका भी स्वीकार की, जो अत्यन्त दबे-कुचले लोगों या उसके सदस्यों के अधिकारों के लिए प्रस्तुत थी, यह देखते हुए कि "छोटे भारतीयों" के अधिकार किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा भी स्थापित या प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिसे उस मामले में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न हो। उक्त जनहित याचिका में, जहां कुछ मजदूर बंधुआ और अमानवीय परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहे थे, यह मामला न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने यह नोट किया कि सरकार से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह प्रारंभिक आपत्ति उठाए कि याचिकाकर्ता या जिन मजदूरों की ओर से यह याचिका दायर की गई है, उनके मौलिक अधिकारों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है।

27. उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह देखा जा सकता है कि "पीड़ित व्यक्ति" की अवधारणा को जनहित याचिका के संदर्भ में कम महत्व दिया गया, जिसे मुख्य रूप से तीन चरणों में विभाजित किया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बलवंत सिंह चौफल (सुप्रा) के मामले में, उक्त रिपोर्ट के पैराग्राफ-43 में, जनहित याचिका के तीन चरणों का उल्लेख किया है, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"43. इस निर्णय में, हम जनहित याचिका की उत्पत्ति और विकास पर विचार करना चाहते हैं। हम इसे उपयुक्त समझते हैं कि जनहित याचिकाओं को व्यापक रूप से तीन चरणों में विभाजित किया जाए:-

चरण I - यह उन मामलों से संबंधित है जिनमें इस न्यायालय ने मुख्यतः अनुच्छेद 21 के तहत हाशिए पर रहने वाले समूहों और समाज के उन वर्गों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए निर्देश और आदेश दिए, जो अत्यधिक गरीबी, अशिक्षा और अज्ञानता के कारण इस न्यायालय या उच्च न्यायालयों के पास नहीं पहुँच सकते।

चरण II - यह उन मामलों से संबंधित है जो पारिस्थितिकी, पर्यावरण, वन, समुद्री जीवन, वन्यजीव, पर्वत, नदियों, ऐतिहासिक स्मारकों आदि की रक्षा और संरक्षण से जुड़े हैं।

चरण III - यह उन निर्देशों से संबंधित है जो न्यायालयों द्वारा शासन में ईमानदारी, पारदर्शिता और अखंडता बनाए रखने के लिए जारी किए गए हैं।

28. अतः इस न्यायालय को यह नोट करने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता ने संबंधित नियमों के अनुसार अपनी योग्यता का प्रकटीकरण नहीं किया है। अन्यथा भी, अभिलेखों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका किसी हाशिए पर रहने वाले समाज के सदस्य, किसी दबे-कुचले व्यक्ति या किसी विकलांग व्यक्ति, जो न्यायालय तक पहुँचने में असमर्थ है, के हित में दायर की हो, या कि विवादित मामला किसी हाशिए पर रहने वाले समाज के किसी वर्ग के मौलिक मानवाधिकारों के उल्लंघन या अस्वीकृति से संबंधित हो, जो याचिकाकर्ता को उनके हितों की पैरवी करने का अधिकार प्रदान करता।

29. उत्तरदाता संख्या 4 के अधिवक्ता द्वारा स्थानिक योग्यता (locus standi) के प्रश्न पर उठाई गई आपत्ति से निपटते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि स्थानिक योग्यता का सामान्य नियम यह है कि केवल वही व्यक्ति, जिसे कानूनी हानि होती है या जिसका कानूनी अधिकार उल्लंघन होता है, न्यायालय की रिट अधिकारिता का प्रयोग करने का अधिकार रखता है, ताकि न्याय की अव्यवस्था से बचा जा सके। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस नियम को कई मामलों में शिथिल किया है, जहां शिकायत न्यायालय के समक्ष गरीब, वंचित, अशिक्षित या विकलांग व्यक्तियों की ओर से उठाई जाती है, जो कानूनी उल्लंघन या किसी संवैधानिक या कानूनी अधिकार के हनन के कारण हुई हानि का समाधान स्वयं न्यायालय तक नहीं पहुँचा सकते। वर्तमान मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय का स्पष्ट मत है कि वर्तमान जनहित याचिका/याचिका उपरोक्त उल्लेखित अपवादों में नहीं आती।

30. बलवंत सिंह चौफल (सुप्र) के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा कि जनहित याचिका के नाम पर न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, सर्वोच्च न्यायालय ने लगातार याचिकाकर्ता की योग्यता का उचित प्रकटीकरण सुनिश्चित करने पर जोर दिया है। इसके अतिरिक्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अंतर्गत, शब्दावली 'सटीक और स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहिए' से ही यह संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपनी योग्यता का प्रकटीकरण कितना महत्वपूर्ण और आवश्यक है। इसे न्यायालयों द्वारा जनहित याचिका के रूप में याचिका स्वीकार करने से पहले अनदेखा या नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

31. उपरोक्त चर्चा में उल्लिखित माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित कानून के प्रकाश में तथ्यों पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय का यह मत है कि चूंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय XXII के नियम 1 के उप-नियम (3-A) के अंतर्गत आवश्यक योग्यता का प्रकटीकरण नहीं किया गया है, और यह याचिका हाशिए पर रहने वाले समाज के वर्ग, गरीब, वंचित, अशिक्षित या विकलांग व्यक्तियों की ओर से दायर नहीं की गई है, जो कानूनी उल्लंघन या किसी हानि के निवारण हेतु न्यायालय तक स्वतंत्र रूप से पहुँचने में असमर्थ हैं।

32. इसके अतिरिक्त, अभिलेखों में कोई दस्तावेज़ ऐसा नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि जो व्यक्ति स्वयं को ट्रस्ट का अध्यक्ष बताता है, वह वर्तमान रिट याचिका ट्रस्ट की ओर से दायर करने के लिए अधिकृत है। इस विषय में कानून स्पष्ट है कि किसी संकल्प या अधिकरण प्रमाण के अभाव में, याचिका स्वीकार्य नहीं होती।

33. उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, वर्तमान जनहित याचिका स्वीकार्य नहीं है। अतः इसे खारिज किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

34. अंत में, यह स्पष्ट करना उचित होगा कि इस न्यायालय ने उपरोक्त वर्णित कारणों के आधार पर वर्तमान जनहित याचिका को स्वीकार करने से इंकार किया है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले की सार्थकता (merits) पर कोई राय नहीं दी है।

(2025) 6 ILRA 91

मूल क्षेत्राधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.06.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया,

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत मामले संख्या 6055/2025

जाखू राम

... याचिकाकर्ता

बनाम

संतोष एवं अन्य

... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री संतोष कुमार सिंह पालीवाल

प्रतिवादी के वकील:

सिविल कानून - निषेधाज्ञा - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 227 - याचिकाकर्ता ने मूल मुकदमा दायर किया और उक्त मुकदमे में अंतरिम निषेधाज्ञा जारी की गई। उत्तरदाताओं ने मिशेलियस अपील दायर की- अपील न्यायालय ने अंतरिम निषेधाज्ञा रद्द कर दी, लेकिन निषेधाज्ञा आवेदन पर नया आदेश पारित करने का कोई निर्देश नहीं दिया। याचिका इस प्रकार निपटाई गई कि निचली न्यायालय के समक्ष, जिसके पास मूल मुकदमा लंबित था, सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद अंतरिम निषेधाज्ञा आवेदन पर पुनः विचार करने का निर्देश दिया गया (पैराग्राफ 5, 6)

स्वीकृत।(E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया, द्वारा)

1. याचिकाकर्ता एक वादकारी है और उसने मूल मुकदमा संख्या 1615/2013 जिला सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ वर्ग), आजमगढ़ के न्यायालय में दायर किया। उक्त मुकदमे में याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरिम निषेधाज्ञा दिनांक 21.08.2023 को जारी की गई। उक्त आदेश से असंतुष्ट उत्तरदाताओं ने मिशेलियस अपील संख्या 73/2023 दायर की।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि अपील न्यायालय ने निचली न्यायालय द्वारा दिनांक 09.05.2025 को जारी अंतरिम निषेधाज्ञा रद्द कर दी, लेकिन जिस न्यायालय के समक्ष मामला लंबित है,

उसे निषेधाज्ञा आवेदन पर नया आदेश पारित करने का कोई निर्देश नहीं दिया गया। अतः याचिकाकर्ता ने प्रार्थना की है कि जिस न्यायालय के समक्ष मामला लंबित है, उसे निषेधाज्ञा आवेदन पर नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाए और पक्षों को आदेश पारित होने तक स्थिति यथावत रखने का निर्देश दिया जाए।

3. यहां पारित किए जाने वाले आदेश के दृष्टिगत, उत्तरदाता को नोटिस भेजने और इस याचिका को न्यायालय में लंबित रखने से कोई उपयोगी परिणाम नहीं निकलेगा। तथापि, यदि उत्तरदाता आदेश से असंतुष्ट है, तो उसके लिए आदेश में संशोधन/परिवर्तन का अधिकार सुरक्षित रखा जाता है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता की दलीलें सुनी गईं और अभिलेखों की समीक्षा की गई।

5. मामले की तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, वर्तमान याचिका निस्तारित की जाती है और निर्देश दिया जाता है कि जिस न्यायालय के समक्ष मूल मुकदमा संख्या 1615/2013 लंबित है, वह अंतरिम निषेधाज्ञा आवेदन पर पुनः विचार करते हुए, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत होने की तिथि से दो माह के भीतर नया आदेश पारित करे, लेकिन सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद।

6. 31.07.2025 तक या जब तक स्थगन आवेदन पर निर्णय नहीं हो जाता, जो भी पहले हो, विचारण न्यायालय द्वारा 21.08.2023 को जारी अंतरिम आदेश लागू रहेगा।

अनवरित

(2025) 6 ILRA 92

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.06.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 14008 of 2024 (सिविल)

तारा चन्द्र गुप्ता

...याचिकाकर्ता

बनाम

डॉ. शक्ति बसु एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री भुवन राज, श्री शिव ओम विक्रम सिंह चौहान, श्री विष्णु गुप्ता (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री मनीष गोयल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता: श्री नितिन यशार्थ, श्री यशार्थ, श्री वी. के. उपाध्याय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

A. सिविल विधि - बंटवारे का वाद - प्रारंभिक डिक्री - सह-स्वामी की मृत्यु पर हिस्सों में संशोधन - सिविल प्रक्रिया संहिता, धारा 97 - धारा 97 सीपीसी का क्षेत्र - अंतिम डिक्री पारित होने से पहले हिस्सों में परिवर्तन करने की न्यायालय की शक्ति - अंतिम डिक्री लंबित होने की स्थिति में, यदि किसी सह-स्वामी की मृत्यु जैसी मध्यवर्ती घटनाएँ घटित हों या कानून में परिवर्तन हो जाए, तो हिस्सों में संशोधन किया जा सकता है। यद्यपि धारा 97 सीपीसी प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील का प्रावधान करती है, तथापि यह प्रावधान डिक्री में संशोधन हेतु आवेदन प्रस्तुत करने पर कोई रोक नहीं लगाता। प्रारंभिक डिक्री को चुनौती देने का उपाय धारा 97 सीपीसी के अंतर्गत **अपील दाखिल करना** है, न कि आदेश को वापस लेने (रिक्लॉ) के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत करना। (पैरा 59-61)

B. चंडी दास बसु ने पैतृक संपत्तियों के **सीमांकन सहित बंटवारे** के लिए वाद संख्या 254 of 1976 दायर किया। सह-स्वामियों के हिस्सों को निर्धारित करते हुए **एक प्रारंभिक डिक्री** 27.11.1979 को पारित की गई, जिसे प्रथम अपील में भी पुष्टि प्रदान की गई। अंतिम डिक्री के क्रियान्वयन हेतु, चंडी दास बसु द्वारा अंतिम **डिक्री प्रकरण संख्या 111 of 1980** संस्थित किया गया। दिनांक 20.06.1991 को प्रतिवादी संख्या 1, अजय कुमार बसु (चंडी दास बसु के भाई) का निधन हो गया। दिनांक 17.02.1993 को चंडी चरण बसु, जो चंडी दास बसु के भाई थे, **निःसंतान और बिना वसीयत छोड़े** निधन हो गए। दिनांक 27.03.1995 को चंडी दास बसु ने **अपना हिस्सा तथा अपने दिवंगत भाई चंडी चरण बसु का हिस्सा**, वर्तमान याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में, **पंजीकृत विक्रय अनुबंध** के माध्यम से हस्तांतरित कर दिया। उस अनुबंध में लंबित वाद तथा प्रारंभिक डिक्री के अस्तित्व

का उल्लेख किया गया था। वर्ष 1997 में चंडी दास बसु का निधन हो गया। उनके विधिक वारिसों ने अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 111/1980 में 01.07.1997 को प्रत्यावर्तन (सबस्टीट्यूशन) हेतु आवेदन तो दायर किया, परंतु उसे कभी आगे नहीं बढ़ाया (प्रेस नहीं किया)। दिनांक 23.08.1997 को उन्होंने, तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में हुए वर्ष 1995 के पूर्ववर्ती अनुबंध के बावजूद, नसीम उद्दीन एवं शफीक अहमद के पक्ष में एक और विक्रय अनुबंध निष्पादित कर दिया।

दिनांक 28.09.1998 को तारा चन्द्र गुप्ता ने, चंडी दास बसु के वारिसों तथा नसीम उद्दीन एवं शफीक अहमद के विरुद्ध, वादा पूरा करवाने (विशिष्ट निष्पादन) हेतु वाद दायर किया। उक्त वाद 20.04.2010 को डिक्री कर दिया गया। प्रथम अपील 22.10.2017 को खारिज हुई; द्वितीय अपील 28.02.2020 को खारिज हुई; और 14.09.2021 को उच्चतम न्यायालय ने एस.एल.पी. भी खारिज कर दी। तारा चन्द्र गुप्ता का विक्रय विलेख प्राप्त करने का अधिकार अंतिम रूप से स्थापित हो गया। दिनांक 25.04.2009 को अमिताभ बसु, जो मूल प्रतिवादी संख्या 1 दिवंगत अजय कुमार बसु के पुत्रों में से एक हैं, ने अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 111 of 1980 में आवेदन 65-सी प्रस्तुत किया। इस आवेदन में उन्होंने यह कहते हुए सह-स्वामियों के हिस्सों में संशोधन (वैरिएशन) की मांग की कि चंडी चरण बसु की मृत्यु निःसंतान होने के कारण, उनके हिस्से का पुनर्वितरण किया जाना आवश्यक है। दिनांक 07.05.2012 को आवेदन 65-सी स्वीकार कर लिया गया और प्रारंभिक डिक्री में संशोधन किया गया। दिनांक 04.02.2021 को तारा चन्द्र गुप्ता ने अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 111 of 1980 में पक्षकार बनाये जाने हेतु आवेदन 72-सी दायर किया, जिसे 20.07.2021 को स्वीकार कर लिया गया। इसके पश्चात 13.08.2021 को तारा चन्द्र गुप्ता ने आवेदन 86-सी दायर करते हुए 07.05.2012 के उस आदेश को वापस लेने/रद्द कराने की मांग की, जिसके द्वारा प्रारंभिक डिक्री में संशोधन किया गया था। तारा चन्द्र गुप्ता ने तर्क दिया कि दिनांक 07.05.2012 का आदेश एकपक्षीय (एक्स पार्ट) था, जो चंडी दास बसु के वारिसों सहित सभी आवश्यक पक्षों को नोटिस दिए बिना पारित किया गया। दिनांक 08.12.2021 को निष्पादन न्यायालय से चंडी दास बसु द्वारा निष्पादित विक्रय अनुबंध के संबंध में तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया। निचली अदालतों ने तारा चन्द्र गुप्ता की रिकॉल याचिका को अस्वीकृत करते हुए कहा कि 07.05.2012 का आदेश एकपक्षीय नहीं था, सभी पक्षों का उचित प्रतिनिधित्व था। तारा चन्द्र गुप्ता ने आवेदन 86-सी को खारिज करने वाले आदेशों के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका दायर की। अवधारित किया: याचिकाकर्ता ने लंबित मुकदमे की जानकारी होने के बावजूद और प्रारंभिक डिक्री में संशोधन के नौ वर्षों बाद 07.05.2012 के आदेश को एकपक्षीय (एक्स पार्ट) होने का आरोप नहीं लगा सकता। चंडी चरण बसु की मृत्यु के पश्चात उनके वारिसों द्वारा कोई औपचारिक संशोधन आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया। प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक वारिसों द्वारा प्रस्तुत आवेदन को 07.05.2012 को यथोचित रूप से स्वीकार किया गया; याचिकाकर्ता के वारिसों की उपस्थिति हेतु दो बार प्रकाशन किया गया, जिन्होंने 1997 में प्रत्यावर्तन (सबस्टीट्यूशन) आवेदन दाखिल करने के बाद मुकदमे से दूर रहे और विशिष्ट निष्पादन वाद में भी भाग नहीं लिया। अतः दिनांक 07.05.2012 का आदेश एकपक्षीय (एक्स पार्ट) नहीं था, और प्रारंभिक डिक्री को चुनौती देने का उपाय धारा 97 सीपीसी के अंतर्गत अपील दाखिल करना है, न कि 07.05.2012 के आदेश को वापस लेने हेतु कोई आवेदन प्रस्तुत करना। याचिकाकर्ता संपति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 41 का लाभ

नहीं ले सकता क्योंकि वह जानता था कि **27.11.1979 की प्रारंभिक डिक्री** द्वारा पक्षकारों के हिस्से निर्धारित किए जा चुके हैं और वादी चंडी दास बसु केवल अनुसूची-A और B में उल्लिखित संपत्ति का **5/48 और 5/24 हिस्सा** ही हस्तांतरित कर सकता था, लेकिन उसने चंडी चरण बसु के हिस्से के लिए भी अनुबंध किया, जबकि प्रारंभिक डिक्री में कोई संशोधन नहीं किया गया था। (पैरा 58, 61)

याचिका **खारिज** की जाती है। (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा)

1. याचिकाकर्ता की ओर से श्री विष्णु गुप्ता, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री मनीष गोयल, वरिष्ठ अधिवक्ता, और शिव ओम विक्रम सिंह चौहान की सहायता प्राप्त करते हुए सुनवाई की गई, तथा प्रतिवादी संख्या 7 की ओर से श्री वी. के. उपाध्याय, वरिष्ठ अधिवक्ता, और श्री यशार्थ, अधिवक्ता, उपस्थित रहे।

2. वर्तमान **रिट याचिका**, भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर, **सिविल रिविजन संख्या 92 of 2024** में प्रयागराज के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (E.C. अधिनियम) द्वारा दिनांक 23.09.2024 को पारित आदेश और **छोटे कारण न्यायालय, प्रयागराज** द्वारा दिनांक 29.05.2024 को आवेदन 86-सी पर पारित आदेश को चुनौती देती है। यह आदेश **अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 111 of 1980** में 07.05.2012 के आदेश को वापस लेने हेतु दिया गया था, जो **मूल वाद संख्या 254 of 1976** में पारित प्रारंभिक डिक्री में संशोधन करता है।

3. तथ्य संक्षेप में यह हैं कि श्यामा चरण बसु के दो पुत्र थे - श्रीश चन्द्र बसु और बमनदास बसु। श्यामा चरण बसु **हेडमास्टर** के रूप में कार्यरत थे और बाद में लाहौर में **रजिस्ट्रार** रहे। उनके निधन के बाद, श्रीश चन्द्र बसु और बमनदास बसु **इलाहाबाद (वर्तमान प्रयागराज)** में बस गए। श्रीश चन्द्र बसु एक **जिला न्यायाधीश** थे और 1918 में सेवा के दौरान उनका निधन हो गया। बमनदास बसु **मेडिकल ग्रेजुएट** थे और भारतीय सेना के **मेडिकल कोर में मेजर** के रूप में कार्यरत थे। दोनों भाई अपने जीवनकाल में **63 बहादुरगंज, इलाहाबाद** में साथ रहते थे।

4. श्रीश चन्द्र बसु के निधन के बाद उनके पुत्र और पोते तथा मेजर बमनदास बसु के निधन के बाद उनका पुत्र **डॉ. एल.एम. बसु** 63 बहादुरगंज में रहने लगे। वर्ष 1931 में डॉ. एल.एम. बसु **249, लीडर रोड** स्थानांतरित हो गए और तब से बमनदास बसु की शाखा **घर संख्या 63, बहादुरगंज** में निवास में नहीं रही।

5. श्रीश चन्द्र बसु के दो पुत्र थे - **डॉ. एस.एन. बसु** और **रामेन्द्रनाथ बसु**। अपने जीवनकाल में, श्रीश चन्द्र बसु ने वादी द्वारा प्रस्तुत **अनुसूची-B** में दी गई अन्य अचल संपत्ति खरीदी थी। डॉ. एस.एन. बसु का वर्ष 1967 में **निसंतान निधन** हो गया, तथापि उन्होंने **वसीयत** बनाई जिसमें अपने हिस्से को रामेन्द्रनाथ बसु के तीन पुत्रों

को और घर संख्या 63, बहादुरगंज के संबंध में कुमारी दीप्ति बसु के पक्ष में जीवनकालीन हित (lifetime interest) छोड़ दिया।

6. रामेन्द्रनाथ बसु की अपनी पहली पत्नी से तीन पुत्र थे - अजय कुमार बसु, चंडी चरण बसु और चंडी दास बसु। पहली पत्नी के निधन के बाद उन्होंने पुनः विवाह किया और एक पुत्र गोपाल चन्द्र बसु तथा दो पुत्रियाँ प्रीति बसु और दीप्ति घोष हुईं। बमनदास बसु का हिस्सा उनके पुत्र ललित मोहन बसु को विरासत में मिला और उसके बाद उनके पुत्र दीपंकर बसु को।

7. चंडी दास बसु, दिवंगत रामेन्द्रनाथ बसु के पुत्र, ने वाद संख्या 254 of 1976 इलाहाबाद के सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के समक्ष दायर किया, जिसमें उन्होंने घर संख्या 63, बहादुरगंज, इलाहाबाद की संपत्ति का सीमांकन सहित बंटवारा करने की मांग की, जो वादी द्वारा प्रस्तुत अनुसूची-A में वर्णित थी, और इसमें 5/48 हिस्सा का दावा किया। साथ ही उन्होंने अनुसूची-B में वर्णित अन्य अचल संपत्तियों के बंटवारे के लिए भी राहत मांगी और उसमें 5/24 हिस्सा का दावा किया।

8. वादी के अनुसार, प्रॉपर्टी संख्या 63, बहादुरगंज में श्रीश चन्द्र बसु और बमनदास बसु का समान आधा-आधा हिस्सा था, जबकि वादी द्वारा प्रस्तुत अनुसूची-B में वर्णित संपत्ति केवल श्रीश चन्द्र बसु द्वारा उनके जीवनकाल में खरीदी गई थी और यह संपत्ति उनके वंशजों, अर्थात् दिवंगत रामेन्द्रनाथ बसु की शाखा के वारिसों को मिलनी थी।

9. 27.11.1979 के निर्णय द्वारा, इलाहाबाद के सिविल जज (सीनियर डिवीजन) ने वादी चंडी दास बसु को अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति में 5/48 हिस्सा और अनुसूची-B में वर्णित संपत्ति में 5/24 हिस्सा आवंटित किया। वहीं, प्रतिवादी संख्या 6, दीपंकर बसु को अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति में आधा हिस्सा आवंटित किया गया। इसके अतिरिक्त, अनुसूची-A और B में वर्णित संपत्ति के सभी सह-स्वामियों के हिस्सों के संबंध में प्रारंभिक डिक्री तैयार की गई। इसके पश्चात, चंडी दास बसु ने अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 111 of 1980 दायर किया।

10. प्रतिवादी संख्या 1- अजय कुमार बसु ने प्रारंभिक डिक्री को चुनौती देते हुए प्रथम अपील संख्या 162 of 1980 इस न्यायालय में दायर की, जिसमें उन्होंने अकाउंट प्रस्तुत करने के आदेश को चुनौती दी, लेकिन प्रारंभिक डिक्री में निर्धारित हिस्से को चुनौती नहीं दी। अपील का आंशिक रूप से स्वागत किया गया और अदालती शुल्क की कमी राशि रु. 966/- का निपटान करने की शर्त पर, ट्रायल कोर्ट द्वारा वादी के अनुसूची-A में उल्लिखित संपत्ति में 5/48 हिस्सा और अनुसूची-B में उल्लिखित संपत्ति में 5/24 हिस्सा (सिवाय घर संख्या 71, बहादुरगंज और प्लॉट संख्या 27, बाई का बाग, इलाहाबाद) के बंटवारे के आदेश को पुष्टि प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 6 के पक्ष में पारित डिक्री को भी पुष्टि दी गई।

11. 13.05.1985 की **अमीन रिपोर्ट** को ट्रायल कोर्ट द्वारा पुष्टि प्रदान की गई, लेकिन प्रतिवादी अजय कुमार बसु की आपत्तियों के कारण यह आदेश **12.02.1987** को वापस लिया गया। चंडी दास बसु ने इस आदेश को **सिविल रिविजन संख्या 363 of 1987** के माध्यम से इस न्यायालय में चुनौती दी। इसके संबंध में **स्थिति जस की तस (status quo)** बनाए रखने का आदेश पारित किया गया, जिसमें पक्षकारों को संपत्ति को **हस्तांतरित या बेचने से रोका गया**।

12. दिनांक 20.06.1991 को अजय कुमार बसु का निधन हो गया, पीछे अपनी पत्नी, चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ छोड़कर। दिनांक 17.02.1993 को चंडी चरण बसु का भी **निःसंतान निधन** हो गया। दिनांक 27.03.1995 को चंडी दास बसु ने **पंजीकृत विक्रय अनुबंध** तारा चन्द्र गुप्ता (याचिकाकर्ता) के पक्ष में निष्पादित किया, जिसमें उन्होंने अपने हिस्से और अपने भाई चंडी चरण बसु के हिस्से के संबंध में **प्रॉपर्टी संख्या 63, 65 और 67, बहादुरगंज को रु. 4 लाख** में बेचने का अनुबंध किया। अग्रिम राशि के रूप में **रु. 50,000/-** का भुगतान किया गया, और शेष राशि **विक्रय विलेख निष्पादित होने के समय** चुकानी थी। अजय कुमार बसु के विधिक वारिस **अमिताभ बसु** ने चंडी दास बसु के विरुद्ध **अवमानना प्रकरण संख्या 655 of 1995** दायर किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि चंडी दास बसु ने **सिविल रिविजन संख्या 363 of 1987** में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का उल्लंघन किया।

13. दिनांक 09.11.1995 को **सिविल रिविजन संख्या 363 of 1987** खारिज कर दी गई। इसके पश्चात चंडी दास बसु ने **एस.एल.पी. संख्या 8939 of 1996** उच्चतम न्यायालय में दायर की, जिसे **09.12.1996** को खारिज कर दिया गया और दिनांक **12.02.1987** का आदेश, जिसमें सिविल जज द्वारा **नवीन अमीन रिपोर्ट** मांगी गई थी, पुष्टि प्रदान की गई।

14. वहीं, दीपांकर बसु ने अपने हिस्से का **आधा हिस्सा जनहित सहकारी आवास समिति** को बेचा, जिसने इसे बाद में **मोतीलाल गुप्ता** को हस्तांतरित कर दिया। इसके उपरांत, मोतीलाल गुप्ता ने **अंतिम डिक्री तैयार करने** के लिए कार्यवाही आरंभ की, जिसे **अंतिम डिक्री प्रकरण संख्या 33 of 1997** के रूप में पंजीकृत किया गया।

15. 09.05.2005 को, सिविल जज (सीनियर डिवीज़न) ने दूसरी अमीन रिपोर्ट मंगाकर दीपांकर बसु का हिस्सा काटने का निर्देश जारी किया। इस आदेश को अजय कुमार बसु की पत्नी ने डिस्ट्रिक्ट जज के सामने सिविल अपील के ज़रिए चुनौती दी। 12.11.2008 के आदेश से इस अपील को मंजूरी दे दी गई, और मामला नई अमीन रिपोर्ट के लिए ट्रायल कोर्ट को वापस भेज दिया गया, जो अभी भी पेंडिंग है।

16. इस बीच, अजय कुमार बसु के विधिक वारिसों में से एक **अमिताभ बसु** ने **25.04.2009** को आवेदन 65-सी दायर किया, जिसमें उन्होंने **चंडी चरण बसु** की मृत्यु के बाद, जो निःसंतान और बिना वसीयत हुए थे, सह-स्वामियों के हिस्सों में **परिवर्तन (वैरिेशन)** की मांग की। दिनांक 07.05.2012 को **आवेदन 65-सी स्वीकार** कर लिया गया और **प्रारंभिक डिक्री में संशोधन** किया गया।

17. इस बीच, चंडी दास बसु का वर्ष 1997 में निधन हो गया और उनके विधिक वारिस विश्वजीत बसु, समरजीत बसु और श्रीमती इति रक्षित ने नसीम उद्दीन और शफीक अहमद के साथ चंडी दास बसु और चंडी चरण बसु के हिस्से के संबंध में विक्रय अनुबंध किया, जबकि पहले ही 27.03.1995 को यह अनुबंध याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में पंजीकृत किया गया था।

18. तारा चन्द्र गुप्ता ने 28.09.1998 को नसीम उद्दीन, शफीक अहमद और चंडी दास बसु के विधिक वारिसों के विरुद्ध विशिष्ट निष्पादन हेतु वाद दायर किया, जिसे वाद संख्या 520 of 1998 के रूप में पंजीकृत किया गया। उक्त वाद को 20.04.2010 को डिक्री प्रदान की गई। 2010 की प्रथम अपील संख्या 74, जो नसीम उद्दीन एवं शफीक अहमद द्वारा दायर की गई थी, दिनांक 22.10.2017 को खारिज कर दी गई। उक्त निर्णय के विरुद्ध, नसीम उद्दीन एवं शफीक अहमद ने इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 722 वर्ष 2017 दायर की। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने 28.02.2020 को उक्त द्वितीय अपील को भी खारिज कर दिया, जिसके विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 9688 वर्ष 2020 दायर की गई, जिसे 14.09.2021 को खारिज कर दिया गया।

19. याचीकर्ता - तारा चन्द्र गुप्ता ने दिनांक 04.02.2021 को अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 में स्वयं को पक्षकार बनाए जाने हेतु प्रार्थना-पत्र संख्या 72-C प्रस्तुत किया। उक्त प्रार्थना-पत्र को 20.07.2021 को स्वीकार कर लिया गया। इसके उपरान्त, तारा चन्द्र गुप्ता ने दिनांक 13.08.2021 को प्रार्थना-पत्र संख्या 86-C प्रस्तुत किया, जिसमें 07.05.2012 को पारित उस आदेश को निरस्त करने का अनुरोध किया गया था, जिसके द्वारा प्रारम्भिक डिक्री तथा सह-स्वामियों के हिस्सों में संशोधन किया गया था। इस पर अमिताभ बसु द्वारा आपत्ति-पत्र संख्या 94-C दाखिल किया गया।

20. उक्त प्रार्थना-पत्र के लंबित रहने के दौरान, दिनांक 08.12.2021 को, चन्दी दास बसु द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख के संबंध में, निष्पादन न्यायालय द्वारा तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित कर दिया गया। तत्पश्चात, नागरिक न्यायाधीश (सीनियर डिवीजन), इलाहाबाद द्वारा दिनांक 11.01.2022 के आदेश से अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 तथा 33 वर्ष 1997 को एक साथ विचारार्थ समेकित कर दिया गया।

21. प्रार्थना-पत्र 86-C को ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 29.05.2024 को निरस्त कर दिया, जिसके विरुद्ध याचीकर्ता ने सिविल पुनरीक्षण संख्या 92 वर्ष 2024 दायर किया, परंतु वह भी दिनांक 23.09.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। फलस्वरूप, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

22. याची की ओर से उपस्थित श्री मनीष गोयल, वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि प्रारम्भिक डिक्री में संशोधन हेतु दायर आवेदन पर निर्णय लेने से पूर्व सभी पक्षकारों को नोटिस जारी किया जाना आवश्यक था। दिनांक 07.05.2012 का आदेश सभी आवश्यक पक्षकारों को विधिवत् नोटिस दिए बिना ही पारित किया गया।

उनके अनुसार, चंदी चरण बसु का देहान्त वर्ष 1993 में हो गया था, जबकि प्रारम्भिक डिक्री दिनांक 27.11.1979 में संशोधन के लिए आवेदन वर्ष 2009 में दायर किया गया, अर्थात् लगभग 16 वर्षों के उपरान्त। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 141 वादों से संबंधित विविध कार्यवाहियों तथा उनमें पालन किए जाने वाले प्रक्रियात्मक प्रावधानों को विनियमित करती है। अतः संशोधन-आवेदन को स्वीकार करने से पूर्व न्यायालय के लिए अनिवार्य था कि वह उक्त धारा में वर्णित प्रक्रिया का पालन करे।

23. उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि दिनांक 25.04.2009 को दायर संशोधन-आवेदन, जो डॉ. अमिताभ बसु द्वारा स्वर्गीय अजय कुमार बसु की ओर से प्रस्तुत किया गया था, विचारणीय नहीं था, क्योंकि अजय कुमार बसु के विधिक वारिसों को वर्ष 2015 में अभिलेख पर लिया गया था। उन्होंने यह भी आग्रह किया कि अधीनस्थ न्यायालय ने अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 में दायर संशोधन-आवेदन को स्वीकार करने में त्रुटि की, जबकि उस समय न्यायालय अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 का विचार कर रहा था। यह आदेश मोतीलाल गुप्ता की सहमति से पारित कर दिया गया, जो विवादित संपत्ति का कोई संबंधी नहीं था, तथा चन्दी दास बसु के वारिसों और अन्य सह-स्वामियों, जो आवश्यक पक्षकार थे, को सुने बिना ही आदेश पारित कर दिया गया।

24. उन्होंने यह भी जोर देकर कहा कि मोतीलाल गुप्ता ने बमनदास बसु का वह हिस्सा खरीदा था, जो उनके पोते दीपंकर बसु को मिला था, और दीपंकर बसु ने अपने आधे हिस्से को जनहित सहकारी आवास समिति के पक्ष में हस्तांतरित किया था। अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 की कार्यवाही मोतीलाल गुप्ता द्वारा ही प्रारम्भ की गई थी, अतः उनकी सहमति अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 में सर्वथा अप्रासंगिक थी।

25. उन्होंने आगे यह आग्रह किया कि दिनांक 07.05.2012 के आदेश को वापस लिए जाने हेतु याचीकर्ता द्वारा दायर प्रार्थना-पत्र पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना आवश्यक था, क्योंकि याचीकर्ता को प्रथम दृष्टया सुनवाई का अधिकार प्राप्त था। प्रारंभिक डिक्री में संशोधन, चन्दी दास बसु के उत्तराधिकारियों की अनुपस्थिति में, उनके पीठ पीछे किया गया था। एक बार जब याचीकर्ता चन्दी दास बसु के स्थान पर विधिक रूप से आ गया, तो उसे उस प्रार्थना-पत्र का प्रतिवाद करने का अधिकार था, जिसके आधार पर एकतरफा आदेश पारित किया गया था।

26. यह भी तर्क दिया गया कि चन्दी दास बसु द्वारा याचिकाकर्ता को की गई संपत्ति की बिक्री—जिसमें चन्दी चरण बसु का हिस्सा भी शामिल था—को जब माननीय उच्चतम न्यायालय ने उस निर्णय के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिका (SLP) को खारिज करते हुए प्रभावी रूप से पुष्टि कर दी, जिसमें विक्रय-समझौते (agreement to sale) को वैध ठहराया गया था, तो इससे याचिकाकर्ता को उक्त विवाद में अपना पक्ष रखने से नहीं रोका जा सकता। उनके अनुसार, चन्दी चरण बसु की मृत्यु निःसंतान हुई थी और दायभाग पद्धति के अनुसार चन्दी दास बसु ही उसके एकमात्र जीवित भाई होने के कारण उसके उत्तराधिकारी थे। अतः चन्दी चरण

बसु का हिस्सा चन्दी दास बसु को ही प्राप्त हुआ था, जिसे दोनों ही निम्नाधिकार अदालतों ने विचार करने में विफलता प्रदर्शित की।

उन्होंने हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 8 पर भी भरोसा किया है, विशेष रूप से अनुसूची पर, जिसमें वर्ग-II के उत्तराधिकारियों का उल्लेख है, जो किसी पुरुष हिंदू की अविवासीय मृत्यु (intestate death) की स्थिति में उसकी संपत्ति के अधिकारी होते हैं। उनके अनुसार, केवल चन्दी दास बसु ही उत्तराधिकार के हकदार थे, क्योंकि अजय कुमार बसु का निधन वर्ष 1991 में हो गया था और चन्दी चरण बसु की मृत्यु वर्ष 1993 में निःसंतान हुई थी।

27. अंततः उन्होंने यह तर्क दिया कि याचिकाकर्ता एक *सद्भावनापूर्ण खरीदार (bonafide purchaser)* होने के नाते *संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882* की धारा 41 के तहत संरक्षित है, क्योंकि उसने **27.03.1995** को चंदी दास बसु के साथ पंजीकृत विक्रय अनुबंध (registered agreement to sell) किया और विशिष्ट निष्पादन के बाद में ट्रायल कोर्ट द्वारा डिक्री पारित होने के बाद विक्रय विलेख (sale deed) अन्ततः निष्पादित किया गया, जिसे **08.12.2021** को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि प्रदान की गई। इस संदर्भ में उन्होंने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा व्यक्त किया:-

1. वेंकटा रेड्डी एवं अन्य बनाम पेठी रेड्डी, 1962 SCC OnLine SC 320
2. बिकोबा देओरा गायकवाड एवं अन्य बनाम हिराबाई मारुतिराव घोरगरे, (2008) 8 SCC 198
3. श्री रमेश चन्द्र बनाम सेठ घनश्याम दास, 1955 SCC OnLine ALL 75
4. राम कुमार बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य, (2023) 16 SCC 691
5. ए. वी. पापैया शास्त्री एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एवं अन्य, (2007) 4 SCC 221
6. एस.पी. चेंगलवराया नायडू बनाम जगन्नाथ एवं अन्य, (1994) 1 SCC 1
7. कांतारु राजीवारु (सबरिमला टेम्पल रिव्यू-5 जे) बनाम इंडियन यंग लॉयर्स एसोसिएशन, (2020) 2 एससीसी 1
8. स्पेंसर एंड कंपनी लिमिटेड एवं अन्य बनाम विश्वदर्शन डिस्ट्रिब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड एवं अन्य, (1995) एससीसी 1
9. सुगंधी सुरेश कुमार बनाम जगदीशन, (2002) 2 एससीसी 420
10. तिटुपति बालाजी डेवलपर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम राज्य बिहार, (2004) 5 एससीसी 1
11. राम किशोर बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2012) एससीसी ऑनलाइन सभी 605
12. क्रिस्टल डेवलपर्स बनाम आशा लता घोष, (2005) 9 एससीसी 375
13. सैयद अब्दुल खादर बनाम रामी रेड्डी, (1979) 2 एससीसी 601
14. कन्नप्पा चेट्टियार बनाम अब्बास अली, (1952) 2 एससीसी 124
15. राम चन्द्र अग्रवाल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (1966) एससीसी ऑनलाइन एससी 232
16. जसवंत सिंह बनाम प्रकाश कौर, (2018) 12 एससीसी 249
17. सुश्री नगिना देवी बनाम बृजनंदन पंडित सिन्हा, (1972) एससीसी ऑनलाइन 74

18. श्यौ सुंदर्य बनाम पिथी सिंह, (1877) एससीसी ऑनलाइन 6
 19. राजकिशोर लाहूरी बनाम गोबिंद चन्द्र लाहूरी, (1875) आई.एल.आर. 1 सी 28
 20. आशा वैश बनाम VII अपर जिला न्यायाधीश, इलाहाबाद, (1997) एससीसी ऑनलाइन ऑल 308

28. प्रतिवादी संख्या 7 की ओर से उपस्थित श्री वी.के. उपाध्याय, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वर्ष 1976 में याचिकाकर्ता चंदी दास बसु द्वारा दायर विभाजन वाद में स्पष्ट रूप से याचिका के अनुच्छेद 2 में उल्लेख है कि उनके पूर्वज स्व. श्यामा चरण बसु ने पहले हेडमास्टर और उसके पश्चात लाहौर में रजिस्ट्रार के रूप में कार्य किया था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र इलाहाबाद में बस गए और अपने जीवनकाल में संयुक्त रूप से 63 बहादुरगंज, इलाहाबाद में निवास करते रहे। याचिका में यह कोई दावा नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता और प्रतिवादी पश्चिम बंगाल के निवासी हैं तथा उत्तराधिकार के मामले में दायभाग कानून के नियमों के अंतर्गत आते हैं।

29. यह पहली बार है कि याचिकाकर्ता के बाद के खरीदार ने यह प्रश्न उठाया है कि पक्षकार बंगाली हैं। ऐसा कोई प्रश्न न तो ट्रायल कोर्ट के समक्ष उठाया गया और न ही पुनरीक्षणीय न्यायालय में। मिताक्षरा या दायभाग की प्रासंगिकता तथ्यात्मक मिश्रित प्रश्न है, जिसे याचिका और मामले के अभिलेखों पर प्रस्तुत प्रमाणों के आधार पर ही निर्णयित किया जा सकता है। इस संदर्भ में *बद्रीप्रसाद जगन्नाथ अग्रवाल एवं अन्य बनाम मधु डॉ. हरिंद्रकुमार लाहिरी एवं अन्य*, 2008 (4) *Mh.L.J.* 185 के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

30. इसके बाद यह भी तर्क दिया गया कि चंदी दास बसु द्वारा दायर वाद स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि याचिका मिताक्षरा पद्धति के कानून पर आधारित थी, और दायभाग कानून के संबंध में प्रारंभिक याचिका और आवश्यक प्रमाणों की अनुपस्थिति में कोई भी न्यायालय उक्त प्रश्न पर कोई निष्कर्ष नहीं दे सकता।

31. मृत चंदी चरण बसु के हिस्से के उत्तराधिकार का प्रश्न निर्णय के लिए यह उचित समय या मंच नहीं है। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत न्यायालय अपनी पर्यवेक्षी अधिकारिता में याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत दलीलों पर विचार नहीं कर सकता, क्योंकि न तो याचिका में ऐसा कोई दावा किया गया है और न ही किसी अन्य मंच पर इस संबंध में कोई सामग्री प्रस्तुत की गई है। के. चिन्नामल (मृत) थ्र. एलआरएस. बनाम एल.आर. एकनाथ और अन्य, 2023 SCC ऑनलाइन SC 611 के मामले में दिए गए फैसले पर भरोसा किया गया है।

32. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि बिना किसी न्यायालयीन निर्णय के, याचिकाकर्ता चंदी दास बसु के हित में खरीदार ने अपने स्तर पर चंदी चरण बसु के हिस्से का आवंटन किया और एकपक्षीय रूप से प्रारंभिक डिक्री दिनांक 27.11.1979 में निर्धारित हिस्सों को बदल दिया, अर्थात् अनुसूची-A में 5/48 हिस्सा (हाउस नं.63 बहादुरगंज) और अनुसूची-B संपत्ति में 5/24 हिस्सा, जिसे इस न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 16.05.1986 द्वारा पुष्ट किया था।

33. उनके अनुसार, यह तथ्य नगण्य है कि निष्पादन न्यायालय ने याचिकाकर्ता की विशिष्ट निष्पादन की डिक्री के अनुसार चंदी दास बसु का संपूर्ण हिस्सा, जिसमें चंदी चरण बसु का हिस्सा भी शामिल है, याचिकाकर्ता के पक्ष में हस्तांतरित कर दिया, क्योंकि उक्त कार्यवाहियों में चंदी दास बसु के हिस्से की सीमा के संबंध में कोई विवाद नहीं था। जहाँ तक चंदी चरण बसु के हिस्से का संबंध है, यह न तो किसी मुद्दे के रूप में था और न ही इसे किसी न्यायालय द्वारा उस विशिष्ट निष्पादन के वाद में विचार किया गया, जिसका निर्णय माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया। सिर्फ़ विक्रय अनुबंध (agreement to sell) में किए गए विवरण के आधार पर ही विक्रय विलेख (sale deed) निष्पादित किया गया और विशिष्ट निष्पादन के वाद में डिक्री पारित की गई।

34. उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि आवेदन 65-C स्वर्गीय अजय कुमार बसु की ओर से उनके विधिक वारिसों द्वारा अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 में दायर किया गया था। सभी परिवार के सदस्य दोनों अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 और 111 वर्ष 1980 में पक्षकार थे। प्रतिवादी संख्या 1 अजय कुमार बसु के वारिस अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 में अभिलेख पर आ गए थे, जैसा कि दिनांक 10.12.2004 के आदेश-पत्र से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त, आदेश-पत्र से यह भी स्पष्ट है कि चंदी दास बसु के वारिसों को 12.01.2000 को प्रकाशन के माध्यम से सेवा दी गई थी और 25.01.2005 को प्रकाशन द्वारा सेवा पर्याप्त मानी गई। 08.04.2005 को न्यायालय ने निर्देश दिया कि संबंधित फाइल को 28.05.2005 को अंतिम निपटान के लिए प्रस्तुत किया जाए।

35. दिनांक 09.05.2005 का आदेश, जिसमें अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 और 111 वर्ष 1980 दोनों का निर्णय दिया गया, उसी आदेश-पत्र में पारित किया गया था। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 1 के पुत्र अमिताभ बसु और उनके भाई पहले ही सिविल अपील संख्या 142 वर्ष 2005 के माध्यम से अभिलेख पर आ चुके थे, जो कि दिनांक 09.05.2005 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई थी।

36. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि आदेश-पत्र से स्पष्ट है कि दोनों अंतिम डिक्री वाद जुड़े हुए थे, यद्यपि कोई औपचारिक आदेश पारित नहीं किया गया था। आवेदन 65-C पर विचार के समय, याचिकाकर्ता पक्षकार नहीं था और उसके पास केवल अपने पक्ष में विक्रय अनुबंध था। याचिकाकर्ता को विक्रय अनुबंध के माध्यम से यह जानकारी होने के बावजूद कि अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 चल रहा था, उसने जानबूझकर आदेश दिनांक 07.05.2012 पारित होने से पहले कोई पक्ष सम्मिलन आवेदन नहीं दायर किया। याचिकाकर्ता ने 13.08.2021 को आवेदन 86-C द्वारा पुनः विचार की याचिका दायर की, अर्थात् 9 वर्ष बाद, जबकि उस समय भी उसके पक्ष में कोई विक्रय विलेख निष्पादित नहीं हुआ था।

37. इसके बाद यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता को चंदी दास बसु के वारिसों का मामला उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि आदेश दिनांक 07.05.2012 एकपक्षीय (ex-parte) है, क्योंकि याचिकाकर्ता और चंदी दास बसु के वारिसों के बीच हितों का टकराव था।

38. इसके बाद श्री उपाध्याय ने यह जोर दिया कि चंदी दास बसु के वारिसों ने **01.07.1997** को प्रतिस्थापन आवेदन (पत्र संख्या 16-A) दायर किया, जबकि उन्होंने **23.08.1997** को सफिक अहमद और नसीम उद्दिन के पक्ष में विक्रय अनुबंध निष्पादित किया और इसके बाद प्रतिस्थापन आवेदन को कभी आगे नहीं बढ़ाया और अंतिम डिक्री वाद को छोड़ दिया। हालांकि, चंदी दास बसु के वारिसों को **12.01.2000** को प्रकाशन के माध्यम से सेवा दी गई, जो कि **25.01.2005** के आदेश से स्पष्ट है, और उन्हें **09.05.2005** के आदेश से उत्पन्न सिविल अपील संख्या 142 वर्ष 2005 में पुनः प्रकाशन के माध्यम से सेवा दी गई। चंदी दास बसु के वारिस कभी भी किसी न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए, स्वीकार्य रूप से याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशिष्ट निष्पादन के वाद में ट्रायल कोर्ट से लेकर उच्चतम न्यायालय तक सभी न्यायालयीन कार्यवाहियों में भी। इस प्रकार याचिकाकर्ता या चंदी दास बसु के विधिक वारिसों को आवेदन 65-C की प्रति सेवा करना संभव नहीं था। **13.08.2021** को दायर पुनर्विचार आवेदन 86-C मुख्यतः दो आधारों पर है: (i) कि आदेश दिनांक 07.05.2012 एकपक्षीय (ex-parte) है, और (ii) आवेदन 65-C अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 वर्ष 1980 में दायर किया गया था, जबकि आदेश अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 वर्ष 1997 में पारित किया गया। पुनरीक्षणीय न्यायालय ने इन दोनों आधारों पर स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किए।

39. यह भी तर्क दिया गया कि विभाजन वाद में, सह-हिस्सेदारों के जन्म और मृत्यु के आधार पर हमेशा हिस्सों में संशोधन हो सकता है, भले ही प्रारंभिक डिक्री पारित हो चुकी हो, और केवल विभाजन वाद में ही दो या अधिक डिक्री पारित की जा सकती हैं, अन्य वादों में नहीं। **विवाद वाद संख्या 386 वर्ष 2024** पहले ही विक्रय विलेख दिनांक 08.12.2021 को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जो कि सिविल जज (वरिष्ठ डिवीजन), इलाहाबाद के समक्ष विचाराधीन है।

40. अंत में यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के पास दिनांक 07.05.2012 के आदेश को अपील में चुनौती देने का ही उपाय था और आदेश में संशोधन या पुनर्विचार के लिए कोई आवेदन स्वीकार्य नहीं है।

41. मैंने पक्षों के संबंधित वकीलों की दलीलों को सुना और अभिलेखों में प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया है।

42. वर्तमान मामले का एक लंबा और जटिल इतिहास है। वर्ष 1976 में दायर एक विभाजन वाद में, **27.11.1979** को एक प्रारंभिक डिक्री पारित की गई, जिसमें वाद में सभी सह-हिस्सेदारों के हिस्सों को निर्धारित किया गया। यह एक स्वीकार्य तथ्य है कि सह-हिस्सेदारों में से एक/प्रतिवादी संख्या 1 अजय कुमार बसु ने प्रारंभिक डिक्री को इस न्यायालय में **सिविल अपील संख्या 162 वर्ष 1980** के माध्यम से चुनौती दी थी। प्रथम अपील को **16.05.1986** को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया और इस न्यायालय ने पक्षकारों के हिस्सों के संबंध में ट्रायल कोर्ट की प्रारंभिक डिक्री की पुष्टि की तथा याचिकाकर्ता चंदी दास बसु को कोर्ट फीस की कमी को पूरा करने का निर्देश दिया।

43. प्रथम अपील के दौरान, याचिकाकर्ता चंदी दास बसु ने स्वीकार्य रूप से **अंतिम डिक्ली वाद संख्या 111 वर्ष 1980** दायर किया था। उक्त वाद में, अमीन रिपोर्ट की पुष्टि की गई थी, परंतु बाद में एक पक्षकार के आवेदन पर **12.02.1987** के आदेश द्वारा रिपोर्ट को रद्द कर दिया गया। ट्रायल कोर्ट के आदेश को चंदी दास बसु ने **सिविल रिवीजन संख्या 363 वर्ष 1987** के माध्यम से चुनौती दी, जिसे अंततः **09.11.1995** को खारिज कर दिया गया। इसी बीच, चंदी दास बसु के दो भाई, अर्थात् अजय कुमार बसु और चंदी चरण बसु का क्रमशः **20.06.1991** और **17.02.1993** को निधन हो गया।

44. चंदी दास बसु, जिसने **अंतिम डिक्ली वाद संख्या 111 वर्ष 1980** दायर किया था, ने कभी भी न्यायालय के समक्ष प्रारंभिक डिक्ली में संशोधन के लिए कोई आवेदन नहीं दायर किया। इसके बजाय, उसने **12.03.1995** को याचिकाकर्ता तारा चंद्र गुप्ता के साथ एक पंजीकृत विक्रय अनुबंध किया, न केवल प्रारंभिक डिक्ली में उसे आवंटित **शेड्यूल-A में 5/48 हिस्सा और शेड्यूल-B में 5/24 हिस्सा** के संबंध में, बल्कि अपने दिवंगत भाई चंदी चरण बसु को आवंटित हिस्से के संबंध में भी। वर्ष 1976 में दायर वाद का पूरा विवरण, जिसमें प्रारंभिक डिक्ली और **अंतिम डिक्ली वाद संख्या 111 वर्ष 1980** का दायर होना शामिल है, विक्रय अनुबंध में प्रकट किया गया था।

45. याचिकाकर्ता तारा चंद्र गुप्ता को तुरंत यह तथ्य पता चल गया कि वह ऐसी संपत्ति खरीद रहे थे जो विवादाधीन थी, क्योंकि तब तक कोई अंतिम डिक्ली तैयार नहीं की गई थी और संपत्ति का भौतिक विभाजन नहीं हुआ था। केवल पक्षकारों के हिस्से प्रारंभिक डिक्ली द्वारा निर्धारित किए गए थे, जिसे इस न्यायालय के **फर्स्ट अपील संख्या 162 वर्ष 1980** के निर्णय द्वारा पुष्टि की गई थी।

46. चंदी दास बसु ने विक्रय अनुबंध में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया था कि दायभाग विधि-पद्धति के आधार पर वह चंदी चरण बसु के हिस्से का हकदार है और इसी आधार पर वह याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता के साथ विक्रय अनुबंध में प्रवेश कर रहा है, परन्तु उसने प्रारंभिक डिक्ली में संशोधन कराने हेतु न्यायालय के समक्ष कभी कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया। उनकी मृत्यु के बाद, वर्ष 1997 में उनके दो पुत्र विश्वजीत बसु, समरजीत बसु तथा उनकी पुत्री श्रीमती इति रक्षित ने अंतिम डिक्ली वाद संख्या 111 of 1980 में दिनांक 01.07.1997 को प्रतिस्थापन आवेदन (पेपर संख्या 16-A) प्रस्तुत किया। इसके उपरांत चंदी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों ने उसी संपत्ति के संबंध में, जिसके लिए चंदी दास बसु ने पूर्व में 12.03.1995 को याचिकाकर्ता के पक्ष में विक्रय अनुबंध किया था, 23.08.1997 को सफीक अहमद और नसीम उद्दीन के पक्ष में पंजीकृत विक्रय अनुबंध निष्पादित किया।

47. इसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता द्वारा चंदी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों तथा नसीम उद्दीन और सफीक अहमद के विरुद्ध विशिष्ट निष्पादन हेतु वाद संख्या 520 of 1998 दायर किया गया। उक्त वाद में विवादित संपत्ति के किसी भी सह-स्वामी को पक्षकार के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया, जबकि याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता को इस तथ्य का पूर्ण ज्ञान था कि अंतिम डिक्ली वाद, जो स्वयं चंदी दास बसु द्वारा दायर किया गया था, न्यायालय के समक्ष लंबित था। यह कहना गलत है कि चंदी दास बसु के

उत्तराधिकारियों को परवर्ती कार्यवाही में पक्षकार नहीं बनाया गया, क्योंकि उन्होंने अपना प्रतिस्थापन आवेदन (पेपर संख्या 16-A) दाखिल किया था, परन्तु उन्होंने उसे इस कारण अग्रसर नहीं किया कि वे अपनी रुचि/अधिकार पहले ही नसीम उद्दीन और सफीक अहमद को हस्तांतरित कर चुके थे, जबकि यह तथ्य विदित था कि उनके पिता वर्ष 1995 में तारा चन्द्र गुप्ता के साथ विक्रय अनुबंध में प्रवेश कर चुके थे।

48. चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारी अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 of 1980 का प्रतिवाद करने में कभी भी रुचि नहीं रखते थे। याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता द्वारा दायर विशिष्ट निष्पादन वाद, दिनांक 14.09.2021 को पारित सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों से अन्तिम रूप से निष्पन्न हो गया तथा पक्षकारों के मध्य परस्पर रूप से बाध्यकारी हो गया।

49. इसी बीच, बामन दास बसु के अन्य शाखा में, जहाँ उनके हिस्से को लेकर कोई विवाद नहीं था, उनके पौत्र दिपंकर बसु ने अनुसूची-A में वर्णित संपत्ति में अपने आधे हिस्से को जनहित सहकारी आवास समिति के पक्ष में हस्तांतरित कर दिया, जिसने उसे अंततः मोतीलाल गुप्ता के पक्ष में स्थानांतरित किया, जिन्होंने अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 of 1997 दायर किया था। चूँकि चंडी दास बसु के उत्तराधिकारी अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 of 1980 को आगे नहीं बढ़ा रहे थे, वर्ष 2000 में दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशन कराया गया, और वर्ष 2005 में न्यायालय ने उक्त प्रकाशन को उनके प्रति पर्याप्त नोटिस मान लिया। दिनांक 09.05.2005 के आदेश को सिविल अपील में चुनौती दी गई, जिसमें चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों के संबंध में भी प्रकाशन कराया गया, परन्तु उन्होंने उपस्थित होना उचित नहीं समझा, क्योंकि वे अपना हिस्सा पहले ही विधिवत प्रतिफल प्राप्त करके नसीम उद्दीन और सफीक अहमद के पक्ष में हस्तांतरित कर चुके थे, और वाद का प्रतिवाद याचिकाकर्ता तथा नसीम उद्दीन और सफीक अहमद द्वारा किया जा रहा था।

50. प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक उत्तराधिकारियों के पास कोई विकल्प शेष नहीं रह गया था, इसलिए उन्हें अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 of 1980 को आगे बढ़ाना पड़ा और वर्ष 2009 में प्रारंभिक डिक्री में संशोधन कराए जाने हेतु प्रार्थना-पत्र 65-C प्रस्तुत किया। याची के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया यह तर्क कि संशोधन आदेश दिनांक 07.05.2012 पारित किए जाने से पूर्व विधिक उत्तराधिकारियों को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया, इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में अस्वीकार्य हो जाता है कि 01.07.1997 को प्रतिस्थापन आवेदन प्रस्तुत करने के उपरांत चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों ने मामले का प्रतिवाद करने में रुचि ही छोड़ दी थी, क्योंकि वे स्वयं 23.08.1997 को नसीम उद्दीन और सफीक अहमद के पक्ष में विक्रय अनुबंध निष्पादित कर चुके थे।

51. पिता तथा उनके बच्चों-दोनों ने ही प्रारंभिक डिक्री वर्ष 1979 में संशोधित कराए बिना, वर्ष 1995 एवं 1997 में क्रमशः याचिकाकर्ता तथा नसीम उद्दीन और सफीक अहमद के पक्ष में विक्रय अनुबंध निष्पादित किए।

52. इस चरण पर याचिकाकर्ता यह प्रश्न नहीं उठा सकता कि दायभाग विधि-पद्धति के आधार पर सभी सह-अधिकारियों के हिस्सों का विभाजन किस प्रकार होना चाहिए, क्योंकि न तो वादपत्र में इस संबंध में कोई तथ्य उल्लिखित है और न ही 17.02.1993 को चंडी चरण बसु की मृत्यु के उपरांत वादी द्वारा स्वयं कोई प्रयास किया गया। चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों ने भी वर्ष 1997 के बाद कभी यह प्रयास नहीं किया कि प्रारंभिक डिक्री को उस आधार पर संशोधित कराया जाए, जैसा कि वर्तमान में याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय के समक्ष दावा प्रस्तुत किया गया है। चंडी दास बसु द्वारा तथा उनके विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा चंडी चरण बसु के हिस्से के संबंध में कथित रूप से किए गए विक्रय अनुबंध के माध्यम से अधिकारों का हस्तांतरण, प्रारंभिक डिक्री में संशोधन किए बिना, वैधानिक रूप से किया ही नहीं जा सकता था।

53. इस न्यायालय की समन्वयित पीठ के समक्ष प्रस्तुत दूसरे अपील संख्या 722 of 2017 में दिए गए निर्णय से स्पष्ट है कि यह मुद्दा कभी उठाया ही नहीं गया और न ही न्यायालय के संज्ञान में लाया गया कि चंडी चरण बसु का हिस्सा भी दायभाग विधि-पद्धति के आधार पर विक्रय अनुबंध में शामिल है। निर्णय से स्पष्ट है कि केवल यह विचार किया गया कि चंडी दास बसु द्वारा याचिकाकर्ता तारा चन्द्र गुप्ता के पक्ष में निष्पादित एवं प्रवेश किया गया विक्रय अनुबंध, विश्वजीत बसु, समरजीत बसु और इति रक्षित द्वारा नसीम उद्दीन और सफीक अहमद के पक्ष में निष्पादित परवर्ती विक्रय अनुबंध पर प्रधान होगा या नहीं। यह निर्णय उस प्रारंभिक डिक्री के आधार पर लिया गया, जो वादी चंडी दास बसु द्वारा दायर वाद में पारित हुई थी; 12.03.1995 को पंजीकृत विक्रय अनुबंध होने के कारण विशिष्ट निष्पादन हेतु वाद को मंजूरी दी गई और इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि प्रदान की गई।

54. चंडी चरण बसु की मृत्यु के बाद अन्य सह-स्वामियों के हिस्सों का मुद्दा कभी भी न्यायालयों के समक्ष विचाराधीन नहीं रहा, और न ही सह-स्वामियों को वादी द्वारा दायर वाद संख्या 520 of 1998 में पक्षकार बनाया गया, जबकि वादी को यह पूर्णतः ज्ञात था कि सह-स्वामियों के बीच अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 of 1980 लंबित था।

55. चंडी दास बसु चंडी चरण बसु का हिस्सा, वर्ष 1979 की प्रारंभिक डिक्री में संशोधन कराए बिना, हस्तांतरित नहीं कर सकता था। यह अन्य सह-स्वामियों के प्रति उसके द्वारा किया गया एक धोखाधड़ीपूर्ण कृत्य था, क्योंकि दिनांक 27.11.1979 की प्रारंभिक डिक्री में वादपत्र की अनुसूची-A एवं B में वर्णित संपत्ति में प्रत्येक सह-स्वामी का हिस्सा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया था।

56. हस्तांतरण केवल प्रारंभिक डिक्री में संशोधन कराने के पश्चात ही किया जा सकता था। चंडी दास बसु और उनके विधिक उत्तराधिकारियों ने अपने-अपने विक्रय अनुबंधों में प्रवेश करके अपने हाथ धो दिए, जिससे सह-स्वामियों और बाहरी पक्षों के बीच अराजकता और अनावश्यक विवाद उत्पन्न हुआ।

57. याचिकाकर्ता, जो पूर्णतः जानता था कि वह विवादित संपत्ति खरीद रहा है और सह-स्वामियों के बीच विवाद न्यायालय में लंबित था, ने उक्त कार्यवाही में पक्षकार बनाए जाने के लिए कभी कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया। इसके विपरीत, प्रारंभिक डिक्री में 07.05.2012 को संशोधन किए जाने के उपरांत, उसने दिनांक 13.08.2021 को उक्त आदेश को वापस लेने हेतु आवेदन संख्या 86-C प्रस्तुत किया, अर्थात् यह आवेदन सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पूर्व और 08.12.2021 को विक्रय विलेख निष्पादित होने से पहले किया गया।

58. वह संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 41 का लाभ प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह एक ईमानदार खरीदार होते हुए भी यह तथ्य जानता था कि दिनांक 27.11.1979 की प्रारंभिक डिक्री द्वारा पक्षकारों के हिस्सों को परिभाषित किया गया था, जिसे प्रथम अपील संख्या 162 of 1980 में पुष्टि प्रदान की गई थी। वादी चंडी दास बसु केवल अनुसूची-A एवं B में वर्णित संपत्ति का अपना 5/48 और 5/24 हिस्सा ही हस्तांतरित कर सकता था, परन्तु उसने चंडी चरण बसु के हिस्से के लिए भी अनुबंध में प्रवेश कर लिया, जबकि प्रारंभिक डिक्री में कोई संशोधन नहीं किया गया था।

59. उसने जानबूझकर विवादित संपत्ति खरीदी है और प्रारंभिक डिक्री में संशोधन के 9 वर्ष बाद वह खड़ा होकर दिनांक 07.05.2012 के आदेश को पक्ष-विहीन (ex-parte) होने का आरोप नहीं लगा सकता। न्यायिक प्रक्रिया संहिता की धारा 97 प्रारंभिक डिक्री से अपील के लिए प्रावधान करती है, जो निम्नानुसार है:-

97. अंतिम डिक्री से अपील जहाँ प्रारंभिक डिक्री से कोई अपील नहीं की गई हो। यदि किसी पक्षकार को इस संहिता की प्रारंभिक डिक्री पारित होने के पश्चात हुई प्रारंभिक डिक्री से आक्षेप है और वह उस डिक्री के विरुद्ध अपील नहीं करता, तो उसे उस अंतिम डिक्री से की जाने वाली किसी भी अपील में उसकी शुद्धता (correctness) पर विवाद करने से वंचित किया जाएगा।

60. फूलचंद बनाम गोपाल लाल, 1967 AIR (SC) 1470 में माननीय न्यायालय ने इस पर बल दिया कि अंतिम डिक्री लंबित रहते हुए, किसी पक्षकार की मृत्यु या कानून में परिवर्तन जैसे बीच में आए घटनाक्रम के कारण हिस्सों में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके पश्चात माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने S. साई रेड्डी बनाम S. नारायण रेड्डी, 1991 (3) SCC 647 में इसी सिद्धांत का पालन किया, जिसमें न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि बीच में आने वाली घटनाओं के कारण हिस्सों में परिवर्तन किया जा सकता है।

61. सर्वोच्च न्यायालय ने बालिराम आत्मराम केलापुर बनाम इन्दिराबाई, 1996 (8) SCC 400 में यह निर्णय दिया कि यद्यपि धारा 97 सी.पी.सी. प्रारंभिक डिक्री के विरुद्ध अपील के लिए प्रावधान करती है, फिर भी डिक्री में संशोधन पर रोक नहीं है। इसी प्रकार का दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय ने S. सतनाम सिंह एवं अन्य बनाम सुरेन्द्र कौर एवं अन्य, (2009) 2 SCC 562 में अपनाया, जिसमें न्यायालय ने समान दृष्टिकोण लेते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया:-

20. Indisputably, Section 97 of the Code of Civil Procedure provides for an appeal against preliminary decree but the said provision, in our opinion, would not be a bar to file an application for amendment of a decree.

21. न्यायालय के पास स्व-प्रेरित (suo motu) रूप से डिक्री में संशोधन करने का अधिकार न हो सकता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय किसी त्रुटि को सुधार नहीं सकता। यदि किसी संपत्ति को दलीलों का विषय बनाया गया था और न्यायालय ने ऐसा मुद्दा नहीं तैयार किया जो उसे तैयार करना चाहिए था, तो इसे बाद में, जब यह इंगित किया जाए, डिक्री में संशोधन करने की अनुमति है।

22. इस प्रकार के मामले में संशोधन का अधिकार, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया, केवल न्यायालय की शक्तियों पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि उस सिद्धांत पर भी निर्भर करता है कि न्यायालय हमेशा अपनी की गई त्रुटि को सुधारने के लिए तत्पर और इच्छुक रहेगा।

62. अतः मैं पाता हूँ कि चंडी चरण बसु की मृत्यु के उपरांत चंडी दास बसु द्वारा या उनके विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा उनके हिस्से के संबंध में प्रारंभिक डिक्री में संशोधन हेतु कोई औपचारिक आवेदन नहीं किया गया। इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 1 के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रस्तुत आवेदन को दिनांक 07.05.2012 को, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री और उसमें पक्षकारों के प्रतिनिधित्व के आधार पर, सही ढंग से स्वीकार किया गया। एक बार जब चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारी न्यायालय से दूर रहे और याचिकाकर्ता बाहर से विवाद को देखते हुए इसमें हस्तक्षेप नहीं कर रहा था, तो न्यायालय को यह दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसने चंडी चरण बसु की मृत्यु के उपरांत सह-स्वामियों के हिस्सों में परिवर्तन करने के लिए प्रारंभिक डिक्री में संशोधन किया।

63. याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क कि आदेश पक्ष-विहीन (ex-parte) है, उपरोक्त चर्चा के परिप्रेक्ष्य में और इस तथ्य के कारण अस्वीकार्य है कि चंडी दास बसु के विधिक उत्तराधिकारियों की उपस्थिति के लिए दो बार प्रकाशन किया गया, जिन्होंने 1997 में प्रतिस्थापन आवेदन दाखिल करने के उपरांत स्वयं ही विवाद से दूर रहना चुना। उन्होंने याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशिष्ट निष्पादन वाद का भी प्रतिवाद नहीं किया, जो स्वयं इस तथ्य का प्रकट करता है कि पैसे प्राप्त करने के बाद वे मामले को आगे बढ़ाने में रुचि नहीं रखते थे।

64. इसके अतिरिक्त, प्रारंभिक डिक्री को चुनौती देने का उपाय सी.पी.सी. की धारा 97 के तहत अपील दाखिल करना है, न कि दिनांक 07.05.2012 के आदेश को वापस लेने के लिए कोई आवेदन करना, क्योंकि यह आदेश पक्ष-विहीन (ex-parte) नहीं है और इसमें विवादरत पक्षों के बीच प्रतिवाद हुआ था।

65. याचिकाकर्ता द्वारा यह भी बल दिया गया कि आवेदन अंतिम डिक्री वाद संख्या 111 of 1980 में प्रस्तुत किया गया था, जबकि आदेश अंतिम डिक्री वाद संख्या 33 of 1997 में पारित किया गया। यह न्यायालय पाता है कि दोनों अंतिम डिक्री वाद एक साथ चल रहे थे, यद्यपि दोनों वादों के एकत्रीकरण के लिए औपचारिक

आदेश पारित नहीं किया गया था। वाद संख्या 111 of 1980 वादी चंडी दास बसु द्वारा दायर किया गया था, जबकि वाद संख्या 33 of 1997 परवर्ती खरीदार मोतीलाल गुप्ता द्वारा दायर किया गया था। आवेदन वाद संख्या 111 of 1980 में प्रस्तुत किया गया था, परन्तु वाद संख्या 33 of 1997 की आदेश-सूची में प्रतिबिंबित आदेश को किसी जानबूझकर प्रयास या किसी गंभीर चूक के रूप में नहीं माना जा सकता, जिससे न्यायालय को दिनांक 07.05.2012 के आदेश को वापस लेने के लिए आमंत्रित किया जा सके।

66. उक्त आदेश का उद्देश्य दिनांक 27.11.1979 की प्रारंभिक डिक्री में संशोधन करना था, ताकि चंडी चरण बसु की मृत्यु के पश्चात सह-स्वामी के हिस्सों में परिवर्तन किया जा सके। संशोधन का अंतिम परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि केवल श्रीष चन्द्र गुप्ता की शाखा के सह-स्वामियों के हिस्सों में परिवर्तन किया गया है। याचिकाकर्ता की ओर से एक और प्रयास किया गया कि दिनांक 09.05.2005 के आदेश के बाद अंतिम डिक्री वाद अंतिम रूप से निष्पन्न हो गया था और न्यायालय द्वारा आवेदन संख्या 65-C को स्वीकार करना सही नहीं था।

67. यह स्पष्ट है कि दिनांक 09.05.2005 के आदेश के विरुद्ध सिविल अपील संख्या 142 of 2005 दाखिल की गई, जिसे वर्ष 2008 में स्वीकार किया गया और उक्त आदेश को रद्द कर मामले को पुनर्विचार हेतु दिनांक 12.11.2008 को वापस भेज दिया गया।

68. मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मैं पाता हूँ कि प्रयागराज के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (ई.सी. अधिनियम) द्वारा सिविल रिवीजन संख्या 92 of 2024 में दिनांक 23.09.2024 को पारित आदेश और प्रयागराज के स्माल कॉज कोर्ट के न्यायाधीश द्वारा दिनांक 29.05.2024 को पारित आदेश में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

69. रिट याचिका असफल होती है और इस प्रकार खारिज की जाती है।

70. न्यायालय की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह निचली अदालत के अभिलेख तुरंत प्रेषित करे।

(2025) 6 ILRA 104

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद क्रमर हसन रिज़वी

रिट - ए संख्या 6603 of 2025

यू.ओ.आई.एवं अन्य

...याचीगण

बनाम

गोविन्द नारायण मिश्रा

...प्रतिवादी

याचीगण के अधिवक्ता: वरुण पाण्डेय

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

A. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट याचिका - विलंब तथा प्रमाद - विवेकाधीन राहत अस्वीकृत: सेवानिवृत्ति के निकट कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित अधिकरण के आदेश को चुनौती देने में 363 दिनों के अव्याख्यायित विलंब के कारण, अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त असाधारण राहत प्राप्त नहीं की जा सकती। न्यायालयों का दायित्व है कि वे पुराने दावों से उत्पन्न होने वाली अन्यायपूर्ण स्थितियों को रोकने हेतु विलंब एवं प्रमाद की कठोरता से जांच करें, भले ही प्रकरण में मौलिक अधिकार क्यों न शामिल हों। शिव दास बनाम यू.ओ.आई., (2007) 9 एससीसी 274; यूपी जल निगम बनाम जसवंत सिंह, (2006) 11 एससीसी 464 (पैरा 8, 9, 10, 11)।

B. केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण तथा अपील) नियम, 1965 - नियम 16 - विभागीय कार्यवाही - क्षति की वसूली: किसी अन्य अधिकारी (SPM) द्वारा की गई अनियमितताओं के लिए सेवानिवृत्ति के समय कर्मचारी से Rs. 20,000 की वसूली, बिना प्रत्यक्ष दोष सिद्ध हुए, टिकाऊ नहीं है। न्यायाधिकरण द्वारा निष्पक्ष सुनवाई का अवसर न दिये जाने का निष्कर्ष स्वीकार किया गया, जिससे कार्यवाही दोषपूर्ण हो जाती है। त्रिदीप कुमार डिंगल बनाम राज्य पश्चिम बंगाल, (2009) 1 SCC 768; कर्नाटक पावर कार्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. थंगप्पन, (2006) 4 SCC 322 (पैरा 12, 13)।

C. विलम्ब के सिद्धांत (डॉक्ट्रिन ऑफ़ लेचेस) - सेवा सम्बन्धी प्रकरणों में अनुप्रयोग-सेवा तथा पेंशन सम्बन्धी विवादों में विलम्ब (लैचेस) का सिद्धांत लागू होता है। विलम्ब से न्यायिक संतुलन प्रभावित होता है तथा

प्रतिकूलता उत्पन्न होती है। रिट न्यायालय विवेकाधीन अधिकार का प्रयोग सावधानी से करते हैं तथा ऐसे मामलों में राहत देने से इंकार करते हैं जहाँ याची की ओर से उपेक्षा, लापरवाही अथवा निष्क्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, भले ही विवाद लगातार उत्पन्न होने वाले अधिकार से सम्बद्ध हो। **चेन्नई मेट्रोपॉलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम टी.टी. मुरली बाबू, (2014) 4 एससीसी 108 (पैरा 13)।**

रिट याचिका खारिज की जाती है।

उद्धृत वादों की सूची :

1. शिव दास बनाम भारत संघ, (2007) 9 एससीसी 274 (पैरा 8)
2. यूपी जल निगम बनाम जसवंत सिंह, (2006) 11 एससीसी 464 (पैरा 9)
3. त्रिदीप कुमार डिंगल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2009) 1 एससीसी 768 (पैरा 12)
4. कर्नाटक पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. थांगप्पन, (2006) 4 एससीसी 322 (पैरा 12)
5. चेन्नई मेट्रोपॉलिटन जल आपूर्ति एवं सीवर बोर्ड बनाम टी.टी. मुरली बाबू, (2014) 4 एससीसी 108 (पैरा 13)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया तथा माननीय न्यायमूर्ति सैय्यद कमर हसन रिज़वी द्वारा प्रदत्त)

1. याची के अधिवक्ता श्री वरुण पाण्डेय की दलीलों को सुना गया तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।
2. प्रस्तावित आदेश के दृष्टिगत, निजी-प्रतिवादी को नोटिस जारी करने से छूट दी जाती है।
3. वर्तमान याचिका निम्नलिखित मुख्य राहतों के लिए दायर की गई है:
"याचिका में रिट, आदेश या दिशा जारी करने का प्रार्थना की गई है, सर्टियोरी की प्रकृति में, ताकि 22.05.2024 (07.05.2024 को आरक्षित) के दिनांकित विवादित निर्णय और आदेश को खारिज किया जा सके, जो कि मूल आवेदन संख्या 332/00378/2013, गोविंद नारायण मिश्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य में दिया गया था और जो याचिका के साथ संलग्न (परिशिष्ट संख्या 1) है।"
4. चुनौती के अंतर्गत लखनऊ स्थित केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00378/2013 (गोविंद नारायण मिश्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य) में पारित आदेश है।
5. आगे की कार्यवाही से पूर्व यह बताना उचित होगा कि वर्ष 2013 में याचिकाकर्ता-गोविंद नारायण मिश्रा, जिन्हें वर्तमान याचिका में निजी-प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया है, की आयु लगभग 63 वर्ष थी और वर्तमान में उनकी आयु लगभग 74 वर्ष होगी।

6.मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं:

i) गोविंद नारायण मिश्रा/निजी-प्रतिवादी, जुलाई 2010 में सहायक डाक प्रमुख, चौक, लखनऊ के पद से सेवानिवृत्त होने वाले थे।

(ii) सेवानिवृत्ति की तिथि से ठीक पहले 16.07.2010 के दिन गोविंद नारायण मिश्रा/निजी-प्रतिवादी को चार्जशीट प्रदान की गई।

(iii) 16.07.2010 की चार्जशीट के जवाब के लिए गोविंद नारायण मिश्रा/निजी-प्रतिवादी ने 21.07.2010 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें रिकॉर्ड निरीक्षण की अनुमति प्रदान करने का अनुरोध किया गया।

(iv) रिकॉर्ड निरीक्षण की अनुमति 26.07.2010 को प्रदान की गई।

(v) उसके पश्चात् गोविंद नारायण मिश्रा/निजी-प्रतिवादी ने 27.07.2010 को रिकॉर्ड का निरीक्षण किया।

(vi) 28.07.2010 को गोविंद नारायण मिश्रा/निजी-प्रतिवादी ने 16.07.2010 को जारी चार्जशीट का उत्तर दिया।

(vii) 29.07.2010 को वरिष्ठ अधीक्षक डाकालय, लखनऊ डिवीजन, लखनऊ द्वारा विवादित आदेश दिनांक 29.07.2010 पारित किया गया, जिसका संबंधित भाग इस प्रकार है:-

मैंने चार्जशीट, बचाव प्रस्तुतिकरण और अन्य प्रासंगिक रिकॉर्ड का अवलोकन किया और पाया कि उक्त अधिकारी ने मेमो में उल्लिखित अनुसार संक्षिप्त अवधि के लिए स्टॉप-गैप व्यवस्था के रूप में एपीएम एसबीएसओएस का कार्य किया। तथापि, उपरोक्त अवधि के दौरान की गई अनियमितताओं के लिए वह जिम्मेदार है।

(viii) 29.07.2010 के आदेश को चुनौती देते हुए, गोविन्द नारायण मिश्रा/निजी प्रतिवादी द्वारा एक विभागीय अपील दायर की गई, जिसे अपीलीय प्राधिकारी अर्थात् निदेशक, डाक सेवा, मुख्यालय, लखनऊ द्वारा 31.01.2013 के आदेश से खारिज कर दिया गया। इसके प्रासंगिक अंश निम्नलिखित हैं:-

"3. अपीलकर्ता ने अपनी 09.09.2010 की अपील में विचार हेतु निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं:-

(i) कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दंडादेश के पैरा 6(1) में उप-कार्यालयों सहित ब्लंट स्कवायर के वाउचरों की देर से पोस्टिंग को स्वीकार किया, लेकिन फिर भी यह माना कि अपीलकर्ता उन्हें तुरंत और नियमित रूप से संबंधित लेजर में पोस्ट नहीं कर सका, जिसके परिणामस्वरूप एसपीएम ब्लंट स्कवायर द्वारा की गई अनियमितताओं का पता नहीं चल पाया। अपीलकर्ता इस तथ्य को उच्च प्राधिकारियों के ध्यान में लाने में भी विफल रहा। अनुशासनात्मक प्राधिकारियों द्वारा दिए गए कारण सही नहीं हैं, बल्कि भ्रामक हैं और दस्तावेज़ी साक्ष्य पर आधारित भी नहीं हैं; अन्यथा 01.01.2006 से 30.10.2006 तक संबंधित वाउचरों की रसीद पुस्तिका, जिसके तहत वे एसबीसीओ को प्रस्तुत किए गए थे, अपीलकर्ता को 28.07.2010 को बचाव प्रस्तुत करने से पहले निरीक्षण के लिए प्रदान की जाती। अतः दंडादेश वास्तविक स्थिति पर आधारित नहीं है, बल्कि यह अनुशासनात्मक प्राधिकारियों का पक्षपाती रवैया है कि किसी तरह से सेवानिवृत्ति के समय अपीलकर्ता पर मौद्रिक नुकसान थोप दिया जाए।

(ii) कि पिछली प्रविष्टियाँ निरीक्षण प्राधिकारियों के ज्ञान में थीं, जिन्होंने उन्हें संबंधित OBRS में नियमित रूप से दर्ज किया था। अपीलकर्ता के कार्यकाल के दौरान प्राप्त वाउचरों का अप्रविष्ट होना शेष राशि में अंतर

के लिए प्रासंगिक नहीं है, बल्कि यह निरीक्षण प्राधिकारियों की कमी है, जिन्होंने कथित अव्यवस्थाओं की अवधि में ब्लंट स्कवायर डाकघर का निरीक्षण किया, जो ब्लंट स्कवायर डाकघर में मौजूद अनियमितताओं को नोटिस नहीं कर सके।

(iii) कि अपीलकर्ता ने कथित दुराचार के आरोप में उल्लिखित अवधि के दौरान, उक्त तिथियों के लिए जो उस अवधि में प्रविष्ट की जानी थीं, वाउचर SBCO को प्रस्तुत कर दिए थे। दस्तावेज़ प्राप्त पुस्तक अपीलकर्ता को अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा उपलब्ध नहीं कराई जा सकी, इसलिए दंड आदेश के पैरा 6(ii) में उनका निरीक्षण निराधार है और इसका कोई वैध आधार नहीं है।

(iv) कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने पैरा 6(iii) और (iv) में SB मैनुअल वॉल्यूम I के नियम 74 के प्रावधानों की गलत व्याख्या की, ताकि अपने उद्देश्यों के अनुरूप अपीलकर्ता पर दंड लगाया जा सके।

(v) कि अपीलकर्ता द्वारा 28.07.2010 को प्रस्तुत की गई रक्षा प्रस्तुति में पैरा D, पृष्ठ 3 और अतिरिक्त तथ्यों पृष्ठ 3 एवं 4 पर जो तर्क प्रस्तुत किए गए थे, उन्हें दंडादेश में नहीं देखा और चर्चा नहीं की गई। अतः दंडादेश स्व-संगठित नहीं है, इसलिए भारत सरकार के निर्देशांक नियम 15 CCS (CCA) नियम 1965 के तहत और G.I.M.H.A., Dep. एवं A.R.O.M. संख्या 134/1/81 AVD-I दिनांक 13.07.1981 तथा डिपार्टमेंट ऑफ P&T O.M. संख्या 134/12/85-AVD-I दिनांक 05.11.1985 के अनुसार उचित रूप से तर्कपूर्ण आदेश नहीं बनाया गया।

(vi) कि अवकाश नकद भुगतान (लीव एन्कैशमेंट) से 50,000/- रुपये वसूलना CCS (पेंशन) नियम 39 (iii) के प्रावधानों के विरुद्ध है, जैसा कि अगस्त 2005 तक संशोधित किया गया था (FRSR का भाग III)। इसके अंतर्गत, जब किसी सरकारी कर्मचारी को सेवानिवृत्त होना है और उसके खिलाफ अनुशासनात्मक/आपराधिक कार्यवाही लंबित है तथा कुछ राशि सरकारी देयों के समायोजन के लिए वसूली योग्य हो सकती है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी को यह कार्रवाई करने की अनुमति नहीं है। अतः दंडादेश नियमों के प्रावधानों के विरुद्ध है।

(vii) कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई, अपीलकर्ता के सेवानिवृत्त होने के केवल पंद्रह (15) दिनों के भीतर, अनुचित थी। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अपीलकर्ता के सेवानिवृत्त होने के अंतिम समय पर अचानक और बिना परिस्थितियों पर विचार किए अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की, जिनमें अपीलकर्ता ने चौक मुख्या कार्यालय में कार्य किया। अतः दंडादेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध है। उन्होंने यह भी जोड़ा कि वह 01.01.2006 से 06.01.2006 तक पीएसडी लखनऊ में कार्यरत थे, अतः आरोपों का कथन निरर्थक है।

4. मैंने अपीलकर्ता द्वारा अपनी अपील में किए गए तर्कों तथा मामले के संबंधित दस्तावेजों का अध्ययन किया। स्थिति निम्नानुसार स्पष्ट हुई:

(i) अपीलकर्ता को उक्त आरोप-पत्र में उल्लेखित अवधि के दौरान APM SBSO चौक HO में तैनात किया गया था। SBSO शाखा के पर्यवेक्षक होने के नाते, उसे लेजर असिस्टेंट्स के कार्य की निगरानी करनी थी, जिन्हें बचत खाता लेन-देन का प्रविष्टि करना, संकलन तैयार करना और वाउचर्स को SBCO चौक HO में स्थानांतरित करने का कार्य सौंपा गया था, और यह कार्य दिन-प्रतिदिन पूर्ण कराना था। परंतु, उसने यह कार्य लंबित रखा। उसकी शिथिलता के कारण, उस समय के SPM ब्लंट स्क्वायर द्वारा की गई सरकारी धन की गबन की घटनाओं का समय रहते पता नहीं चल सका, जिससे SB खातों में भारी गबन हुई। अतः, अपीलकर्ता की यह दलील स्वीकार नहीं की जाती।

(ii) अपीलकर्ता पीछे की प्रविष्टियों (बैंक पोस्टिंग) के अद्यतन करने के लिए जिम्मेदार था जैसा कि आरोप-पत्र में उल्लेखित है। यदि यह कार्य उसने समय पर किया होता, तो बैलेंस में असंगतियाँ/अनियमितताएँ स्पष्ट हो जातीं और उस समय के SPM ब्लंट स्क्वायर द्वारा की गई गलतियाँ समय रहते पकड़ में आतीं। अतः, अपीलकर्ता की दलील स्वीकार्य नहीं है।

(iii) अपीलकर्ता की दलील स्वीकार नहीं की जा सकती। इस तथ्य के दृष्टिगत कि वाउचर की प्रविष्टि और स्थानांतरण नियमित रूप से किया गया था, SPM ब्लंट स्क्वायर पीओ लखनऊ द्वारा की गई अनियमितताओं का समय रहते पता चल जाता। अपीलकर्ता अपने कार्यकाल के दौरान किसी भी अनियमितता को इंगित करने में विफल रहा, जो यह प्रमाणित करता है कि उसने विभाग द्वारा निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया।

(iv) SB मैनुअल वॉल्यूम-1 के नियम-74 के अनुसार, विशेष त्रुटि पुस्तिका उन खातों के संबंध में बनाए जाने की आवश्यकता है जिनमें 31 मार्च के बाद पहली बार लेन-देन हुआ हो और जिनकी पासबुक एसओ से बैलेंस और ब्याज की प्रविष्टि के सत्यापन के लिए प्राप्त नहीं हुई हो। अपीलकर्ता का यह तर्क कि संबंधित नियम 1 मार्च से 31 जून तक के लिए लागू हैं, स्वीकार्य नहीं है। यह अपीलकर्ता की ओर से अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य की उचित निगरानी और विशेष त्रुटि पुस्तिका के रखरखाव में गंभीर लापरवाही थी। अतः अपीलकर्ता की दलील आश्वस्तिक नहीं है।

(v) स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि अपीलकर्ता की दलील पर दंडात्मक आदेश के पैरा IV में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया और चर्चा की गई थी। अतः अपीलकर्ता का तर्क आश्वस्तिक नहीं है।

(vi) स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि अपीलकर्ता को ब्लंट स्क्वायर पोस्ट ऑफिस धोखाधड़ी मामले में सहायक दोषी के रूप में पहचाना गया है और उसके द्वारा की गई चूक के कारण तब के एसपीएम ब्लंट स्क्वायर पोस्ट ऑफिस ने लंबी अवधि तक हेराफेरी जारी रखी, जिससे विभाग को सरकारी धन का भारी नुकसान हुआ। अतः अपीलकर्ता की दलील विश्वसनीय नहीं है।

5. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों तथा मामले के समग्र मूल्यांकन के आधार पर, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अपीलकर्ता के खिलाफ लगाई गई धाराएँ प्रमाणित हैं, किंतु अपीलकर्ता द्वारा अपनी अपील में बताई गई परिस्थितियों को देखते हुए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा मेमो संख्या F/SB-5/08-09 दिनांक 29.07.2010 के माध्यम से लगाई गई दंड राशि को घटाकर केवल "रु. 25,000/- की वसूली" कर दिया जाता है।

मुझे 1965 के सीसीएस (सीसीए) नियमों के नियम 27 के तहत प्रदान किए गए अधिकारों का प्रयोग करते हुए, मैं इस प्रकार आदेश देता हूँ।

(ix) इसके पश्चात्, गोविंद नारायण मिश्रा/निजी प्रतिवादी ने ट्रिब्यूनल में मूल आवेदन संख्या 332/00378/2013 (गोविंद नारायण मिश्रा बनाम भारत संघ एवं अन्य) (संक्षेप में 'मूल आवेदन') दायर किया, जिसमें उन्होंने 29.07.2010 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश और 31.01.2013 को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी।

(x) ट्रिब्यूनल ने अपने समक्ष प्रस्तुत अभ्यावेदन और दस्तावेजों पर विचार करने के पश्चात् गोविंद नारायण मिश्रा/निजी प्रतिवादी द्वारा दायर मूल आवेदन को 22.05.2024 के आदेश के माध्यम से स्वीकार किया। इसका संबंधित अंश इस प्रकार है उद्धृत किया गया:-

"6.5 आरोप से संबंधित घटनाएँ 01.01.2006 से 30.10.2006 की अवधि की हैं। चार्जशीट 16.07.2010 को जारी की गई थी, अर्थात् उसी महीने जब याची सेवानिवृत्त होने वाले थे। अभिलेख निरीक्षण हेतु आवेदन याची द्वारा 21.07.2010 को प्रस्तुत किया गया। अनुमति 26.07.2010 को प्रदान की गई। याची ने उपलब्ध अभिलेखों का निरीक्षण 27.07.2010 को किया और अपनी प्रस्तुतिकरण 28.07.2010 को जमा की। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दंड लगाने का आदेश 29.07.2010 को पारित किया। जिस तेजी से अनुशासनात्मक कार्यवाही संचालित की गई, उसकी व्याख्या प्रतिवादियों द्वारा यह बताकर की गई कि कार्यवाही सीसीएस (सीसीए) नियमों की नियमावली 16 के तहत प्रारंभ की गई थी और इसे याची के सेवानिवृत्त होने से पहले समाप्त करना आवश्यक था। तथापि, हम पाते हैं कि याची के इस दावे का प्रभावी खंडन नहीं किया गया कि उन्हें 21.07.2010 के आवेदन में अंकित अनुक्रमांक 1 और 3 के अभिलेख नहीं दिखाए गए, जो उन पर लगाए गए आरोपों के संबंध में महत्वपूर्ण थे। अनुशासनात्मक कार्यवाही को जल्दी पूरा करने की जल्दी में, याची को सभी संबंधित दस्तावेज उपलब्ध कराकर स्वयं का बचाव करने का पूरा अवसर देने के सिद्धांत को पर्याप्त महत्व नहीं दिया गया।

6.6 उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, हमारा मत है कि याची के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही अवैध मानी जाए, क्योंकि प्रतिवादियों ने याची को स्वयं का बचाव करने का उचित अवसर नहीं दिया। उन्होंने याची द्वारा अनुरोधित विशिष्ट दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए, जिन्हें आरोप के संबंध में अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता।

6.7 यह ध्यान में रखते हुए कि याची के विरुद्ध वर्ष 2006 से संबंधित घटनाओं के लिए CCS (CCA) नियम, 1965 की नियम 16 के अंतर्गत अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई थी और याची जुलाई, 2010 में सेवानिवृत्त हो गया, इस चरण में मामले को पुनः प्रतिवादियों के पास भेजने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

7.1 उपरोक्त दृष्टिगत रखते हुए, मूल आवेदन (OA) को स्वीकार किया जाता है और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 29.07.2010 को पारित आदेश तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा 31.01.2013 को पारित आदेश रद्द और निरस्त किए जाते हैं। प्रतिवादियों को यह आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन माह के भीतर याची को कटौती की गई राशि वापस करनी होगी।

7.2 लंबित अन्य आवेदन (MAs), यदि कोई हों, उन्हें भी निस्तारित किया जाता है। पक्षकार अपने-अपने खर्च स्वयं वहन करेंगे।

7.3 उपरोक्त पृष्ठभूमि में, वर्तमान याचिका जिसमें 22.05.2024 को न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई है, इस न्यायालय के रजिस्ट्री में 20.05.2025 को प्रस्तुत की गई, जिसमें लगभग 363 दिनों की देरी और लापरवाही का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

8. यह स्थापित कानून है कि देरी या लापरवाही उस कारकों में से एक है जिसे अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि याची की ओर से कोई लापरवाही पाई जाती है, तो उच्च न्यायालय अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करके किसी पुरानी मांग को पुनर्जीवित करने से इंकार कर सकता है।

9. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में पहुँचने में देरी या लापरवाही का प्रश्न शिव दास बनाम भारत संघ एवं अन्य (2007) 9 SCC 274 में परखा गया, जिसमें यह कहा गया कि पेंशन के मामले में यद्यपि कार्रवाई का कारण महीने-दर-महीने जारी रहता है, फिर भी याचिका दायर करने में देरी को अनदेखा करना उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया:-

"6. सामान्यतः, देरी से प्रस्तुत की गई याचिका को खारिज कर दिया जाता है। देरी या लापरवाही उन कारकों में से एक है जिन्हें उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के तहत अपनी विवेकाधिकार शक्तियों का प्रयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए। उपयुक्त मामले में, यदि याची द्वारा अपने अधिकार को प्रस्तुत करने में ऐसी लापरवाही या चूक पाई जाती है, और समय की विलंबता एवं अन्य परिस्थितियों के साथ मिलकर इससे विपक्षी पक्ष को नुकसान पहुँचता है, तो उच्च न्यायालय अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है। यहाँ तक कि जब मौलिक अधिकार संबंधित हो, तब भी यह मामला न्यायालय के विवेकाधिकार में आता है, जैसा कि **दुर्गा प्रसाद बनाम चीफ कंट्रोलर ऑफ इंपोर्ट्स एंड एक्सपोर्ट्स [(1969) 1 SCC 185 : AIR 1970 SC 769]** में बताया गया है। बेशक, इस विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत और तार्किक ढंग से किया जाना चाहिए।

10. पेंशन के मामलों में कार्रवाई का कारण वास्तव में महीने दर महीने चलता रहता है। फिर भी, यह याचिका दाखिल करने में विलंब को नजरअंदाज करने का आधार नहीं बन सकता। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर

करेगा। यदि याचिका उचित अवधि से परे, जैसे कि तीन वर्ष, के बाद दाखिल की गई हो, तो सामान्यतः न्यायालय उसे अस्वीकार कर देगा या केवल लगभग तीन वर्षों की अवधि तक ही राहत प्रदान करने तक सीमित करेगा। उच्च न्यायालय ने यह नहीं जांचा कि औचित्य के आधार पर याचिकाकर्ता का मामला था या नहीं। यदि औचित्य के आधार पर यह पाया गया होता कि हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है, तो उच्च न्यायालय केवल उसी आधार पर याचिका अस्वीकार कर देता।

10. विलंब और ढिलाई के सिद्धांत का आधार तथा वे कारक जिन पर विचार किया जाना चाहिए जब विलंब और ढिलाई याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार करने के लिए पर्याप्त हों, का परीक्षण **यूपी जल निगम बनाम जसवंत सिंह और अन्य**, (2006) 11 SCC 464 में किया गया था और इंग्लैंड के **हॉल्सबरी के कानूनों** (Halsbury's Laws of England), पैरा 911, पृष्ठ 395 का संदर्भ देते हुए कहा गया कि -

12. कानून का यह कथन हॉल्सबरी के कानूनों, पैरा 911, पृष्ठ 395 में संक्षेप में इस प्रकार दिया गया है - यह निर्धारित करने के लिए कि क्या विलंब इतना है कि उसे ढिलाई (लैचेस) माना जा सके, मुख्य बिंदु जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए, वे हैं:

- (i) याचिकाकर्ता की ओर से सहमति या मूक स्वीकार्यता; और
- (ii) प्रतिवादी की ओर से किसी भी प्रकार का स्थिति परिवर्तन जो हुआ हो।

इस संदर्भ में सहमति का अर्थ यह नहीं है कि अधिकार के उल्लंघन के दौरान चुपचाप खड़ा रहना, बल्कि उल्लंघन पूरा होने के बाद और याचिकाकर्ता को इसकी जानकारी होने के बाद उसकी स्वीकृति है। यह अन्यायपूर्ण होगा कि याचिकाकर्ता को कोई राहत दी जाए जब उसने अपने व्यवहार से ऐसा किया हो जिसे न्यायसंगत रूप से इसके त्याग (waiver) के समकक्ष माना जा सके; या जब उसके व्यवहार और लापरवाही के कारण, भले ही उसने राहत को त्यागा न हो, उसने दूसरी पार्टी को ऐसी स्थिति में डाल दिया हो जिसमें बाद में राहत का दावा करने पर उसे रखना उचित न हो। ऐसे मामलों में समय की विलंबता और देरी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इसी विचाराधारा पर लैचेस का सिद्धांत आधारित है।

11. अन्यायपूर्ण विलंब, लैचेस और सहमति (acquiescence) के मामलों में अनुच्छेद 226 के तहत विवेक (discretion) के प्रभाव से संबंधित सिद्धांतों को **भारत संघ बनाम एन. मुरुगेसन**, (2022) 2 एससीसी 25 में संक्षेपित किया गया और निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

“विलंब, लैचेस और सहमति”

20. विलंब, लापरवाही और सहमति के सिद्धांत कई अवसरों पर ओवरलैप और इंटरकनेक्टेड हैं। हालांकि, इनके अपने विशिष्ट चरित्र और विशिष्ट तत्व हैं। कहा जा सकता है कि विलंब वह जीनस है, जिसके अंतर्गत आलस्य और सहमति आते हैं। इसी प्रकार, आलस्य को एक जीनस कहा जा सकता है और सहमति को इसके एक प्रकार के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि, ऐसी स्थिति हो सकती है जिसमें सहमति शामिल हो, लेकिन आलस्य नहीं हो। ये सिद्धांत कॉमन लॉ के सिद्धांत हैं, और शायद इन्हें विभिन्न विधियों में देखा जा सकता है जो परिसीमन की अवधि को सीमित करते हैं और कुछ परिस्थितियों में माफ़ी की स्वीकृति को रोकते हैं। इन्हें लागू

करने में न्यायालय की प्रूँस की आवश्यकता होती है, न कि कानून के कठोर अनुप्रयोग की। इन अवधारणाओं के पीछे का मूल सिद्धांत विबंधन है। पूर्वाग्रह का प्रश्न भी न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाने वाला एक महत्वपूर्ण मुद्दा है।

लापरवाही

21. शब्द "लैचेस" फ्रेंच भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है "सुस्ती और आलस्य"। इसका तात्पर्य है किसी न्यायसंगत राहत से संबंधित दावा करते समय अनुचित विलंब या लापरवाही करना, जिससे प्रतिपक्ष को हानि पहुँचे। यह उस पक्ष की लापरवाही को दर्शाता है जो किसी अधिकार का दावा करते समय कानून द्वारा अपेक्षित कार्य नहीं करता, और इसलिए इसे उस पक्ष को राहत या उपाय प्राप्त करने में बाधा के रूप में माना जाता है।

22. देखने के लिए दो आवश्यक कारक हैं: विलंब की अवधि और उस अवधि के दौरान किए गए कार्यों की प्रकृति। जैसा कि कहा गया है, इसमें उस पक्ष की सहमति (acquiescence) भी शामिल होती है जो न्यायालय की शरण ले रहा है, इसके अलावा अंतराल में स्थिति में हुए परिवर्तन को भी देखा जाता है। इसलिए, यह न्यायसंगत नहीं होगा कि न्यायालय उस पक्ष को राहत प्रदान करे जो न्यायालय के दरवाजे पर तब आता है जब उसके कार्य ऐसे अधिकार के त्याग (waiver) का संकेत देते हों। अपने आचरण के माध्यम से, उसने प्रतिपक्ष को एक विशिष्ट स्थिति में रख दिया है, और इसलिए न्यायालय में चुनौती को सुगम बनाना अनुचित होगा। इस प्रकार, अपने आचरण के लिए जिम्मेदार व्यक्ति को न्यायसंगत राहत प्राप्त करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

23. लेखित विलंब (laches) का बचाव केवल तब स्वीकार किया जा सकता है जब कोई विधिक प्रतिबंध (statutory bar) न हो। यह प्रश्न कि राहत प्राप्त करने वाले व्यक्ति की ओर से स्पष्ट विलंब का मामला है या नहीं, तथ्य का प्रश्न है, और उसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि प्रतिपक्ष को किसी प्रकार का नुकसान (prejudice) हुआ है या नहीं। यह सिद्धांत तब लागू नहीं होता जब दूसरा पक्ष धोखाधड़ी (fraud) का दावा करता है और उसे साबित करता है। विलंब और सहमति (acquiescence) की अवधारणाओं के बीच अंतर यह है कि केवल विलंब वाले मामले में, estoppel का सिद्धांत उन सभी बचावों पर लागू होगा जो पक्ष के लिए उपलब्ध हैं। इसलिए, प्रतिवादी विभिन्न आधारों पर सफल हो सकता है जो याचिकाकर्ता ने उठाए हैं, जबकि केवल सहमति से संबंधित मुद्दा अलग तरीके से नियंत्रित होगा।

रज़ामंदी

24. हमने पहले ही सहमति (acquiescence) और विलंब एवं लेखित विलंब (delay और laches) के बीच संबंध पर चर्चा कर ली है।

25. सहमति (acquiescence) का अर्थ होता है मौन या निष्क्रिय स्वीकृति। यह किसी क्रिया के प्रति निहित और अनिच्छुक सहमति है। दूसरे शब्दों में, ऐसी क्रिया को निष्क्रिय स्वीकृति माना जाता है। जब सहमति होती है, तो यह किसी विशेष क्रिया के प्रति ज्ञान को पूर्वसापेक्ष मानती है। उस ज्ञान से निष्क्रिय स्वीकृति उत्पन्न

होती है, इसलिए किसी कथित मूल अनुबंध को पूरी करने से इंकार के खिलाफ कोई कार्रवाई करने के बजाय, उसके नियमों के पर्याप्त ज्ञान के बावजूद, उसे अनदेखा करके जारी रहने की अनुमति दी जाती है, तब सहमति होती है। इसके परिणामस्वरूप, पक्षों के बीच एक नया निहित समझौता पुनः स्थापित हो जाता है। एक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर, वह पक्ष जिसने सहमति दी, स्वयं मूल शर्तों के पालन पर जोर नहीं दे सकता। इसलिए, आवश्यक है कि पक्षों का आचरण देखा जाए। हमने केवल केवल सहमति के अंतर पर चर्चा की। जब सहमति के बाद विलंब होता है, तो यह लेखित विलंब (laches) बन सकता है। यहाँ भी, हम यह मानते हैं कि सहमति की अवधारणा को मामले-दर-मामला आधार पर देखा जाना चाहिए।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को श्री मृण्मय मैटी बनाम छंदा कोले और अन्य (2024) SCC OnLine SC 551) के मामले में निम्नलिखित रूप में पुनः स्पष्ट किया है:-

"9. विवादित दलीलों को सुनने और इस मामले में प्राप्त तथ्यों की समीक्षा करने के पश्चात, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता को विलंब और आलस्य के आधार पर अस्वीकृत किया जाना चाहिए था, अर्थात् रिट याचिका को इसी आधार पर खारिज किया जाना चाहिए था। कोई भी आवेदनकर्ता जो न्यायालय में देर से आता है, या अपने अधिकारों पर काफी समय तक नौद में रहता है और फिर जागता है, उसे रिट न्यायालयों द्वारा असाधारण राहत प्रदान नहीं की जानी चाहिए। इस न्यायालय ने बार-बार यह सिद्ध किया है कि विलंब न्यायसंगतता को बाधित करता है। विलंब या आलस्य उन कारकों में से एक है जिन्हें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को ध्यान में रखना चाहिए। किसी विशेष मामले में, यदि आवेदनकर्ता की लापरवाही के कारण कारण क्रिया लुप्त हो गई हो और बाद में उसे पुनः सक्रिय करने का प्रयास किया जा रहा हो, तो उच्च न्यायालय असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है।

10. विवेकाधिकार का प्रयोग सतर्कता और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। यदि न्यायालय के समक्ष विलंब का औचित्य प्रस्तुत किया गया है और वह न्यायालय की अंतरात्मा को संतुष्ट करता है, तो ऐसी परिस्थितियों में प्रतिवादी पक्ष यह नहीं कह सकता कि भविष्य में विलंब को कभी क्षम्य नहीं माना जाएगा। असाधारण अधिकार क्षेत्र के प्रयोग की आवश्यकता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ अनेकों हो सकती हैं और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है; इसे किसी कठोर सूत्र या गणितीय सटीकता में नहीं बांधा जा सकता। रिट न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का अंतिम प्रयोग इस बात पर निर्भर करता है कि तथ्यों का मार्ग कैसा रहा है और परिस्थितियाँ किस प्रकार विकसित हुई हैं।

11. रिट याचिका दायर करने के लिए कोई निश्चित अवधि निर्धारित नहीं है, इसमें कोई संदेह नहीं है। तथापि, जब रिट न्यायालय के असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, तो यह देखा जाना आवश्यक है कि क्या इसे उचित समयावधि के भीतर प्रयोग किया गया है, और केवल जापन प्रस्तुत करने से मृत हो चुकी कार्यवाही को पुनर्जीवित या प्राकृतिक रूप से समाप्त हो चुकी कार्यवाही को फिर से शुरू नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में केवल विलंब और लापरवाही के आधार पर अपील को खारिज किया जाना चाहिए या

याचिकाकर्ता को असफल ठहराया जाना चाहिए। यदि यह पाया जाए कि रिट याचिकाकर्ता विलंब और लापरवाही में दोषी है, तो उच्च न्यायालय को केवल इसी आधार पर याचिका खारिज कर देनी चाहिए, क्योंकि रिट न्यायालय ऐसे सुस्त मुकदमेबाज को उसके अपने दोष का लाभ लेने की अनुमति नहीं दे सकता। यह सत्य है कि मौलिक अधिकार का कोई त्याग नहीं किया जा सकता, किन्तु अनुच्छेद 226 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को याचिकाकर्ता द्वारा रिट न्यायालय में पहुँचने में विलंब और लापरवाही को अनिवार्य रूप से ध्यान में रखना होगा। इस न्यायालय ने त्रिदीप कुमार डिंगल बनाम राज्य पश्चिम बंगाल, (2009) 1 SCC 768 के मामले में निम्नलिखित प्रभाव का निर्धारण किया है:

"56. हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते। इसमें कोई संदेह नहीं कि मौलिक अधिकार का कोई त्याग नहीं किया जा सकता। लेकिन अनुच्छेद 32, 226, 227 या 136 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय कुछ कारकों को ध्यान में रखता है और ऐसे ही एक विचारणीय कारक याचिकाकर्ता द्वारा रिट न्यायालय तक पहुँचने में विलंब और लापरवाही है। यह सुव्यवस्थित रूप से स्थापित है कि रिट जारी करने का अधिकार विवेकाधिकारपूर्ण है। अनुच्छेद 32 या 226 के तहत राहत देने से इंकार करने के आधारों में से एक यह है कि याचिकाकर्ता विलंब और लापरवाही में दोषी है।

57. यदि याचिकाकर्ता रिट न्यायालय का अधिकार क्षेत्र लागू करना चाहता है, तो उसे न्यायालय में यथासंभव शीघ्र अवसर पर आना चाहिए। रिट के लिए आवेदन में अत्यधिक विलंब निश्चित रूप से ऐसा विवेकाधिकार प्रयोग न करने का ठोस आधार होगा। इस सिद्धांत का मूल उद्देश्य यह नहीं है कि पुराने दावों को फिर से उठाया जाए और ऐसे मामलों को पुनः जीवित किया जाए जिन्हें पहले ही निपटा दिया गया हो या तय किया गया हो, या जिनमें इस बीच तीसरे पक्ष के अधिकार उत्पन्न हो गए हों (संदर्भ: राज्य मध्य प्रदेश बनाम भईलाल भाई, [AIR 1964 SC 1006 : (1964) 6 SCR 261], मून मिल्स लिमिटेड बनाम इंडस्ट्रियल कोर्ट, [AIR 1967 SC 1450] और भूप सिंह बनाम भारत संघ, [(1992) 3 SCC 136 : (1992) 21 ATC 675 : (1992) 2 SCR 969]). यह सिद्धांत मौलिक अधिकार के उल्लंघन के मामलों में भी लागू होता है (संदर्भ: तिलोचनद मोतिचंद बनाम एच.बी. मुंशी, [(1969) 1 SCC 110], दुर्गा प्रसाद बनाम चीफ कंट्रोलर ऑफ इंपोर्ट्स एंड एक्सपोर्ट्स, [(1969) 1 SCC 185] और रबिंद्रनाथ बोस बनाम भारत संघ, [(1970) 1 SCC 84])।

58. यह निर्धारित करने की कोई ऊपरी या निचली सीमा नहीं है कि कोई व्यक्ति कब न्यायालय के पास जा सकता है। यह विवेक का प्रश्न है और प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन क्या है, कौन-सा उपचार मांगा गया है, और देरी कब और कैसे हुई।

12. इस न्यायालय द्वारा कर्नाटक पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम के. थंगप्पन, (2006) 4 SCC 322 में दिए गए निर्णय का ध्यान देना उपयुक्त है, जिसमें यह कहा गया कि यदि याचिकाकर्ता की ओर से अपने अधिकार

को लागू करने में लापरवाही या चूक हुई हो, तो उच्च न्यायालय असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया कि:

"6. विलंब या लापरवाही उन कारकों में से एक है जिन्हें उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी विवेकाधिकारिता का प्रयोग करते समय ध्यान में रखना चाहिए। उचित मामले में उच्च न्यायालय अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है यदि याची द्वारा अपने अधिकार को स्थापित करने में ऐसी लापरवाही या चूक हुई हो, और समय के बीतने तथा अन्य परिस्थितियों के साथ मिलकर इससे प्रतिवादी पक्ष को नुकसान हुआ हो। भले ही मौलिक अधिकार का मामला हो, फिर भी यह न्यायालय के विवेकाधिकार में ही है, जैसा कि दुर्गा प्रसाद बनाम मुख्य नियंत्रक आयात एवं निर्यात [(1969) 1 SCC 185 : AIR 1970 SC 769] में कहा गया है। बेशक, इस विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसंगत और उचित ढंग से किया जाना चाहिए।

7. इस संबंध में सर बार्न्स पीकॉक ने लिंडसे पेट्रोलियम कंपनी बनाम प्रॉस्पर आर्मस्ट्रांग हर्ड, [[एल.आर.] 5 पी.सी. 221 : 22 डब्ल्यू.आर. 492] (पीसी पृ. 239) में जो कहा, उसे इस न्यायालय ने मून मिल्स लिमिटेड बनाम एम.आर. मेहर, [एआईआर 1967 एससी 1450] और महाराष्ट्र SRTC बनाम श्री बलवंत नियमित मोटर सेवा, [(1969) 1 एससीआर 808 : एआईआर 1969 एससी 329] में अनुमोदित किया। सर बार्न्स ने कहा:

" अब, समता (इक्विटी) अदालतों में लेचेस का सिद्धांत कोई मनमाना या तकनीकी सिद्धांत नहीं है। वहां जहां किसी को राहत देना व्यावहारिक रूप से अन्यायपूर्ण हो, या तो इसलिए कि पक्षकार ने अपने आचरण से ऐसा किया है जिसे उचित रूप से उसके अधिकार के परित्याग (waiver) के समतुल्य माना जा सकता है, या फिर उसके आचरण और उपेक्षा के कारण, भले ही उसने उस राहत को औपचारिक रूप से त्यागा न हो, दूसरी पार्टी को ऐसी स्थिति में डाल दिया है जिसमें उसे बाद में राहत का दावा करने पर रखना उचित नहीं होगा, ऐसे किसी भी मामले में समय की विलंबिता और देरी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। लेकिन हर मामले में, यदि राहत के विरुद्ध तर्क केवल विलंब पर आधारित है, और वह विलंब किसी कानून द्वारा निर्धारित अवधि की सीमा को पार नहीं करता, तो उस रक्षा की वैधता मौलिक रूप से न्यायसंगत सिद्धांतों के आधार पर जाँची जानी चाहिए। ऐसे मामलों में हमेशा दो परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण होती हैं:

(i) विलंब की लंबाई और

(ii) उस अवधि में किए गए कार्यों का स्वभाव, जो किसी भी पक्ष को प्रभावित कर सकते हैं और किसी एक मार्ग को अपनाने में न्याय या अन्याय का संतुलन बना सकते हैं, जैसे कि यह राहत से संबंधित है।

8. यह उपयुक्त होगा कि इस अदालत के कुछ निर्णयों का उल्लेख किया जाए जिनमें इस पहलू को संविधान के अनुच्छेद 32 के संबंध में देखा गया है। स्पष्ट है कि जो कहा गया है वह अनुच्छेद 226 पर भी लागू होगा। रबिन्द्रनाथ बोस बनाम भारत संघ [(1970) 1 SCC 84 : AIR 1970 SC 470] में यह देखा गया कि उस याचिकाकर्ता को कोई राहत नहीं दी जा सकती जिसने बिना किसी उचित कारण के अत्यधिक विलंब के बाद अनुच्छेद 32 के तहत इस अदालत का रुख किया। यह कहा गया कि यद्यपि अनुच्छेद 32 स्वयं एक सुनिश्चित

अधिकार हैं, इसका यह अर्थ नहीं निकलता कि संविधान निर्माताओं का इरादा यह था कि अदालत सभी सिद्धांतों की अनदेखी करे और अत्यधिक विलंब के बाद दायर याचिकाओं में राहत प्रदान करे।

9. स्टेट ऑफ़ एम.पी. बनाम नंदलाल जैसवाल [(1986) 4 SCC 566 : AIR 1987 SC 251] में कहा गया कि उच्च न्यायालय अपनी विवेकाधिकारिता का प्रयोग करते हुए सामान्यतः सुस्त और आलसी, या सहमति देने वाले और सुस्त याचिकाकर्ता की सहायता नहीं करता। यदि याचिकाकर्ता की ओर से अत्यधिक विलंब हुआ हो और इस विलंब को संतोषजनक रूप से नहीं समझाया गया हो, तो उच्च न्यायालय अपने रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके हस्तक्षेप करने और राहत देने से इंकार कर सकता है। कहा गया कि यह नियम कई कारकों पर आधारित है। उच्च न्यायालय सामान्यतः विलंबित रूप से असाधारण उपाय का सहारा नहीं लेने देता क्योंकि इससे भ्रम और सार्वजनिक असुविधा हो सकती है और नए अन्याय उत्पन्न हो सकते हैं। यदि रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग अनुचित विलंब के बाद किया जाता है, तो इसका प्रभाव केवल कठिनाई और असुविधा ही नहीं, बल्कि तृतीय पक्षों के लिए अन्याय भी उत्पन्न कर सकता है। यह भी इंगित किया गया कि जब रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाता है, तो अप्रत्याशित विलंब और इस बीच तृतीय पक्षों के अधिकारों के निर्माण को उच्च न्यायालय इस बात के निर्णय में महत्वपूर्ण कारक मानता है कि क्या इस अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया जाए या नहीं।

13 विलंब और ढील (लैचेस) के दृष्टिकोण को दोहराते हुए कि इसके कारण विवेकाधिकार आधारित राहत प्रदान नहीं की जानी चाहिए, इस न्यायालय ने चेन्नई मेट्रोपॉलिटन वाटर सप्लाई एंड सीवरेज बोर्ड बनाम टी.टी. मुरली बाबू, (2014) 4 SCC 108 के मामले में यह कहा है:

"16. इस प्रकार, विलंब और ढील (लैचेस) की सिद्धांत को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। रिट अदालत को प्रस्तुत स्पष्टीकरण और उसकी स्वीकार्यता पर विचार करना आवश्यक है। अदालत को ध्यान में रखना चाहिए कि वह असाधारण और न्यायसंगत विवेकाधिकार का प्रयोग कर रही है। एक संवैधानिक अदालत के रूप में इसका कर्तव्य है कि वह नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा करे, लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करे कि जब कोई पीड़ित व्यक्ति, पर्याप्त कारण के बिना, अपनी सुविधा या इच्छा से अदालत के पास आता है, तो अदालत कानूनी रूप से यह जांचने के लिए बाध्य होगी कि क्या विलंबित अवस्था में याचिका पर विचार किया जाना चाहिए या नहीं। ध्यान रहे, विलंब न्यायसंगतता के मार्ग में बाधा डालता है। कुछ परिस्थितियों में विलंब और ढील घातक नहीं हो सकते, लेकिन अधिकांश परिस्थितियों में अत्यधिक विलंब केवल उस वादी के लिए संकट उत्पन्न करता है जो अदालत के द्वार पर आता है। विलंब एक वादी की निष्क्रियता और अकर्मण्यता को दर्शाता है – एक ऐसा वादी जिसने मूलभूत नियम भूल गए हैं, अर्थात् "टालमटोल समय का सबसे बड़ा चोर है" और दूसरा, कानून किसी को सोकर फिर नया जीवन पाने की अनुमति नहीं देता। विलंब विवाद में जोखिम लाता है और हानि पहुंचाता है।

13. उपर्युक्त विचारों के परिप्रेक्ष्य में, यह अदालत पाती है कि वर्तमान मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसके कारण निम्नलिखित हैं:-

(i) इस अदालत के समक्ष पहुँचने में 363 दिनों की विलंबिता (Laches) का कोई स्पष्ट कारण नहीं दिया गया है।

(ii) आरोपित गबन के आरोप तत्कालीन SPM, ब्लंट स्क्वायर पोस्ट ऑफिस के खिलाफ हैं, न कि गोविंद नारायण मिश्रा/प्रतिवादी के खिलाफ, अतः रिटायरमेंट के समय गोविंद नारायण मिश्रा/प्रतिवादी से ₹20,000/- वसूलने का आदेश असंगत है।

(iii) ट्रिब्यूनल का यह निष्कर्ष कि गोविंद नारायण मिश्रा/प्रतिवादी को उचित सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया, चुनौतीपूर्ण नहीं ठहराया गया है।

14. अतः, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है।

15. लागत आसान की जाती है।

अनुराग

(2025) 6 ILRA 115

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट - ए संख्या 15771 सन् 2024

डॉ. त्रिहुति कुमार

.... प्रतिवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.... प्रतिवादी

याची की ओर से अधिवक्ता:

राजेन्द्र राय

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता:

अवनीश त्रिपाठी, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, एम.एन. सिंह

A. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 - नियम 7 - विभागीय कार्यवाही - प्रमाण का भार: गंभीर दण्ड वाली विभागीय कार्यवाही में यह दायित्व प्रतिष्ठान/विभाग पर होता है कि वह दस्तावेज़ी एवं मौखिक साक्ष्यों सहित अपने गवाह प्रस्तुत करके आरोपों को सिद्ध करे, चाहे अभियुक्त/कार्मिक कार्यवाही में सम्मिलित हो अथवा अनुपस्थित रहे। जांच अधिकारी दोष की कल्पना मात्र से अथवा केवल अभिलेखों के आधार पर निष्कर्ष नहीं निकाल सकता जब तक कि उन अभिलेखों के समर्थन में गवाहों की साक्ष्य न हो। विभाग द्वारा अपने गवाह प्रस्तुत न किए जाने की स्थिति में सम्पूर्ण जांच कार्यवाही विधिक दृष्टि से दूषित हो जाती है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772, रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570, उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 एससीसी 236, सत्येन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325 (परि. 2, 6, 7)

B. विभागीय जांच - एकपक्षीय (Ex-parte) कार्यवाही - विभाग का दायित्व:

यदि अभियुक्त/कार्मिक जांच में उपस्थित नहीं होता है, तब भी विभाग पर यह अनिवार्य दायित्व है कि वह निर्धारित तिथि पर अपने गवाह एवं साक्ष्य प्रस्तुत कर आरोपों को प्रमाणित करे और यह सिद्धि प्रमाणों की प्रबलतम संभाव्यता के आधार पर हो। अभियुक्त की अनुपस्थिति को दोष स्वीकार करने के रूप में नहीं माना

जा सकता एकपक्षीय जांच में भी साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना दण्डादेश पारित नहीं किया जा सकता। *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम टी.पी. लाल श्रीवास्तव, (1996) 10 एससीसी 702* (परि. 12, 13)

C. केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1965 - अनुच्छेद 351-A - प्रक्रियात्मक न्याय: यदि जांच अधिकारी अभियुक्त को अपने ही गवाहों को प्रस्तुत करने एवं उनका मुख्य परीक्षण तथा जिरह करने के लिए बाध्य करता है, तो यह *सिद्धान्तों का गंभीर उल्लंघन* है, क्योंकि साक्ष्य प्रस्तुत करने का दायित्व पूरी तरह से विभाग पर होता है। विभाग द्वारा अपने गवाह प्रस्तुत न करने पर दोषसिद्धि का निष्कर्ष विधिक रूप से टिकाऊ नहीं रहता तथा संपूर्ण विभागीय जांच अवैध और अमान्य हो जाती है। *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशोरी लाल, 2018 (9) एडीजे 397 (डीबी), श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी), उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव, 2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (परि. 2, 10, 11)*

D. न्यायिक समीक्षा - विभागीय जाँच - निरंतर प्रक्रियागत त्रुटियाँ: पूर्व में न्यायालय द्वारा *ताज़ा जाँच* हेतु प्रकरण पुनः भेजे जाने के बावजूद, प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने से संबंधित विधिक सिद्धान्तों का पालन न किए जाने के कारण दंडादेश आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। बार-बार की गई ऐसी अवैधानिक चूक के लिए न्यायालय प्रतिकूल लागत अथवा दोषी अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय/अनुशासनात्मक कार्यवाही पर विचार कर सकता है। (पराग्राफ 15, 16)

रिट याचिका स्वीकृत

उद्धृत निर्णयों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772 (परि. 2)
2. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570 (परि. 2)
3. उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 एससीसी 236 (परि. 2)
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशोरी लाल, 2018 (9) एडीजे 397 (डीबी) (परि. 2)
5. श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (परि. 2)
6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव, 2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (परि. 2)
7. सत्येन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325 (परि. 2)
8. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम टी.पी. लाल श्रीवास्तव, (1996) 10 एससीसी 702 (परि. 12)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. श्री राजेंद्र राय, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, श्री अवनीश त्रिपाठी, उत्तरदाता संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता तथा उत्तरदाता संख्या 1 से 4 की ओर से उपस्थित स्टैंडिंग काउंसल को सुना गया।

2. सुप्रीम कोर्ट और इस न्यायालय ने बार-बार यह स्पष्ट किया है कि विभागीय जांचों में, जिसमें प्रमुख दंड लगाने का मामला हो, यह एक सुप्रसिद्ध सिद्धांत है कि प्रशासन के लिए आवश्यक है कि वह गवाहों को जांच में पेश करे और आरोप को सिद्ध करे, भले ही दोषी व्यक्ति उपस्थित न हो या अपनी रक्षा न करे। यदि वह उपस्थित होता है, तो उसे प्रशासन के गवाहों से क्रॉस-एक्सामिनेशन करने का अधिकार होता है। दोषी व्यक्ति अपनी रक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है या नहीं कर सकता, लेकिन इससे प्रशासन की यह जिम्मेदारी समाप्त नहीं हो जाती कि वह न केवल दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करे, बल्कि गवाहों को भी पेश करे, ताकि दोषी पर लगाये गए आरोपों को "अधिक संभावना के मानक" के अनुसार स्थापित किया जा सके। इसका स्पष्ट उल्लेख सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772, रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक और अन्य, (2009) 2 एससीसी 570, और उत्तरांचल राज्य और अन्य बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 एससीसी 236 में किया है। इसी प्रकार इस न्यायालय की बेंच ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम किशोरी लाल और अन्य, 2018 (9) एडीजे 397 (डीबी) (एलबी), श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (एलबी) और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव और अन्य, 2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (एलबी) में भी यही स्थिति बताई है। यह स्थिति कानून की सुप्रीम कोर्ट में हाल ही में सत्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3325 में भी दोहराई गई है।

3. डॉ. त्रिहुति कुमार, राज्य सरकार के तहत मछली पालन विभाग में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत थे। उन्हें 11.10.2006 को जांच के लिए निलंबित किया गया और उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई। निलंबन का आदेश 11.12.2006 को रद्द कर दिया गया, परंतु अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रही। प्रस्तुतकर्ता को 25.10.2007 को चार्जशीट जारी की गई, जो 18.10.2007 की तिथि वाली थी। प्रस्तुतकर्ता ने 07.04.2008 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया। प्रस्तुतकर्ता को स्वयं को बचाव का उचित अवसर लगभग नहीं दिया गया और 21.10.2008 की तारीख वाला जांच रिपोर्ट प्रस्तुत किया गया। जांच रिपोर्ट के आधार पर, 12.12.2014 को राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुतकर्ता को निम्नलिखित दंड दिया गया: (i) विथहोल्डिंग एंटिग्रिटी, (ii) सहायक निदेशक (मछली पालन) के मूल वेतन स्तर पर पुनः पदावनत करना, और (iii) 23,145/- रुपये की वसूली।

4. प्रस्तुतकर्ता ने उक्त आदेश को इस न्यायालय के समक्ष Writ-A संख्या 21325/2015 के माध्यम से चुनौती दी। इस याचिका को इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 23.04.2015 के दिनांकित निर्णय और आदेश के माध्यम से स्वीकार कर लिया और 12.12.2014 के आदेश को रद्द कर दिया, परंतु उत्तरदाताओं को यह स्वतंत्रता दी कि वे चार्जशीट और प्रस्तुतकर्ता के उत्तर से विभागीय कार्यवाही को आगे बढ़ा सकते हैं। डिवीजन बेंच ने पूर्व विभागीय जांच में पाए गए एक दोष को नोट किया कि जांच के लिए कोई दिन, समय और स्थान

प्रस्तुतकर्ता को निर्धारित और सूचित नहीं किया गया था। न्यायालय ने यह भी कहा कि प्राधिकारी पर यह उत्तरदायित्व है कि वह आरोपों को प्रमाणित करे, और कर्मचारियों के खिलाफ साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद ही उन्हें प्रत्यक्ष साक्षियों के क्रॉस-एग्जामिनेशन का अवसर देना चाहिए, जैसा कि **उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह, 2008 (118) एफएलआर 1112** में कहा गया है।

5. डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए आदेश और नई अवसर के बावजूद, उत्तरदाता अपनी भूल को नहीं समझ पाए। उन्होंने नई जांच शुरू की, जिसमें उन्होंने प्रक्रिया संबंधी दोष को आंशिक रूप से सही किया, परंतु आवश्यक मानक के अनुसार नहीं। परिणामस्वरूप, जांच की प्रक्रिया में अब भी एक मूलभूत दोष विद्यमान है, जो इसे अवैध बनाता है।

6. हमने उस मूल जांच रिकॉर्ड को ध्यानपूर्वक देखा, जिसे 23.04.2015 के दिनांकित आदेश (Writ-A संख्या 21325/2015) के बाद पुनः प्रारंभ किया गया। पाया गया कि उत्तरदाताओं ने प्रस्तुतकर्ता को पर्याप्त अवसर दिया है, अर्थात् उन्हें जांच के लिए दिन, समय और स्थान कई बार और पर्याप्त रूप से सूचित किया गया। हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि प्रस्तुतकर्ता को अपनी भागीदारी और बचाव के लिए लंबे समय तक पर्याप्त अवसर मिला। रिकॉर्ड में कई बार जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुतकर्ता को उपस्थित होने और अपने बचाव के लिए क्रॉस एग्जामिनेशन का अवसर लेने हेतु आमंत्रित किया गया। परन्तु सवाल यह है कि किसके गवाहों का क्रॉस-एग्जामिनेशन ? प्रारंभिक पैराग्राफ में उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार और उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 की नियम 7 के अनुसार, जहाँ गंभीर दंड लगाया जा सकता है, उस स्थिति में आरोप सिद्ध करने की जिम्मेदारी नियोक्ता (स्थापना) की होती है। इसका अर्थ यह है कि नियोक्ता को पहले दस्तावेज़ी साक्ष्य और मौखिक साक्ष्य दोनों प्रस्तुत करने होते हैं। मौखिक साक्ष्य, जो कि गवाहों के माध्यम से प्रस्तुत होते हैं, दस्तावेज़ों को जीवंत बनाते हैं। बिना गवाहों के, दस्तावेज़ केवल निष्क्रिय कागज ही होते हैं और उनसे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। जांच अधिकारी नियोक्ता के साथ खुद को जोड़कर नहीं सोच सकता, बल्कि उसे निष्पक्ष मध्यस्थ के रूप में कार्य करना चाहिए और कर्मचारी/विचाराधीन व्यक्ति के खिलाफ दोष का पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए। दोष का कथानक नियोक्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ और मौखिक साक्ष्य के माध्यम से लिखा जाना चाहिए।

7. गवाह, जो दस्तावेज़ी साक्ष्य के अलावा प्रस्तुत किए जाने हैं, जिन्हें संस्थान की ओर से पेश किया जाना है, वे संस्थान के अपने गवाह होंगे। और फिर इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि दोषी निर्दिष्ट तिथि, समय और स्थान पर जांच में उपस्थित होता है या नहीं। संस्थान का दायित्व है कि वह अपने गवाहों और दस्तावेज़ी साक्ष्यों के माध्यम से अपनी बात साबित करे, बशर्ते दोषी को जांच की तिथि, समय और स्थान की सूचना दी गई हो। यह नहीं है कि जांच अधिकारी इस दृष्टिकोण के साथ बैठें कि आरोप अपने आप प्रमाणित हैं और अब दोषी को अपनी ओर से गवाह बुलाने होंगे और किसी तरह अपने गवाहों के साक्ष्यों द्वारा आरोपों को खारिज करना होगा। आरोपों को साबित करना संस्थान का कर्तव्य है और इसमें मौखिक साक्ष्य, अर्थात् गवाहों का परीक्षण, अनिवार्य है। यदि दोषी भाग नहीं भी लेता, तब भी आरोपों को बाहरी साक्ष्यों (aliunde) के

माध्यम से साबित करना संस्थान का दायित्व है, जिसमें मौखिक साक्ष्य शामिल होना चाहिए। यह एक प्रमुख दंडात्मक कार्यवाही में आरोपों के प्रमाण के लिए अत्यंत आवश्यक सिद्धांत है।

8. उस मामले में दृष्टिकोण, जिसमें दोषी उपस्थित नहीं होता (जैसा कि इस मामले में हुआ), जो प्रधान सचिव द्वारा व्यक्तिगत हलफनामे में प्रस्तुत किया गया है, कानून के प्रति अज्ञानता में आक्रामक रवैये के रूप में प्रतीत होता है, वह शिकायतकर्ता के खिलाफ आरोपों के प्रमाण की ओर नहीं ले जाएगा। दोषी की जांच में भाग न लेने की conducta निश्चित रूप से सराहनीय नहीं है। इस हद तक प्रधान सचिव अपने व्यक्तिगत हलफनामे में सही हैं कि कई तिथियाँ निर्धारित करने और उन्हें सूचित करने के बावजूद, दोषी जांच में उपस्थित नहीं हुआ। लेकिन, प्रधान सचिव कानून की समझ में इस हद तक गलत हैं जब वे कहते हैं कि दोषी द्वारा अपनी गवाहों को पेश न करना और उनके क्रॉस-एग्जामिनेशन (विरोधी गवाहों से प्रश्न करना) न करना दोषी की गलती थी। के. रविंद्र नाइक, प्रधान सचिव (मछली पालन), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, को यह भी नहीं लगता कि उन्हें 'प्रमुख परीक्षण' (examination-in-chief) और 'क्रॉस-एग्जामिनेशन' का सही अर्थ मालूम है। किसी प्रशिक्षित कानूनी दिमाग के लिए यह कल्पना भी भयंकर होगी कि कोई व्यक्ति अपने ही गवाहों का क्रॉस-एग्जामिनेशन कर सकता है।

9. एक पक्ष अपने गवाहों के साक्ष्य को प्रमुख परीक्षण में पेश करता है और दूसरे पक्ष द्वारा पेश किए गए गवाहों का क्रॉस-एग्जामिनेशन करता है। प्रधान सचिव ने पूरे हलफनामे में शिकायतकर्ता को इसके लिए दोषी ठहराया कि उसने अपने गवाहों को पेश नहीं किया और उनका क्रॉस-एग्जामिनेशन नहीं किया। यह एक अक्षम्य गलती है और विभागीय जांच के मूल सिद्धांतों के प्रति प्रधान सचिव की अज्ञानता को दर्शाती है। हम शीघ्र ही दोषी की अनुपस्थिति के मुद्दे पर भी विचार करेंगे, जिसमें प्रधान सचिव की शिकायत सही है, लेकिन अपनाई गई कार्यवाही की दिशा गलत थी। यहाँ हम कुछ अनुच्छेदों का हवाला देंगे, जहां गवाहों से पूछताछ करके किसी दोषी के खिलाफ आरोपों के सबूत के बारे में प्रिंसिपल सेक्रेटरी की कानून की समझ दिखाई देती है:-

“16. कि जांच अधिकारी डॉ. केदार नाथ द्वारा की गई जांच के दौरान, तत्कालीन उप निदेशक मत्स्य मुख्यालय डॉ. टी. कुमार को सुनवाई एवं उनके द्वारा प्रस्तावित गवाहों के जिरह हेतु उपस्थित होने के लिए निर्देशित किया गया था, परंतु वे अधिकांश तिथियों पर एक न एक बहाने से अनुपस्थित रहे, जो *prima facie* उनके अनसहयोगी रवैये तथा मामले को जानबूझकर विलम्बित करने की मंशा को प्रदर्शित करता है।

18. कि जांच अधिकारी डॉ. केदार नाथ, उप निदेशक मत्स्य (मत्स्य) द्वारा दिनांक 16.08.2019 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता डॉ. टी. कुमार को यह अवगत कराया गया कि आरोप संख्या 01, 06 एवं 07 के लिए उनके द्वारा प्रस्तावित गवाहों में से श्री के. डब्ल्यू. वारसी कभी उप निदेशक वाराणसी पद पर नियुक्त नहीं रहे। इसी प्रकार श्री आर. बी. वर्मा मत्स्य विभाग में कभी उप निदेशक नहीं रहे। अतः आरोप संख्या 01, 06 एवं

07 के संबंध में उपर्युक्त गवाहों को जिरह हेतु बुलाने की याचिकाकर्ता की मांग जांच अधिकारी द्वारा अनुचित पाई गई।

19. कि गवाहों की साक्ष्य/जिरह के संदर्भ में, डॉ. टी. कुमार को यह भी अवगत कराया गया कि गवाह श्री शंकर लाल, वरिष्ठ लिपिक (सेवानिवृत्त) ने दिनांक 02.08.2019 के अपने पत्र द्वारा पूर्व जांच अधिकारी को सूचित किया कि वे अस्वस्थ हैं, चलने-फिरने/सुनने और देखने में असमर्थ हैं तथा उक्त मामले में कहने हेतु उनके पास कुछ नहीं है तथा वे आने-जाने में असमर्थ हैं। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तावित अन्य गवाह श्री बृजेश कुमार सिंह, सहायक सांख्यिकी अधिकारी, आगरा ने अपने पत्र दिनांक 03.08.2019 के माध्यम से उप निदेशक मत्स्य, आगरा को सूचित किया कि नियुक्ति की तिथि से अब तक उनकी पोस्टिंग संभागीय कार्यालय आगरा में ही रही है और वे डॉ. टी. कुमार के अधीन जनपद अलीगढ़ एवं हाथरस में कभी नियुक्त नहीं रहे, अतः उनका मामले से कोई संबंध नहीं है।

20. कि जांच अधिकारी ने डॉ. टी. कुमार को यह भी अवगत कराया कि उनके द्वारा प्रस्तावित अन्य गवाह श्री असलम, फर्म स्वामी, अलीगढ़ का पता स्पष्ट रूप से नहीं दिया गया था। जांच में यह पाया गया कि उक्त स्थान श्री राशिद, फिश एक्वेरियम 25/1 खिरनी, अलीगढ़ गेट का है। उप निदेशक आगरा द्वारा दिनांक 20.09.2019 के पत्र के माध्यम से जांच अधिकारी/उप निदेशक, मत्स्य (मुख्यालय) को अवगत कराया गया कि उक्त फर्म अथवा कोई दुकान स्थल पर नहीं पाई गई। प्रस्तावित गवाह श्री लाल सिंह, सेवानिवृत्त मत्स्यकार की अचानक मृत्यु होने की जानकारी पूर्व जांच अधिकारी को उप निदेशक मत्स्य, अलीगढ़ मंडल द्वारा दिनांक 29.05.2019 को प्रदान की गई।

21. कि दिनांक 27-06-2019 एवं 05-09-2019 को गवाह श्री हकीम अली, वाहन चालक, अलीगढ़; श्री राम स्वरूप, वरिष्ठ मत्स्य निरीक्षक, औरैया; श्री नज़ीर खान, मत्स्य निरीक्षक, महोबा, सेवानिवृत्त तथा दिनांक 20-08-2019 को पुनः श्री राम स्वरूप, वरिष्ठ मत्स्य निरीक्षक, औरैया जिरह हेतु उपस्थित हुए, परंतु याचिकाकर्ता डॉ. टी. कुमार सूचना के बावजूद उपस्थित नहीं हुए। पूर्व जांच अधिकारी द्वारा दिनांक 12-06-2019 को याचिकाकर्ता की उपस्थिति में गवाहों का कथन/जिरह की गई, जिसमें श्री एन. पी. सिंह, मत्स्य निरीक्षक तथा श्री अखिलेश शर्मा, वाहन प्रभारी/मत्स्य विकास अधिकारी, अलीगढ़ के लिखित बयान लिए गए।

22. कि याचिकाकर्ता डॉ. टी. कुमार द्वारा गवाहों की जिरह हेतु किए गए अनुरोध के संबंध में विशेष सचिव/जांच अधिकारी डॉ. सरोज कुमार के पत्र दिनांक 03.12.2021 के माध्यम से उपर्युक्त समस्त पहलुओं से अवगत कराते हुए याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि पूर्व जांच अधिकारी द्वारा उनके प्रस्तावित गवाहों की जिरह कराने हेतु गंभीर एवं महत्वपूर्ण प्रयास किए गए तथा उन्हें अपना पक्ष एवं साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु पर्याप्त अवसर भी प्रदान किए गए, परंतु उन्होंने जांच अधिकारी को पूर्ण सहयोग नहीं प्रदान किया और अधिकांश तिथियाँ पर अनुपस्थित रहकर जिरह के प्रति गंभीरता नहीं दिखाई। याचिकाकर्ता द्वारा समय-समय पर गवाहों की सूची एवं नाम परिवर्तित किए गए तथा कुछ गवाहों के नाम एवं पते अस्पष्ट लिखे गए। कुछ गवाह, जो

मामले से संबंधित नहीं थे, उनके जिरह हेतु भी अनुरोध किया गया। उनके द्वारा प्रस्तावित गवाहों एवं जिरह के अनुरोध पर पूर्व जांच अधिकारी द्वारा परिश्रमपूर्वक कार्यवाही एवं प्रयास किए गए। जांच अधिकारी के उपर्युक्त पत्र दिनांक 03.12.2021 के माध्यम से डॉ. टी. कुमार को यह अवगत कराया गया कि वे पूर्व जांच अधिकारी तथा वर्तमान जांच अधिकारी दोनों के साथ जांच में सहयोग नहीं कर रहे हैं और किसी न किसी प्रकार से जांच को लंबित रखने के प्रयास कर रहे हैं।”

(न्यायालय द्वारा बलाघात अनुवादित)

10. प्रधान सचिव के शपथपत्र के अनुच्छेदों का अवलोकन करने पर अत्यन्त चकित कर देने वाला तथ्य यह प्रकट होता है कि स्वयं प्रधान सचिव विभागीय कार्यवाही संचालित करने की मूल आवश्यकताओं को समझते ही नहीं हैं। शपथपत्र से बिल्कुल भी यह प्रतीत नहीं होता कि अभियुक्त/याची के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने हेतु विभाग द्वारा कोई भी साक्षी प्रस्तुत किया गया हो। एक भी ऐसे साक्षी का नाम शपथपत्र में उल्लिखित नहीं है जिसे विभाग ने आरोपों के समर्थन में प्रस्तुत किया हो। यदि कोई साक्षी होता तो विभाग के लिए उन्हें प्रस्तुत करने में तनिक भी कठिनाई न होती। इसके विपरीत, व्यक्तिगत शपथपत्र के अनुच्छेदों से निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि विभाग ने याची से यह अपेक्षा की कि वह प्रतिरक्षा में जिन साक्षियों पर निर्भर है, उनके नाम बताए। तत्पश्चात् शपथपत्र यह इंगित करता है कि उनमें से कुछ साक्षियों ने यह कहा कि वे अप्रासंगिक हैं अथवा उनके पते गलत हैं, कोई बीमार बताया गया और कुछ उपस्थित भी हुए, जिन्हें याची ने जिरह नहीं की। यह वस्तुतः घोड़े के आगे गाड़ी लगाने के समान है, क्योंकि याची पर यह दायित्व बिल्कुल नहीं था कि वह तब तक अपनी प्रतिरक्षा में साक्षी प्रस्तुत करे, जब तक विभाग आरोपों को सिद्ध करने हेतु अपना पक्ष, सहित साक्षी, प्रस्तुत न कर दे।

11. यह दायित्व याची पर नहीं है कि वह विभागीय जांच अधिकारी के समक्ष अपना निर्दोष होना साक्ष्य – मौखिक अथवा दस्तावेजी – के माध्यम से सिद्ध करे। इसके ठीक विपरीत, यह विभाग का दायित्व है कि वह याची के दोष को सिद्ध करे, भले ही प्रमाण के प्रबल प्रायिकता के मानदंड पर ही क्यों न हो। इसके लिए आवश्यक था कि विभाग अपने दस्तावेजी साक्ष्य तथा साक्षियों को एक-एक करके प्रस्तुत करता, जिनकी, यदि याची जांच में उपस्थित होता, तो जिरह की जा सकती थी। इसके पश्चात्, याची को अपनी प्रतिरक्षा के साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु समय दिया जाना चाहिए था। यदि वह ऐसा नहीं करता, तब भी विभाग पर आरोपों को सिद्ध करने हेतु अपने दस्तावेज एवं साक्षी प्रस्तुत करने का दायित्व समाप्त नहीं हो जाता। यहाँ, निर्विवाद रूप से विभाग ने कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया। पूरा विवरण केवल उन्हीं साक्षियों का है जिनके नाम याची ने अपनी प्रतिरक्षा में दिए थे। भले ही वे साक्षी उपस्थित न हुए हों या याची ने उन्हें प्रस्तुत न किया हो, इससे आरोप स्वतः सिद्ध नहीं हो जाते।

12. यह तथ्य अत्यन्त स्तब्धकारी है कि बार-बार यह कहा गया कि याची ने “अपने साक्षियों का जिरह नहीं किया”। कोई भी व्यक्ति अपने ही साक्षियों की जिरह नहीं करता, यह विधिक शिक्षा प्राप्त किसी भी व्यक्ति के लिए बिल्कुल सामान्य ज्ञान है। किन्तु, प्रतिवादियों ने ठीक इसी प्रकार की बात की है, जैसा कि प्रधान

सचिव के व्यक्तिगत शपथपत्र से स्पष्ट है। उन्होंने याची के जांच में उपस्थित न होने का दोष आरोपित किया है, जो तथ्यात्मक रूप से सही है, परन्तु इससे आरोप सिद्ध कैसे हो गए, इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। यह कहीं भी दर्शाया नहीं गया है कि विभाग की ओर से आरोप सिद्ध करने हेतु कौन-कौन से साक्षी प्रस्तुत किए गए। यदि दंडित-कर्मचारी नियत तिथि, समय और स्थान पर जांच में उपस्थित नहीं होता है – जैसा कि इस मामले में तिथि निर्धारित एवं सूचित थी – तो जांच अधिकारी अथवा जांच समिति का क्रियाविधि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम टी.पी. लाल श्रीवास्तव, (1996) 10 एससीसी 702 में प्रतिपादित की गई है :-

“4. वर्तमान विशेष अनुमति याचिका, दिनांक 15-03-1993 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका संख्या 12480/1987 में पारित निर्णय के विरुद्ध उत्पन्न होती है। निर्विवाद स्थिति यह है कि जब प्रतिवादी वरिष्ठ मार्केटिंग निरीक्षक के पद पर कार्यरत थे, तब दिनांक 23-11-1984 को उन पर आरोपपत्र (चार्ज-शीट) सेवा किया गया, जिसमें उनसे राज्य उत्तर प्रदेश के बाहर गेहूँ के अनधिकृत आवागमन में गंभीर अनियमितताएँ करने के आरोपों के संबंध में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने को कहा गया था। आरोपपत्र का उत्तर प्रस्तुत करने के स्थान पर प्रतिवादी लम्बे समय तक टालमटोल करते रहे। प्रतिवादी को संबोधित कई पत्र भी निष्प्रभावी सिद्ध हुए। फलस्वरूप, अपीलकर्ताओं ने 26-06-1987 को यह निर्णय लिया कि प्रतिवादी, गबन के दोषी पाए गए हैं तथा परिणामस्वरूप उन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। प्रतिवादी ने उक्त आदेश को रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए आदेश रद्द कर दिया कि आवश्यक अभिलेख प्रतिवादी को उपलब्ध नहीं कराए गए और इसलिए की गई कार्रवाई विधि-विरुद्ध है। हमें उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता; वास्तविक स्थिति यह है कि यद्यपि प्रतिवादी लगातार उत्तर देने से बचते रहे, तथापि अपीलकर्ताओं द्वारा कोई भी विभागीय/अनुशासनात्मक जाँच नहीं की गई। चूँकि प्रतिवादी ने उत्तर प्रस्तुत करने से परहेज़ किया, इसलिए उसने अपने उत्तर प्रस्तुत करने का अधिकार त्याग दिया। परन्तु इसके बावजूद भी अपीलकर्ता इस दायित्व से मुक्त नहीं हो जाते कि आरोप सिद्ध होने अथवा न होने की पुष्टि के लिए एकतरफा (ex parte) जाँच कराई जाए। यदि जाँच अधिकारी यह पाता है कि आरोप सिद्ध हैं, तो वह अपनी रिपोर्ट अनुशासनात्मक प्राधिकारी को प्रस्तुत करेगा। अनुशासनात्मक प्राधिकारी प्रतिवादी को जाँच प्रतिवेदन की प्रति उपलब्ध कराएगा तथा प्रस्तावित कार्रवाई के संबंध में उसका स्पष्टीकरण प्राप्त करेगा। यदि प्रतिवादी कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता है तो उसे विचाराधीन लेकर विधि के अनुसार उपयुक्त निर्णय पारित किया जाएगा। तब तक प्रतिवादी को निलंबित माना जाएगा।”

(न्यायालय द्वारा बलाघात अनुवादित)

13. यह दायित्व प्रतिष्ठान (Establishment) पर था कि वह निर्धारित तिथि, समय और स्थान पर साक्ष्य प्रस्तुत करे, और यदि याचिकाकर्ता अनुपस्थित रहता - जैसा कि प्रमुख सचिव ने अपने हलफनामे में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है तथा जो मूल अभिलेखों से भी सिद्ध होता है - तो प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक्स-पार्टी कार्यवाही करनी चाहिए थी। एक्स-पार्टी जाँच का तात्पर्य यह है कि प्रतिष्ठान को प्रस्तुतिकरण

अधिकारी (Presenting Officer) के माध्यम से निर्धारित तिथि, समय और स्थान पर जाँच अधिकारी के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने होते हैं। अनुपस्थित रहने वाला याचिकाकर्ता स्वाभाविक रूप से प्रतिष्ठान के गवाहों का प्रतिपरीक्षण (cross-examination) करने के अधिकार से तथा अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने के अधिकार से वंचित हो जाता। परन्तु केवल याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के आधार पर, बिना प्रतिष्ठान द्वारा आरोपों को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किए, दोष सिद्धि का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। आरोप-पत्र में उल्लिखित आरोप अपने-आप में प्रमाण नहीं होते; उन्हें जाँच अधिकारी के समक्ष प्रतिष्ठान द्वारा साक्ष्य के माध्यम से सिद्ध करना आवश्यक होता है। यह कार्य इस मामले में स्पष्ट रूप से नहीं किया गया है।

14. हमने इस मामले में तलब किए गए जाँच के मूल अभिलेखों का अवलोकन किया है और पूरे अभिलेख में कहीं भी यह परिलक्षित नहीं होता कि निर्धारित तिथि, समय और स्थान पर याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति के दौरान प्रतिष्ठान के किसी भी गवाह की गवाही दर्ज की गई हो। जबकि ऐसे मामलों में यही एकमात्र प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए थी, विशेषकर जब याचिकाकर्ता, विधिवत नोटिस प्राप्त होने के बावजूद, जाँच अधिकारी द्वारा निर्धारित विभिन्न तिथियों पर अनुपस्थित रहा।

15. अंततः, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मुख्य सचिव की जाँच संबंधी विधि-समझ पर टिप्पणी करने से पूर्व उन्हें अपना पक्ष स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया। उनके व्यक्तिगत हलफनामे के आधार पर ही इस रिट याचिका की सुनवाई की गई है। उन्होंने विधि की अपनी समझ को उजागर किया है तथा उसके त्रुटिपूर्ण पहलुओं की ओर हमने संकेत किया है। अतः जो भी टिप्पणियाँ की गई हैं, वे बिना अवसर प्रदान किए नहीं की गई हैं। ये टिप्पणियाँ इसलिए भी आवश्यक हैं क्योंकि इस राज्य में सैकड़ों नहीं, बल्कि सम्भवतः हजारों विभागीय जाँचें इसी मूलभूत त्रुटि के कारण न्यायालय द्वारा निरस्त की जानी पड़ती हैं – अर्थात् राज्य के अधिकारियों के बीच विभागीय जाँच की प्रक्रिया को लेकर विधिक समझ का अभाव। अधिकांश जाँचों में दण्डाधिकारी तथा जाँच अधिकारी यह मान लेते हैं कि क्योंकि वे प्रतिष्ठान के अधिकारी हैं, इस कारण आरोप स्वयं ही प्रमाणित माने जा सकते हैं। उनकी कार्यप्रणाली में प्रतिष्ठान को आरोप सिद्ध करने की आवश्यकता शायद ही कभी महसूस की जाती है। और अवसर देने के नाम पर वे व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान दोषारोपित अधिकारी से अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए कहते हैं, जबकि विधिक रूप से अव्यवस्था सिद्ध करना प्रतिष्ठान का दायित्व होता है। इससे शासन एवं उसकी विभिन्न संस्थाओं के सार्वजनिक समय तथा धन की अत्यधिक बर्बादी होती है।

16. जैसा कि इस मामले से स्पष्ट होता है, इस न्यायालय द्वारा की गई पुनर्निर्देशन (remand) – जिसमें विधि के अनुरूप तथा प्रासंगिक प्राधिकारों का उल्लेख करते हुए पुनः जाँच/अन्वेषण किए जाने का निर्देश था – ने भी उस एकमात्र केंद्रित और दृढ़ निश्चयी प्रवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं डाला, जिसके तहत राज्य के विभिन्न प्रतिष्ठानों के अधिकारी विभागीय कार्यवाहियों के संचालन में आवश्यक एवं कल्याणकारी प्रक्रिया का उल्लंघन करते रहते हैं। पूर्व में यह सुझाव भी दिया गया था कि राज्य के अधिकारियों को विभागीय जाँच/विवेचना करना सिखाने हेतु प्रशिक्षण के लिए भेजा जाना चाहिए। हमें नहीं लगता कि इसका कोई फलदायी परिणाम होगा।

कारण यह है कि इस विषय पर प्रचुर संख्या में न्यायिक निर्णय उपलब्ध हैं, जिनमें से अधिकांश सर्वोच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय के हैं, किन्तु सरकार अथवा उसके अन्य प्रतिष्ठानों द्वारा उनका अनुपालन नहीं किया गया है। यह केवल समझ की कमी के कारण नहीं है, क्योंकि वहाँ प्रतिपादित सिद्धांत जटिल नहीं हैं, अपितु समझने एवं पालन करने में सरल हैं। इनका उल्लंघन मुख्यतः इस कारण होता है कि एक धारणा है कि विधि वही नहीं है जो न्यायालय कहता है। हमें नहीं लगता कि जाँच अधिकारियों के प्रशिक्षण का कोई उपयोग होगा। उन्हें न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक आवश्यकताओं का अनुपालन करना ही होगा, जो सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा विभागीय कार्यवाहियों के संचालन में निर्धारित की गई हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो जाँच अधिकारी तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी, यहाँ तक कि अपीलीय प्राधिकारी के विरुद्ध भी दंडात्मक लागत की वसूली के अतिरिक्त, ऐसे प्राधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई की संस्तुति भी सरकार को की जा सकती है, जो निरन्तर सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि की अवहेलना करते हैं। वर्तमान मामले में, हम ऐसा करने के प्रति इच्छुक नहीं हैं।

17. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। दिनांक **16.05.2024** को प्रमुख सचिव (मत्स्य), उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ द्वारा पारित आदेश को निरस्त किया जाता है। यदि प्रतिवादीगण ऐसा करना चाहें, तो वे याची के विरुद्ध केंद्रीय सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियमावली, 1965 के अनुच्छेद 351-ए के अंतर्गत, इस निर्णय में दिए गए मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए विभागीय जाँच/अन्वेषण दुबारा प्रारंभ कर सकते हैं; और यदि याची दोषी पाया जाता है, तो विधि द्वारा अनुमेय दंड आरोपित कर सकते हैं, जो संज्ञेय (condign) हो। तथापि, यदि पुनः कार्यवाही की जाती है, तो सरकार उस दंड से उच्चतर दंड आरोपित नहीं करेगी जो निरस्त आदेश में प्रदान किया गया था। रोकी गई पेंशन की आंशिक राशि के बकाया का भुगतान याची को किया जाएगा, जो विभागीय कार्यवाही के परिणाम पर निर्भर होगा, यदि ऐसी कार्यवाही आरंभ की जाती है। यदि नयी विभागीय कार्यवाही प्रारंभ नहीं की जाती है, तो याची अपनी घटी हुई पेंशन की बकाया राशि के भुगतान का हकदार होगा, साथ ही **6%** साधारण ब्याज उस तिथि से देय होगा, जिस दिन घटी हुई पेंशन देय थी।

18. व्यय/खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं।

19. अभिलेखों को अधिवक्ता महोदय (स्टैंडिंग काउंसिल) को तत्काल लौटा दिया जाए, ताकि उन्हें सुरक्षित रूप से संबद्ध प्रतिवादी प्राधिकारियों को भेजा जा सके।

20 इस आदेश की प्रतिलिपि प्रमुख सचिव (मत्स्य), उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ; निदेशक (मत्स्य), निदेशालय मत्स्य, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; वित्त एवं लेखाधिकारी, निदेशालय मत्स्य, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; तथा उप निदेशक (मत्स्य), कानपुर मण्डल, कानपुर को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा प्रेषित की जाए।

(2025) 6 ILRA 124

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 06.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

रिट - ए संख्या 18453 वर्ष 2024

राकेश कुमार त्यागी

... याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

... प्रतिवादी

याचियों की ओर से अधिवक्ता :

सुजीत कुमार राय

प्रतिवादियों की ओर से अधिवक्ता :

मुख्य शासकीय अधिवक्ता, सत्यम सिंह

क. सेवा विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 एवं 300-A - भुगतान उपबंध अधिनियम, 1972 - धारा 4(6) - उत्तर प्रदेश सहकारी समितियाँ कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 - विनियम 84 एवं 96 - सेवानिवृत्त कर्मियों की अनुग्रह राशि एवं अन्य देयों की रोक

याचिकाकर्ता, जो जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, गाज़ियाबाद में वरिष्ठ शाखा प्रबंधक के पद से सेवानिवृत्त हुए, द्वारा बैंक के उस निर्णय को चुनौती दी गई जिसके अंतर्गत उनकी सेवानिवृत्ति के उपरांत देय लाभों में से ₹19,25,000 की राशि रोकी गई। उक्त राशि इस आधार पर रोकी गई कि याचिकाकर्ता द्वारा ऋण स्वीकृत किए गए थे जो बाद में गैर-निष्पादित परिसम्पत्तियाँ (NPA) बन गए।

अदालत ने यह प्रतिपादित किया कि बिना किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही अथवा आपराधिक दोषसिद्धि के ऐसे कटौती/रिकवरी किया जाना असंवैधानिक तथा अवैध है। भुगतान उपबंध अधिनियम, 1972 की धारा 4(6) तथा संविधान के अनुच्छेद 300-A के अंतर्गत अनुग्रह राशि एवं सेवानोपरांत लाभ संरक्षित हैं। सिद्ध दुराचार के आधार पर सेवा समाप्ति के अभाव में इन लाभों से किसी भी प्रकार की रिकवरी निषिद्ध है।

प्रशासनिक निर्णय अथवा आंतरिक संकल्प इन वैधानिक संरक्षणों को अधिलेखित नहीं कर सकते। अतः आक्षेपित आदेश एवं संकल्प निरस्त किए जाते हैं तथा बैंक को निर्देशित किया जाता है कि रोकी गई राशि ब्याज सहित याचिकाकर्ता को निर्गत की जाए। (अनुच्छेद 22 से 35)

उद्धृत वाद-नज़ीरों की सूची :

1. यू.पी. को-ऑप. यूनियन एवं अन्य बनाम प्रभु दयाल श्रीवास्तव एवं अन्य, (1988) एस.सी.सी. ऑनलाइन इला0 302

2. झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य, (2013) 12 एससीसी 210

(निर्णय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर.)

1. याचिकाकर्ता ने जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, गाज़ियाबाद के मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा दिनांक **18.11.2024** को पारित आदेश तथा उक्त बैंक की प्रबंधन समिति के दिनांक **08.10.2024** के संकल्प को चुनौती दी है, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता की अवैतनिक सेवापरांत लाभों में से **₹19,25,500/-** की राशि को इस आधार पर रोक लिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा वितरित कुछ ऋण अक्रिय संपत्ति (**Non-Performing Assets - NPA**) में परिवर्तित हो गए, जो कथित रूप से उन ऋणों के ग्राहकों को लापरवाहीपूर्वक वितरण किए जाने के कारण हुआ।

2. याचिकाकर्ता **31.12.2022** को जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, गाज़ियाबाद (संक्षेप में, "बैंक") की सेवा से सीनियर ब्रांच मैनेजर के पद से सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने बैंक की सेवा **12.07.1988** को क्लर्क-कम-कैशियर के रूप में प्रारंभ की तथा निरंतर पदोन्नति प्राप्त करते हुए अंततः उस पद पर पहुँचे जिसे उन्होंने सेवानिवृत्ति के समय संभाला। याचिकाकर्ता का कहना है कि उनका सेवा-अभिलेख निष्कलंक रहा है। सेवानिवृत्ति पर उनके साथ केवल अंशदायी भविष्य निधि (Contributory Provident Fund) की धनराशि ही भुगतान की गई तथा अन्य कोई सेवापरांत लाभ नहीं दिया गया। अतः याचिकाकर्ता ने **01.01.2024** को बैंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को आवेदन प्रस्तुत कर अपने सभी सेवापरांत लाभों के भुगतान की माँग की तथा उन ऋणों के संबंध में अपनी स्थिति स्पष्ट की जिन्हें उन्होंने स्वीकृत किया था और बाद में वे अक्रिय संपत्ति (एनपीए) में बदल गए।

3. दिनांक **18.01.2024** को याचिकाकर्ता ने एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने उन अन्य अधिकारियों की लापरवाही की ओर संकेत किया जो संबंधित शाखा में पदस्थ थे और जिनकी ओर से ऋणों के समय पर वसूली हेतु आवश्यक कदम नहीं उठाए गए। इसके पश्चात **12.03.2024** को भी याचिकाकर्ता ने बैंक को एक और आवेदन देकर अपने सभी सेवापरांत लाभों के पूर्ण भुगतान की माँग की। याचिकाकर्ता ने **16.04.2024** को भी एक अतिरिक्त आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने यह उल्लेख किया कि भुगतान-अधिभार अधिनियम, 1972 (Payment of Gratuity Act, 1972) के प्रावधानों के अनुसार सेवानिवृत्त कर्मचारी का ग्रेच्युटी न तो जब्त की जा सकती है और न ही समायोजित की जा सकती है।

4. उत्तर प्रदेश सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1965 (संक्षेप में, "1965 का अधिनियम") के तहत की गई सभी प्रयासों में विफल रहने के उपरांत, याचिका ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक **22.06.2024** को बैंक को एक विधिक नोटिस प्रेषित कराया। उक्त माँग के प्रत्युत्तर में, बैंक ने विधिक नोटिस का उत्तर अधिवक्ता को

संबोधित पत्र दिनांक 26.07.2024 तथा याची को संबोधित एक अन्य पत्र दिनांक 22.08.2024 के माध्यम से दिया। इन दोनों पत्रों से सामूहिक रूप से यह परिलक्षित होता है कि एक ओर याची के पक्ष में अवशिष्ट समस्त सेवानोत्तर देयों की कुल राशि उनके ब्यौरे सहित दर्शाई गई है, और दूसरी ओर, उन कुल ऋण राशियों का विवरण दिया गया है जो कि दस ऋणग्राहियों के पक्ष में याची द्वारा कथित रूप से लापरवाहीपूर्ण ढंग से स्वीकृत किए गए ऋणों के कारण *अमानक परिसंपत्तियाँ (Non-Performing Assets)* में परिणत हो चुके हैं। उन ऋणों का ब्यौरा भी संलग्न किया गया है। सारतः, इन दोनों जापनों से स्पष्ट है कि याची की सेवानोत्तर देय राशियाँ कुल ₹33,61,045/- (रुपए तैंतीस लाख इकसठ हजार पैंतालीस) हैं, जबकि याची द्वारा कथित रूप से लापरवाहीपूर्वक स्वीकृत किए गए ऋणों के परिणामस्वरूप *अमानक परिसंपत्तियाँ* में परिवर्तित समस्त ऋणों की राशि, दिनांक 22.07.2024 तक, ₹19,25,397.77 (रुपए उन्नीस लाख पच्चीस हजार तीन सौ सत्तानवे और सत्तर पैसे) है। याची के पक्ष में सेवानिवृत्ति उपरांत देय उक्त राशियाँ निम्नलिखित मदों के अंतर्गत देय हैं: (सूची आगे प्रदर्शित की जानी है)

5. पिटीशनर के नाम पर रिटायरमेंट के बाद की बकाया रकम, जिसके वह रिटायरमेंट के समय हकदार थे, नीचे दिए गए हेड्स के तहत देनी होगी:

क्रम संख्या	आइटम	अमाउंट
1	बोनस	221561.00
2	इंसेंटिव	135862.00
3	ग्रेज्युटी	2624146.00
4	ग्रुप इंश्योरेंस	94079.00
5	एर्न लीव	285397.00
	टोटल	3361045.00

6. दूसरी तरफ, Rs.19,25,397.77 की कुल रकम, जो पिटीशनर द्वारा मंजूर और बांटे गए बैंक लोन के लिए है, जो नॉन-परफॉर्मिंग एसेट बन गए हैं, नीचे टेबल के रूप में दिखाए गए हैं:

क्रम संख्या	उधारकर्ता का नाम	पिता / पति का नाम	पता	ऋण खाता संख्या	स्थिति दिनांक 22.07.2024 तक		
					मूलधन	ब्याज	कुल राशि
1	नीरज	परमनन्द	हौ. नं. 93, गाँव नगला	8080/150	89,776	84,788.68	74,564.68

			आँखु, थाना नीवाड़ी, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद				
2	इंदरपाल	शिशराम	गाँव हृदयपुर मंडोला, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद	8080/152	1,65,149	1,52,249.97	3,17,398.97
3	पवन कुमार	विषम्बर	गाँव लतीफपुर टिबड़ा, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद	8080/164	42,755	---	42,755.00
4	राजेंद्र	रघुवीर	गाँव नगला आँखु, थाना नीवाड़ी, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद	8080/166	83,483	95,594.98	1,79,077.98
5	हनीफ़	मकसूद	गाँव नगला आँखु, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद	8080/167	81,074	88,798.14	1,69,872.14
6	बृजमोहन	सत्यप्रकाश	गाँव नगला आँखु, तहसील	8080/168	1,02,130	1,11,805.79	2,13,935.79

			मोदीनगर, गाजियाबाद				
7	राकेश देवी	ब्रह्म सिंह	गाँव नगला आँखु, तहसील मोदीनगर, गाजियाबाद	8080/170	89,708	91,068.78	1,80,776.78
8	शोबिंदर	बुद्ध सिंह	गाँव व पोस्ट पटला, गाजियाबाद	8080/174	1,04,455	1,17,887.42	2,22,342.42
9	जितेन्द्र कुमार	तिलक राम	गाँव व पोस्ट भानेड़ा नगला आँखु, गाजियाबाद	8080/175	93,912	1,02,803.09	1,96,715.09
10	राज कुमार	बलराम	गाँव व पोस्ट पटला, गाजियाबाद	8080/177	1,06,829	1,21,129.92	2,27,958.92
						कुल योग	19,25,397.77

7. स्पष्टतः, इस प्रकार बैंक ने प्रस्तावित किया कि याचिकाकर्ता के सेवात्तर लाभों के एक भाग को रोका जाए, ताकि सेवा अवधि के दौरान याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकृत ऋणों के कारण उत्पन्न गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों की वसूली होने तक तथा बैंक द्वारा हुई वित्तीय हानि की भरपाई, याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों से की जा सके। फलस्वरूप, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 13459 वर्ष 2024 दायर की, जिसमें इस न्यायालय ने दिनांक **03.09.2024** को निम्न आदेश पारित किया:

“हमने श्री सुजीत कुमार राय, याची की ओर से अधिवक्ता तथा श्री सत्यम सिंह, प्रतिवादीगण संख्या 2 एवं 3 की ओर से अधिवक्ता को सुना। प्रस्तुत याचिका संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दायर की गई है, जिसमें याचिकाकर्ता ने दिनांक 26 जुलाई 2024 एवं 22 अगस्त 2024 के नोटिसों को चुनौती दी है, जिनके माध्यम से उनसे, समाज के वरिष्ठ शाखा प्रबंधक रहते हुए उनके द्वारा वितरित ऋणों के संबंध में उत्पन्न गैर-निष्पादित

परिसंपत्तियों हेतु देयकों के संबंध में स्पष्टीकरण देने का निर्देश किया गया है। उनका कहना है कि उक्त नोटिस साधारण उत्तर माँगने के बजाय वस्तुतः एक निर्देश के समान है।

श्री सत्यम सिंह, प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के अधिवक्ता को इस पर कोई आपत्ति नहीं है कि यदि याची को नोटिस के विरुद्ध अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने हेतु निर्देशित किया जाए तथा आगे की किसी भी कार्यवाई का संचालन याची के आपत्ति/प्रतिवेदन के निस्तारण के पश्चात ही किया जाए। उपर्युक्त परिस्थितियों के आलोक में, यह याचिका इस निर्देश के साथ निस्तारित की जाती है कि याचिकाकर्ता नोटिसों के सन्दर्भ में आज से चार सप्ताह की अवधि के भीतर अपना उत्तर प्रस्तुत करेगा, और यदि उपर्युक्तानुसार उत्तर प्रस्तुत किया जाता है, तो उसी पर विचार करते हुए पूर्ण अवसर-ए-सुनवाई प्रदान कर एक माह की अतिरिक्त अवधि के भीतर निर्णय लिया जाएगा। यह भी आदेशित किया जाता है कि उपर्युक्त निर्देशानुसार अंतिम निर्णय लिए जाने तक, नोटिस के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध **किसी भी प्रकार की वसूली की कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जाएगी।”

8. उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, बैंक ने दिनांक **01.10.2024** को याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया, जिसमें उसे **08.10.2024** को प्रातः **10 बजे** बैंक मुख्यालय स्थित प्रबंधन समिति के समक्ष *व्यक्तिगत सुनवाई* हेतु उपस्थित होने के लिए कहा गया। दिनांक **08.10.2024** को याचिकाकर्ता बैंक की प्रबंधन समिति के समक्ष उपस्थित हुआ और यह प्रस्तुत किया कि उसने अपना उत्तर **12.09.2024** को दाखिल कर दिया है, जिसे विचाराधीन लिया जाए। जब यह याचिका दाखिल की गई, उस समय याचिकाकर्ता को प्रबंधन समिति द्वारा पारित आदेशों तथा उसके फलस्वरूप मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा पारित आदेशों के परिणाम की जानकारी थी, परंतु उसके पास प्रबंधन समिति द्वारा लिए गए निर्णय की प्रति उपलब्ध नहीं थी। प्रबंधन समिति के निर्णय का परिणाम यह हुआ कि **₹19,25,000/-** की राशि, जो याचिकाकर्ता के नाम पर बैंक की राज नगर शाखा में *एफ.डी.आर.* के रूप में निवेशित है, उस पर बैंक का *लियन* अंकित कर दिया गया।

9. ₹19,25,500/- की राशि की उक्त *एफ.डी.आर.* यद्यपि याचिकाकर्ता के नाम पर है, तथापि बैंक द्वारा अपने पक्ष में *प्रतिबद्ध (Pledged)* कर ली गई है। उक्त *एफ.डी.आर.* की *फोटोकॉपी* दिनांक **17.10.2024** अभिलेख पर पृष्ठ **70** पर उपलब्ध है। इसकी *परिपक्वता तिथि* **17.10.2025** है। इसके मुखपृष्ठ पर एक अभिलेख अंकित है, जिसमें लिखा है— **“गिरवी - जिला सहकारी बैंक लिमिटेड गाजियाबाद. प्रतिज्ञा. हस्तान्तरण/- शाखा प्रबंधक”** याचिकाकर्ता को उसके *अवकाशोत्तर लाभों* की शेष राशि **₹14,35,554/-** बिना किसी शर्त के उसके खाते में स्थानांतरित कर दी गई है। याचिकाकर्ता ने दिनांक **08.10.2024** को प्रबंधन समिति द्वारा पारित उस *प्रस्ताव* की प्रति उपलब्ध कराने के लिए अनुरोध किया, जिसके माध्यम से उसके अवकाशोत्तर लाभों के एक बड़े हिस्से को *एफ.डी.आर.* के रूप में रोक कर रखने का निर्देश दिया गया था, किंतु उसे कोई प्रति उपलब्ध नहीं कराई गई।

10. अवकाशोत्तर लाभों की शेष राशि का भुगतान न होने तथा दिनांक 08.10.2024 के प्रबंधन समिति के उस प्रस्ताव की प्रति उपलब्ध न कराए जाने से आहत होकर – जिसके द्वारा सेवानिवृत्ति लाभों के अवैतनिक भाग को रोकने की अनुमति प्रदान की गई – याचिकाकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका दायर की है। याचिकाकर्ता ने, अन्य प्रार्थनाओं के साथ, यह भी प्रार्थना की है कि बैंक द्वारा पारित वह प्रस्ताव जिसके माध्यम से उसके अवकाशोत्तर लाभों के एक भाग को रोके जाने का निर्देश दिया गया है, प्रतिवादियों से तलब कर निरस्त किया जाए। याचिकाकर्ता ने यह भी प्रार्थना की है कि इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्देशात्मक रिट – मंडमस जारी करते हुए प्रतिवादी संख्या-3, बैंक के सचिव एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी को आदेशित किया जाए कि एफ.डी.आर. संख्या 0002196 जो अवैधानिक रूप से बैंक के पक्ष में ₹19,25,500/- के लिए गिरवी रखी गई है, उसे ब्याज सहित याचिकाकर्ता के पक्ष में मुक्त किया जाए।

11. दिनांक 25.11.2024 के आदेश के अनुसार, हमने बैंक के सचिव एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने और यह बताने के लिए कहा कि हमारी दिनांक 03.09.2024 की आदेशानुसार Writ-A क्रमांक 13459/2024 में पारित आदेश की प्रति याचिकाकर्ता को क्यों नहीं प्रदान की गई। अगली सुनवाई के दिन, जब मामला आया, तो प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से एक हलफनामा सहित छूट आवेदन प्रस्तुत किया गया। इस हलफनामे के साथ, दिनांक 18.11.2024 के CEO के आदेश की प्रति संलग्न की गई, जिसमें बैंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने याचिकाकर्ता की निधि को रोकने और उसे एफडीआर में निवेश करने का निर्देश दिया था, जो कि प्रबंधन समिति के प्रस्ताव के अनुसार था, और इसे CEO के हलफनामे में अनुक्रमणिका संख्या 1 (Annexure No.1) के रूप में संलग्न किया गया। न्यायालय ने इसी आधार पर दिनांक 02.12.2024 के विस्तृत आदेश द्वारा नोटिस ऑफ मोशन जारी किया। इस आदेश के अनुपालन में, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 ने दिनांक 08.12.2024 को प्रत्युत्तर हलफनामा (Counter Affidavit) दाखिल किया। इसके साथ ही, प्रबंधन समिति के उस प्रस्ताव की प्रति भी संलग्न की गई, जिसमें याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त लाभों को रोकने और उन्हें बैंक के पक्ष में एफडीआर में निवेश करने के लिए अधिकृत किया गया था। यह प्रस्ताव दिनांक 08.10.2024 का था और इसे प्रत्युत्तर हलफनामे में अनुक्रमणिका संख्या 2 (Annexure No.2) के रूप में संलग्न किया गया। अतः अब याचिकाकर्ता उन आदेशों और प्रस्तावों (दिनांक 18.11.2024 का CEO का आदेश और दिनांक 18.10.2024 का प्रबंधन समिति का प्रस्ताव) को रद्द करने और अपने वांछित राहत हेतु मानदंड आदेश (Mandamus) जारी करने की मांग कर रहा है। पक्षों ने हलफनामों का आदान-प्रदान कर लिया है, और जब मामला दिनांक 09.12.2024 को आया, तो इसे सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया, जो तत्क्षण आगे बढ़ी। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

12. याचिकाकर्ता के पक्ष से श्री सुजीत कुमार राय, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के पक्ष से श्री सत्यं सिंह तथा राज्य सरकार की ओर से अतिरिक्त मुख्य स्टैंडिंग काउंसिल श्री गिरीजेश कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

13. इस मामले में विचारणीय प्रश्न यह है कि यदि बैंक के खाते जो कि गैर-निष्पादित परिसंपत्ति (Non-Performing Assets) बन गए हैं, और यह याचिकाकर्ता की किसी लापरवाही के कारण हुआ हो, जैसे कि उनके कार्यकाल में दिए गए ऋणों से संबंधित दस्तावेज तैयार करते समय हुई चूक, तो क्या याचिकाकर्ता के **सेवानिवृत्तोंपरांत लाभ (Post-Retiral Benefits)** बिना अनुशासनात्मक कार्यवाही (Disciplinary Proceedings) किए रोके जा सकते हैं? हम ऐसा नहीं मानते। याचिकाकर्ता को नियमों के तहत पेंशन की कोई पात्रता नहीं है और उनके सेवानिवृत्त लाभों का विवरण, जैसा कि न्यायालय के पूर्व भाग में बताया गया, यह दर्शाता है कि उनके कुल सेवानिवृत्त लाभ, अर्थात् ₹33,61,045/- में से ₹26,24,146/- **ग्रेच्युटी (Gratuity)** के रूप में हैं। ग्रेच्युटी **उत्तर प्रदेश सहकारी समितियों के कर्मचारियों सेवा नियमावली, 1975** (संक्षेप में '1975 के नियम') के अंतर्गत, जो कि 1965 के अधिनियम के तहत तैयार की गई थी, अध्याय VII, **नियम 95 (Regulation 95)** के तहत निर्धारित है। 1975 के नियमों के तहत ग्रेच्युटी के संबंध में यही नियम 95 है। नियम 95 निम्नलिखित है:

“95. ग्रेच्युटी - (i) एक सहकारी संस्था अपनी प्रबंधन समिति के निर्णय द्वारा अपने कर्मचारी को ग्रेच्युटी दे सकती है, जो कि हर पूर्ण सेवा वर्ष के लिए अधिकतम 15 दिनों के वेतन के बराबर होगी (यदि किसी वर्ष का भाग छह महीने से कम हो तो उसे अनदेखा किया जाएगा), यदि उसने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त कर ली है या उसे सिविल सर्जन द्वारा सेवा के लिए अयोग्य घोषित किया गया है, या उसे सेवा से निकाला गया है, या वह सेवा में रहते हुए मृत्यु हो जाती है:

उल्लेखनीय प्रावधान: उसने सेवानिवृत्ति, अयोग्यता या सेवा से निकाले जाने से पहले लगातार दस वर्षों की सेवा पूरी की हो, या मृत्यु के मामले में लगातार पांच वर्षों की सेवा पूरी की हो। मृत्यु होने की स्थिति में ग्रेच्युटी कर्मचारी के नामित व्यक्ति को दी जाएगी, और यदि नामांकन नहीं हुआ है, तो उसके कानूनी वारिस को दी जाएगी।

(ii) अपनी उपरोक्त जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए, एक सहकारी संस्था कर्मचारी ग्रेच्युटी निधि बना सकती है।

14. 1975 के नियमों का नियम 103:

“103. इन नियमों के प्रावधान, केवल उसी हद तक, किसी भी प्रावधान के साथ असंगत होने पर, इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट, 1947, उत्तर प्रदेश दुकान और वाणिज्य प्रशासन अधिनियम, 1962, वर्कमेन कम्पेनसेशन एक्ट, 1923 और किसी अन्य प्रचलित श्रम कानून के प्रावधानों के साथ, यदि किसी सहकारी संस्था या सहकारी संस्थाओं के वर्ग पर लागू हों, अनुप्रभावी माने जाएंगे।”

15. नियम 103 का स्पष्ट उद्देश्य यह है कि ये नियम, केवल उसी सीमा तक, यदि इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट, 1947, वर्कमेन कम्पेनसेशन एक्ट, 1923, और किसी अन्य प्रचलित श्रम कानून के प्रावधानों के साथ असंगत हों, तो ये नियम अनुप्रभावी माने जाएंगे। दूसरे शब्दों में, यदि 1975 के नियमों का कोई प्रावधान और

उपरोक्त अधिनियमों या किसी अन्य श्रम कानून के प्रावधानों के बीच संघर्ष हो, तो 1975 के नियमों के प्रावधान उन अधिनियमों या किसी अन्य विरोधाभासी श्रम कानून के प्रावधानों के अधीन होंगे।

16. अब, 1972 का अधिनियम निश्चित रूप से 'किसी अन्य प्रचलित श्रम कानून' के वर्ग में आता है, जैसा कि नियम 103 में उल्लेख है, लेकिन यह देखने के लिए कि क्या 1972 के अधिनियम के प्रावधान 1975 के नियमों को बाहर करेंगे, यह निर्धारित करना होगा कि 1972 के अधिनियम और 1975 के नियमों के प्रावधानों के बीच कोई असंगति है या नहीं। हमारे पढ़ने के अनुसार, दोनों अधिनियमों के प्रावधानों में कोई असंगति केवल ग्रेच्युटी की गणना या ग्रेच्युटी प्राप्त करने की पात्रता के बारे में हो सकती है। 1975 के नियमों के नियम 95 या अन्य किसी प्रावधान में ऐसा कुछ नहीं है जो 1972 के अधिनियम के अन्य प्रावधानों, जो सहकारी संस्था के कर्मचारियों को ग्रेच्युटी भुगतान से संबंधित हैं, के साथ संघर्ष करता हो, जब उनके सेवा के नियम और शर्तें 1975 के नियमों द्वारा नियंत्रित हैं।

17. सबसे पहला प्रश्न यह है कि क्या 1972 के अधिनियम का आवेदन उन सहकारी समितियों पर होगा, जैसे कि उत्तरदाताओं की समिति, जो बैंकिंग के व्यवसाय में लगी हुई हैं। 1972 के अधिनियम की धारा 1 इस प्रकार है:

"1. संक्षिप्त शीर्षक, विस्तार, आवेदन और आरंभ।

(1) इसे **पेमेंट ऑफ ग्रेच्युटी एक्ट, 1972** कहा जा सकता है।

(2) यह पूरे भारत में लागू होगा:

बशर्ते कि जहाँ तक यह चाय बागान या बंदरगाहों से संबंधित है, यह जम्मू और कश्मीर राज्य में लागू नहीं होगा।

(3) यह लागू होगा—

(a) प्रत्येक कारखाने, खान, तेल क्षेत्र, बागान, बंदरगाह और रेलवे कंपनी पर;

(b) प्रत्येक दुकान या प्रतिष्ठान पर, जैसा कि किसी राज्य में समय-समय पर लागू होने वाले दुकानों और प्रतिष्ठानों से संबंधित कानून में परिभाषित है, जिसमें पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन दस या उससे अधिक लोग कार्यरत हों, या कार्यरत थे;

(c) ऐसे अन्य प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानों की श्रेणियों पर, जिसमें पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन दस या उससे अधिक कर्मचारी कार्यरत हों, या कार्यरत थे, जैसा कि केंद्र सरकार इस संबंध में अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट कर सके।

(3-A) वह दुकान या प्रतिष्ठान जिस पर यह अधिनियम लागू हो गया है, उसके बाद भी यह अधिनियम लागू रहेगा भले ही उस समय वहां कार्यरत लोगों की संख्या दस से कम हो जाए।

(4) यह अधिनियम उस तिथि से लागू होगा जिसे केंद्र सरकार अधिसूचना द्वारा निर्धारित करेगी।"

(कोर्ट द्वारा किए गए जोर)

18. यह प्रश्न कि क्या 1972 का अधिनियम सहकारी समिति पर लागू होगा, इस मामले में उत्तर प्रदेश सहकारी संघ के संबंध में इस न्यायालय के समक्ष आया था। उत्तर प्रदेश सहकारी संघ एक शीर्षस्थ सहकारी समिति है जो 1965 के अधिनियम के तहत पंजीकृत है। यदि सहकारी संघ, जो कि 1965 के अधिनियम के तहत पंजीकृत है, को इस न्यायालय ने 1972 के अधिनियम के दायरे में माना है, और इसे “प्रतिष्ठान” के रूप में धारा 1(3)(b) और 1(3)(c) के अंतर्गत माना गया है, तो कोई आधार नहीं है यह मानने का कि बैंक, जो कि 1965 के अधिनियम के तहत पंजीकृत सहकारी समिति है, को प्रतिष्ठान के रूप में नहीं माना जाएगा।

यह निर्णय उत्तर प्रदेश सहकारी संघ एवं अन्य बनाम प्रभु दयाल श्रीवास्तव एवं अन्य, 1988 SCC OnLine All 302 में एक डिविजन बेंच द्वारा दिया गया था। प्रभु दयाल श्रीवास्तव (सुप्रा) में यह कहा गया:

“5. हम जानते हैं कि यह अधिनियम प्रगतिशील, सामाजिक और लाभकारी कानून है और इसे इस उद्देश्य के अनुरूप व्याख्यायित किया जाना चाहिए। इस प्रकार के मामलों में उस व्याख्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो कानून के उद्देश्य को बढ़ावा दे, न कि केवल शब्दशः अर्थ पर ध्यान दें। धारा 1(3)(c) के अंतर्गत प्रासंगिक खंड है “ऐसे अन्य प्रतिष्ठान” जिनमें पिछले बारह महीनों में किसी भी दिन दस या उससे अधिक कर्मचारी कार्यरत थे। इसके पूर्व खंड 1(3)(b) में कहा गया है “हर दुकान या प्रतिष्ठान, जैसा कि किसी राज्य में दुकानों और प्रतिष्ठानों से संबंधित किसी भी समय में लागू कानून में परिभाषित है।”

“और” शब्द हालांकि संयोजक है, लेकिन विधायी उद्देश्य और पाठ्य-संदर्भ को ध्यान में रखते हुए इसका अर्थ “या” लेना उचित प्रतीत होता है और इसे अलगावात्मक अर्थ में लिया गया। इस पूर्व खंड 1(3)(b) में कहा गया “हर दुकान या प्रतिष्ठान” का पूर्ण अर्थ केवल दुकानों तक ही सीमित है। इस प्रकार “और” का प्रयोग अगले खंड “राज्य में प्रतिष्ठान” से स्वतंत्र अर्थ में किया गया है।

ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम का उद्देश्य कारखानों, बागानों, दुकानों, प्रतिष्ठानों और खानों में कर्मचारियों को ग्रेच्युटी का लाभ देना है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए व्याख्या की जानी चाहिए।

6. अधिनियम के उद्देश्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि कारखानों, बागानों, दुकानों, प्रतिष्ठानों और खानों के कर्मचारियों को अलग-अलग लाभ दिया गया है। इसका अर्थ है कि कानून का उद्देश्य ग्रेच्युटी का लाभ केवल दुकानों तक सीमित नहीं है।

7. याचिकाकर्ता के वकील द्वारा “and” के बाद दूसरे खंड में प्रयुक्त शब्द “establishment” पर विशेष जोर दिया गया। तथापि, शब्द “establishment” न तो अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित है और न ही सामान्य धाराओं के अधिनियम (General Clauses Act) के अंतर्गत। यह अब एक स्थिर सिद्धांत बन चुका है कि यदि किसी शब्द की statutory (कानूनी) परिभाषा या न्यायिक व्याख्या मौजूद है, तो उस स्थिति में शब्दकोश की व्याख्या नहीं देखी जाती। लेकिन जहाँ ऐसी कोई परिभाषा या व्याख्या मौजूद नहीं होती, वहाँ न्यायालय शब्द के सामान्य अर्थ को समझने के लिए शब्दकोश की सहायता ले सकता है। इस प्रक्रिया में न्यायालय को यह ध्यान रखना चाहिए कि शब्दों का प्रयोग उनके संदर्भानुसार विभिन्न अर्थों में होता है और शब्दकोश किसी

शब्द के सभी अर्थ प्रस्तुत करता है। अतः न्यायालय को उन अर्थों में से वह अर्थ चुनना होगा जो उस विवाद के सन्दर्भ में प्रासंगिक हो, जिसमें शब्दों की व्याख्या करनी है। (देखें: उड़ीसा राज्य बनाम टीटाघर पेपर मिल्स कंपनी, लिमिटेड [1985 सप एससीसी 280: ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 1296]।

8. शब्द “establishment” के कुछ शब्दकोशीय अर्थ लेना उचित होगा। Black's Law Dictionary के अनुसार, शब्द “establishment” का अर्थ है - कोई संस्थान, ऐसा स्थान जहाँ कुछ संचालित किया जाता हो, स्थायी रूप से स्थापित या निर्धारित किया गया स्थान। Words and Phrases (Permanent Edn.), Vol. 15 के अनुसार, “establishment” का अर्थ है - ऐसा स्थान जहाँ कोई स्थायी रूप से निवास या व्यवसाय के लिए स्थापित हो, जैसे कोई कार्यालय या व्यवसायिक स्थान अपने उपकरणों सहित। इसके अतिरिक्त, इसका अर्थ उस संस्थान से भी है जहाँ कर्मचारी केवल नियोजित होते हैं। Webster's International Dictionary के अनुसार, “establishment” का अर्थ है - कोई संस्थान या व्यवसायिक स्थान अपने उपकरण और संगठित स्टाफ के साथ। Oxford Dictionary के अनुसार, इसका अर्थ है - एक संगठित समूह जिसे किसी उद्देश्य के लिए रखा गया हो। Bouvier's Law Dictionary के अनुसार, “establishment” का अर्थ है - वह जिसे सार्वजनिक या निजी उपयोग के लिए स्थापित किया गया हो।

10. वी. ट्रांसपोर्ट (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय भविष्य निधि आयुक्त, मद्रास [ए.आई.आर. 1965 मैड. 466]में यह कहा गया कि शब्द “establishment” का अर्थ है - एक संगठन जो व्यक्तियों को रोजगार देता है, जहाँ कर्मचारी और नियोक्ता के बीच संबंध स्थापित होता है।

11. अतः हमारा मत है कि अधिनियम की धारा 1(3)(b) या 1(3)(c) के अंतर्गत प्रयुक्त शब्द “establishment” का अर्थ है - एक संगठित समूह जिसमें पुरुष और महिलाएँ नियोजित हों और जहाँ कर्मचारी और नियोक्ता का संबंध स्थापित होता हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि याचिकाकर्ता 1 ने कई कर्मचारियों को किसी उद्देश्य के लिए नियोजित किया है, अर्थात् उन कार्यों को संपन्न करने के लिए जो उत्तर प्रदेश सहकारी संघ (Uttar Pradesh Co-operative Union) की स्थापना के उद्देश्य के लिए आवंटित किए गए हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ग्रेच्युटी अधिनियम (Gratuity Act) की धाराएँ याचिकाकर्ता 1 के कर्मचारियों पर लागू होती हैं। प्रतिवादी 1 का आवेदन निश्चित रूप से स्वीकार्य था और याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया प्रारंभिक आपत्ति सही रूप से खारिज कर दी गई।

19. इस मामले में पक्षों के बीच इस बात पर कोई गंभीर विवाद नहीं है कि अधिनियम 1972 बैंक पर लागू होगा। यहाँ विशेष रूप से अनुच्छेद 4 की उप-धारा (6) का उल्लेख प्रासंगिक है, जिसे सेक्शन 4 के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, हालांकि अन्य उप-धाराएँ सीधे प्रासंगिक नहीं हो सकतीं।

सेक्शन 4 - ग्रेच्युटी का भुगतान:

(1) किसी कर्मचारी को उसकी सेवा समाप्त होने पर, यदि उसने लगातार पांच वर्ष से कम नहीं की है, ग्रेच्युटी देय होगी—

(a) उसके सेवा-निवृत्ति (superannuation) पर, या

(b) उसके सेवानिवृत्ति या इस्तीफा देने पर, या

(c) उसकी मृत्यु या दुर्घटना या रोग के कारण अक्षमता (disablement) होने पर:

प्रावधान: यदि किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति मृत्यु या अक्षमता के कारण हुई हो, तो लगातार पांच वर्ष की सेवा पूरी होने की शर्त आवश्यक नहीं होगी।

दूसरा प्रावधान: कर्मचारी की मृत्यु होने पर, ग्रेच्युटी उसके नामांकित व्यक्ति (nominee) को दी जाएगी, या यदि नामांकन नहीं हुआ है, तो उसके वारिसों को। यदि कोई नामांकित व्यक्ति या वारिस नाबालिग है, तो उस नाबालिग का हिस्सा नियंत्रक प्राधिकरण (controlling authority) के पास जमा किया जाएगा, जो इसे बैंक या अन्य वित्तीय संस्थान में निवेश करेगा, जब तक कि नाबालिग पूर्ण वयस्क न हो जाए।

व्याख्या: इस धारा के प्रयोजन के लिए, अक्षमता का अर्थ है वह अक्षमता जो कर्मचारी को उस कार्य के लिए अक्षम कर देती है जिसे वह दुर्घटना या रोग से पहले करने में सक्षम था।

(2) प्रत्येक पूर्ण सेवा वर्ष या छह महीने से अधिक भाग के लिए, नियोक्ता कर्मचारी को अंतिम वेतन के आधार पर पंद्रह दिन का वेतन ग्रेच्युटी के रूप में देगा।

यदि कर्मचारी टुकड़ा-आधारित (piece-rated) है, तो औसत वेतन पिछले तीन महीनों के आधार पर लिया जाएगा।

मौसमी (seasonal) कर्मचारियों के लिए, प्रत्येक मौसम के लिए सात दिन का वेतन ग्रेच्युटी के रूप में दिया जाएगा।

व्याख्या: मासिक वेतन वाले कर्मचारी के लिए, पंद्रह दिन का वेतन अंतिम मासिक वेतन को 26 से भाग देकर और गुणा करके निकाला जाएगा।

(3) कर्मचारी को दी जाने वाली ग्रेच्युटी की अधिकतम राशि केंद्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित की जाएगी।

(4) यदि कर्मचारी अक्षमता के बाद कम वेतन पर काम कर रहा है, तो ग्रेच्युटी की गणना में अक्षमता से पहले और बाद के वेतन का अलग-अलग ध्यान रखा जाएगा।

(5) इस धारा का कोई भी प्रावधान कर्मचारी के किसी पुरस्कार, समझौते या अनुबंध के तहत बेहतर ग्रेच्युटी पाने के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगा।

(6) उप-धारा (6) - विशेष प्रावधान:

(a) यदि किसी कर्मचारी की सेवा किसी ऐसे कार्य, जानबूझकर चूक या लापरवाही के कारण समाप्त हुई है, जिससे नियोक्ता की संपत्ति को कोई क्षति, हानि या विनाश हुआ हो, तो वह ग्रेच्युटी उस हानि या क्षति के अनुपात में जब्त की जाएगी।

(b) ग्रेच्युटी पूरी या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है—

- (i) यदि कर्मचारी की सेवा उसके उग्र या अशांति पूर्ण व्यवहार या किसी अन्य हिंसक कृत्य के कारण समाप्त हुई हो, या
- (ii) यदि कर्मचारी का सेवा समाप्ति का कारण कोई ऐसा कृत्य हो जो नैतिक पतन (moral turpitude) से जुड़ा अपराध हो, बशर्ते यह अपराध उसकी नौकरी के दौरान किया गया हो।

20. धारा 4 की उप-धारा (6) में आपात स्थितियों का प्रावधान है, जिनमें कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी (Gratuity) का पूरा या आंशिक हिस्सा जब्त किया जा सकता है। 1972 के अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (6) की उप-धारा (a) और (b) यह स्पष्ट करती हैं कि किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी पूरी या आंशिक रूप से जब्त होने के लिए यह अनिवार्य है कि उसकी सेवा किसी दोषपूर्ण व्यवहार के कारण समाप्त हुई हो। अतः, उप-धारा (6) में वर्णित सेवा समाप्ति की स्थिति को छोड़कर, 1972 के अधिनियम के अनुसार ग्रेच्युटी प्राप्त करने का अधिकार जब्त नहीं किया जा सकता।

21. स्वीकार किया गया है कि इस मामले में, याचिकाकर्ता के खिलाफ सेवा के दौरान कभी कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की गई थी और न ही उसे किसी प्रकार की दंडात्मक कार्रवाई का सामना करना पड़ा। उसे बैंक द्वारा उन लापरवाहियों के लिए, जो उसने ऋण दस्तावेज़ीकरण में कीं और जो गैर-निष्पादित संपत्तियों (NPA) में परिवर्तित हो गए, किसी आपराधिक अपराध के लिए कभी ट्रायल या दोषसिद्धि का सामना नहीं करना पड़ा। याचिकाकर्ता ने सेवा से इस प्रकार से अवकाश लिया कि उसके रिकॉर्ड में अनुशासनात्मक कार्यवाही या आपराधिक आरोपों का कोई दाग नहीं है।

22. 1975 के नियमावली या किसी अन्य कानूनी प्रावधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो उत्तरदाताओं को याचिकाकर्ता की सेवा समाप्ति पर उसकी ग्रेच्युटी रोकने का अधिकार देता हो। बल्कि, उप-धारा (6) की धारा 4 के अधिनियम 1972 के तहत ऐसा करना स्पष्ट रूप से निषिद्ध है, केवल उन मामलों को छोड़कर जहाँ सेवा समाप्ति उप-धारा (6) के तहत होती है। अतः, ग्रेच्युटी की रकम में कोई कटौती नहीं की जा सकती और न ही याचिकाकर्ता की निधि को किसी भी प्रकार से रोकना वैध है। चूंकि याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी की रकम स्वीकृत है, बैंक द्वारा उस रकम को एफडीआर (FDR) में निवेश करना और उसे बैंक के पक्ष में गिरवी रखना, इस शर्त पर कि याचिकाकर्ता खराब ऋणों की वसूली में सफल होगा, स्पष्ट रूप से अवैध है।

23. जहां तक अन्य सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों का प्रश्न है, 1975 के नियमावली या किसी अन्य कानूनी प्रावधान में ऐसा कोई अधिकार नहीं है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के किसी भी सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभ को रोका जा सके, सिवाय इसके कि याचिकाकर्ता को अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान दंडित किया गया हो। स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ बैंक ने उसके सेवा के दौरान अनुशासनात्मक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करके कोई कार्यवाही नहीं की, न ही उसे ऋण दस्तावेज़ीकरण में कथित

लापरवाहियों के संबंध में किसी आपराधिक आरोप में ट्रायल किया गया। बैंक के पास 1975 के नियमावली के तहत किसी कर्मचारी या अधिकारी से किसी हानि की वसूली करने के दो स्रोत हैं: एक है नियम 84, जो नियमावली 1975 के अध्याय VII में अनुशासनात्मक कार्यवाही से संबंधित है, और दूसरा नियम 96, जो अध्याय VIII में भविष्य निधि, ग्रेच्युटी, सुरक्षा, मानदेय और वेतन अग्रिम से संबंधित है।

24 नियम 84 के तहत लगाए जाने वाले दंड, जो 1975 के नियमावली में निर्धारित हैं, इस प्रकार हैं:

“84. दंड - (i) किसी अन्य नियम में निर्धारित प्रावधानों के उल्लंघन के बिना, यदि कोई कर्मचारी उस कर्तव्य का उल्लंघन करता है जो उस पर लगाया गया है, या किसी आपराधिक अपराध या अधिनियम की धारा 103 के तहत अपराध में दोषी पाया जाता है, या ये नियमावली द्वारा निषिद्ध कोई कार्य करता है, तो उसे निम्नलिखित में से किसी एक दंड द्वारा दंडित किया जा सकता है:

- (a) अनुशासनात्मक चेतावनी (Censure),
- (b) वेतन वृद्धि को रोकना (Withholding of increment),
- (c) श्रेणी IV के कर्मचारी (जैसे, पियन, चौकीदार आदि) पर जुर्माना,
- (d) किसी भी धन संबंधी हानि की भरपाई के लिए वेतन या सुरक्षा जमा से वसूली करना, जो कर्मचारी के कृत्य के कारण सहकारी समाज को हुई हो,
- (e) कर्मचारी द्वारा धारित पद या श्रेणी में कमी,
- (f) सेवा से हटाना (Removal from service), या
- (g) सेवा से बर्खास्तगी (Dismissal from service)।

.....”

(न्यायालय द्वारा

जोर दिया गया)

25 नियम 96 (उपरोक्त) इस प्रकार है:

“96. सुरक्षा - (i) सहकारी समाजों के कर्मचारियों को वह सुरक्षा राशि जमा करनी होगी जो रजिस्ट्रार द्वारा अधिनियम की धारा 120(1) के तहत निर्दिष्ट की जाएगी। इसे एकमुश्त या किस्तों में वसूला जा सकता है।
(ii) कर्मचारी द्वारा जमा राशि पर, पोस्ट ऑफिस की बचत खाता दर के अनुसार ब्याज दिया जाएगा।

(iii) जब कोई कर्मचारी समाज की सेवा छोड़ देता है या उसकी मृत्यु हो जाती है, तो सुरक्षा राशि और ब्याज कर्मचारी को और मृत्यु होने पर उसके वारिस को, ऑडिट की पूर्णता की तारीख से 3 महीने के भीतर लौटाया जाएगा:

शर्त यह है कि समाज कर्मचारी से लंबित किसी भी देनदारियों को काट सकता है।”

26. नियम 84(i)(d) और नियम 96 के उपखंड (iii) की शर्त का संयुक्त अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि वसूली केवल उस स्थिति में की जा सकती है जब कर्मचारी के कृत्य के कारण सहकारी समाज को हुई धन संबंधी हानि की भरपाई के लिए वेतन या सुरक्षा जमा से वसूली की जाती है, या आपराधिक अपराध या धारा 103 के तहत दोषसिद्धि होने पर। इस प्रकार, नियम 84 के तहत वसूली की शक्ति सीमित है और केवल उस स्थिति में लागू होती है जब:

1. अनुशासनात्मक कार्यवाही में कर्मचारी को दोषी पाया गया हो और दंड के रूप में वसूली लगाने का निर्णय लिया गया हो, या

2. किसी आपराधिक अपराध या धारा 103 के तहत दोषसिद्धि हुई हो।

नियम 84(i)(d) के प्रावधान यह दर्शाते हैं कि समाज को हुई हानि की वसूली केवल अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान लगाए गए दंड के रूप में ही की जा सकती है। अन्य किसी भी प्रकार की राशि से, जिसमें कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभ शामिल हैं, हानि की वसूली करने का नियम 84 के तहत अधिकार नहीं देता।

27. नियम 96 के उपखंड (iii) की शर्त, जो समाज को किसी भी लंबित देनदारियों को काटने का अधिकार देती है, दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है:

1. यह समाज को नियम 84(i)(d) के तहत अनुशासनात्मक दंड या आपराधिक दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप वसूली का अधिकार देती है।

2. यह समाज को अधिकार देती है कि वे किसी भी लंबित देनदारियों की वसूली कर सकें, लेकिन यह अधिकार केवल सुरक्षा जमा तक ही सीमित है।

28. अतः, 1975 के नियमों के तहत बैंक के पास कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले किसी भी लाभ से वसूली करने का कोई अधिकार नहीं है।

चाहे वह अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान लगाए गए दंड का परिणाम हो या आपराधिक दोषसिद्धि का परिणाम। बैंक को कर्मचारी के सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले लाभों (ग्रेच्युटी सहित) से वसूली करने का अधिकार नहीं है। यहां तक कि इस मामले में, कोई अनुशासनात्मक या आपराधिक कार्यवाही भी नहीं हुई थी, जिससे बैंक को नियम 84 के तहत किसी भी वसूली का अधिकार नहीं था।

29. नियम 84 के तहत वसूली का अधिकार, याचिकाकर्ता के मामले में, केवल उसके वेतन या सुरक्षा जमा तक सीमित होगा, यदि बैंक द्वारा यह पाया जाता कि उसने बैंक को वित्तीय हानि पहुँचाई है और यह बैंक के अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकार के तहत हो। याचिकाकर्ता के सेवा में रहते हुए, स्पष्ट रूप से बैंक द्वारा उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की गई थी। अन्य शेष अधिकार, जो बैंक को याचिकाकर्ता के खिलाफ किसी बकाया राशि वसूलने के लिए नियम 96 की उप-धारा (iii) के प्रावधान के तहत उपलब्ध है, केवल

याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई सुरक्षा राशि तक सीमित होगा। याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त लाभों से बैंक के शेष अधिकार का प्रयोग कर वसूली करना संभव नहीं है।

30. बैंक के लिए यह खुला विकल्प था कि वे याचिकाकर्ता के खिलाफ उन हानियों की वसूली करें, जो उन्होंने कहा कि गैर-प्रदर्शनशील ऋण (Non-Performing Assets) के कारण हुए हैं, क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा दोषपूर्ण ऋण दस्तावेजीकरण के चलते वे ऋण वसूल नहीं कर पाए। इसके लिए उन्हें याचिकाकर्ता के सेवा में रहते हुए अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाहिए थी या उसकी सुरक्षा जमा राशि से वसूली करनी चाहिए थी, चाहे उसकी मात्रा कुछ भी हो। सेवा के दौरान, वसूली याचिकाकर्ता के वेतन और सुरक्षा जमा दोनों से की जा सकती थी। सेवा समाप्त होने के बाद, बैंक के पास किसी भी प्रकार की कार्यवाही करने या याचिकाकर्ता से ऋण दस्तावेजीकरण में दोष के कारण हुई हानि वसूलने का कोई अधिकार नहीं है। बैंक के पास अपने शेष अधिकार या प्रशासनिक अधिकार के अंतर्गत यह करने का कोई अधिकार नहीं है कि उन्होंने ऑडिट या प्रशासनिक रूप से याचिकाकर्ता के दोषपूर्ण कार्य को पाया। बैंक को यह कार्रवाई याचिकाकर्ता के सेवा में रहते हुए समय पर करनी चाहिए थी।

31. याचिकाकर्ता से वसूली के संबंध में बैंक के अधिकार पर यह रोक, याचिकाकर्ता को मिलने वाले सभी प्रकार के सेवानिवृत्त लाभों पर लागू होती है, केवल ग्रेच्युटी तक सीमित नहीं है। बेशक, ग्रेच्युटी वसूली से परे है, जैसा कि 1972 के अधिनियम की धारा 4 की उप-धारा (6) के तहत निर्धारित है।

32. यह सर्वविदित कानून है कि ग्रेच्युटी, पेंशन - जिसे यहाँ शामिल नहीं किया गया है - और अन्य किसी भी सेवा-उपरांत लाभ जो कर्मचारी को नियमों के तहत मिलता है, वह **अनुच्छेद 300A** के तहत संरक्षित संपत्ति है। इसे केवल **कानून के प्राधिकरण** द्वारा ही छीना जा सकता है; अन्यथा नहीं। इसे केवल **प्रशासनिक निर्णय** या **कार्यकारी निर्देश**, या इसके भी कम, नियोक्ता द्वारा अपने सामान्य या पर्यवेक्षी अधिकार के तहत उचित और न्यायपूर्ण समझने के आधार पर नहीं लिया जा सकता। यह सिद्धांत इतना स्थिर और स्पष्ट है कि इसमें कोई संदेह नहीं होना चाहिए और इसका प्रभावी और प्रामाणिक विवरण **झारखंड राज्य और अन्य बनाम जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव और अन्य, (2013) 12 एससीसी 210** में मिलता है।

जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव (सुप्रा) में, सुप्रीम कोर्ट ने यह कहा है:

“16. तथ्य यह है कि यह कानूनी सिद्धांत की मान्यता प्राप्त है कि पेंशन प्राप्त करने का अधिकार 'संपत्ति' के रूप में मान्यता प्राप्त है।

अनुच्छेद 300-A संविधान भारत के अनुसार है:

“300-A. किसी व्यक्ति को उसके संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा सिवाय कानून के प्राधिकरण द्वारा— किसी भी व्यक्ति को उसके संपत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा सिवाय कानून के प्राधिकरण द्वारा।” एक बार जब हम इस आधार पर आगे बढ़ते हैं, तो इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हो जाता है। कोई व्यक्ति बिना

कानूनी प्राधिकरण के पेंशन से वंचित नहीं किया जा सकता, जो कि **अनुच्छेद 300-A** में निहित संवैधानिक निर्देश है। इसका तात्पर्य यह है कि अपीलकर्ता द्वारा पेंशन, ग्रेच्युइटी या छुट्टी की नकद राशि का कोई हिस्सा बिना किसी वैधानिक प्रावधान के और केवल प्रशासनिक निर्देश के आधार पर लेना **स्वीकृत नहीं किया जा सकता।**

“17. यह जोर देने की आवश्यकता नहीं कि कार्यकारी निर्देशों का **वैधानिक स्वरूप** नहीं होता और इसलिए उन्हें उपरोक्त अनुच्छेद 300-A के अर्थ में 'कानून' नहीं कहा जा सकता। ऐसे सर्कुलर के आधार पर अपीलकर्ता पेंशन या ग्रेच्युइटी का कोई हिस्सा रोक नहीं सकता। जैसा कि हमने ऊपर देखा, संबंधित वैधानिक नियमों में इस स्थिति में पेंशन या ग्रेच्युइटी रोकने का कोई प्रावधान नहीं है। यदि नियमों में ऐसा कोई प्रावधान होता, तो स्थिति भिन्न होती।”

33. जितेंद्र कुमार श्रीवास्तव में, यह सिद्धांत यद्यपि पेंशन और ग्रेच्युइटी के संदर्भ में बताया गया, लेकिन इसमें **छुट्टी नकदीकरण** को भी कर्मचारी की संपत्ति के रूप में अनुच्छेद 300A द्वारा संरक्षित माना गया है। इस छत्र के अंतर्गत सभी सेवा-उपरांत लाभ जो कर्मचारी को सेवानिवृत्ति के समय नियमों के तहत मिलते हैं, वे भी शामिल हैं।

34. इन सब तथ्यों के आलोक में, वह विवादास्पद आदेश, जिसके द्वारा **Rs.19,25,500/-** की राशि को बैंक के पक्ष में फिक्स्ड डिपॉजिट में रोकने का निर्देश दिया गया था, जिसे यह सुनिश्चित करने की शर्त के अधीन रखा गया था कि बैंक की **गैर-निष्पादित परिसंपत्ति** की वसूली में रोकावट के लिए यह राशि रखी गई थी, उसे कायम नहीं रखा जा सकता। याचिकाकर्ता को उसके **सभी सेवा-उपरांत लाभ** बिना किसी कटौती या हानि के भुगतान किए जाने चाहिए।

35. परिणामतः, यह **रिट याचिका सफल** होती है और अनुमति दी जाती है। 18.11.2024 के विवादास्पद आदेश और 08.10.2024 की विवादास्पद समिति प्रस्तावना, जहां तक याचिकाकर्ता के **सेवा-उपरांत लाभ** के दावे से संबंधित हैं, **रद्द** किए जाते हैं। सचिव और मुख्य कार्यकारी अधिकारी तथा बैंक की समिति को **निर्देशित किया जाता है** कि याचिकाकर्ता को फौरन **Rs.19,25,500/-** की राशि, जो उनके पास रोककर एफडीआर में निवेश की गई थी, **साथ ही उस पर अर्जित ब्याज सहित** जारी करें।

36. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

37. इस निर्णय की प्रति **सचिव एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, गाजियाबाद** और समिति के प्रस्ताव की प्रति रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा **संचारित की जाए।**

(2025) 6 ILRA 138

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 09.06.2025

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर के समक्ष

रिट - ए संख्या 19042 वर्ष 2024

रणजीत कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

निबंधक, सहकारी समितियाँ एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: राजेन्द्र प्रसाद मिश्र, रामाकांत तिवारी

प्रतिवादी के अधिवक्ता: अशोक कुमार लाल, सी.एस.सी.

A. सेवा विधि - उ.प्र. सहकारी समितियाँ कर्मचारी सेवा विनियमावली, 1975 - विनियम 84 - अनुशासनात्मक कार्यवाही - दंड - संचयी प्रभाव सहित वेतनवृद्धि रोकना - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत - प्रयोज्यता - याचिकाकर्ता ने आरोपों के विरुद्ध अपना बचाव प्रस्तुत किया - गैर-कारणयुक्त दंडादेश पारित किया गया - वैधता को चुनौती - बचाव पर कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया - प्रभाव - यह धारित किया गया कि तीनों आरोपों के विवरण, याचिकाकर्ता के बचाव तथा यह निष्कर्ष निकालने के कारणों पर विचार के अभाव में कि आरोप सिद्ध क्यों माने गए, बैंक की प्रबंध समिति के अंतर्निहित निर्णय, जैसा कि आक्षेपित आदेश जो सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा पारित किया गया है, निःसंदेह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। - यद्यपि आदेश अन्य विवरणों के संबंध में विस्तृत है, किन्तु यह इस विषय पर पूर्णतः मौन है कि निर्णयकर्ताओं के मन में यह निष्कर्ष निकालने हेतु क्या विचार चला कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप आवश्यक साक्ष्य के आधार अर्थात् प्रबल संभाव्यता के आधार पर सिद्ध हैं। (पैरा 16)

B. भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 - वर्गीकरण - विनियम 1975 के विनियम 84 की वैधता, जिसमें संचयी प्रभाव सहित वेतनवृद्धि रोकने के दंड को प्रमुख दंड के रूप में वर्गीकृत नहीं किया गया है - न्यायालय किस सीमा तक हस्तक्षेप कर सकता है जब उसकी वैधता को चुनौती ही नहीं दी गई हो - यह धारित किया गया कि संचयी प्रभाव सहित वेतनवृद्धि रोकने का दंड, जिसका प्रभाव भविष्य की वेतनवृद्धियों को स्थगित करने का होता है, स्थापित मानकों के अनुसार निश्चित रूप से एक प्रमुख दंड है, और इस सीमा तक विनियम 84 दंडों का मनमाना वर्गीकरण प्रतीत होता है। किंतु, उक्त प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त विनियम की वैधता को चुनौती प्रस्तुत नहीं की गई है। (पैरा 12)

रिट याचिका अनुमन्य की जाती है। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 18983 वर्ष 2023; बिहार राज्य दफादार चौकीदार पंचायत (मगध प्रभाग) बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, निर्णय दिनांक 02.04.2025
2. बसुदेव दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य; 2024 SCC OnLine SC 3616

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह याचिका-वाद जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, बरेली के सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी के दिनांक 28.02.2023 के आदेश के विरुद्ध दायर है, जिसके द्वारा विभागीय कार्यवाही के उपरांत याचिकाकर्ता पर दो वेतन वृद्धियाँ रोके जाने की दंडात्मक कार्रवाई (संचयी प्रभाव सहित) की गयी है। यह निर्णय बैंक की प्रबंध समिति द्वारा लिया गया था, यद्यपि विधिवत आदेश सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा जारी किया गया।

2. याचिकाकर्ता जिला सहकारी बैंक लिमिटेड, बरेली में लिपिक के पद पर कार्यरत है। जिस अवधि से यह वाद संबंधित है, उस समय याचिकाकर्ता बैंक की मीरगंज शाखा में कैशियर-सह-क्लर्क के रूप में तैनात था। याचिकाकर्ता का कहना है कि उसकी सेवा-पुस्तिका अन्यथा निष्कलंक है। 20.12.2021 को 1975 के उत्तर प्रदेश सहकारी समितियों के कर्मचारी सेवा विनियमों के अंतर्गत उसे निलंबित किया गया, आरोप यह था कि उस दिन के कैश का मिलान करने पर राशि कम पाई गई। यह भी आरोप था कि उसने किसी व्यक्ति से ऋण लिया और बिना सूचना अवकाश पर रहा। 04.03.2022 को सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा स्वीकृत आरोपपत्र उसे दिया गया। उसने 15.04.2022 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया और सभी आरोपों का खंडन किया।

3. जांच के दौरान, याचिकाकर्ता को जांच अधिकारी द्वारा बुलाया गया और निर्देश दिया गया कि वह 04.02.2022 को प्रातः 11.30 बजे उपस्थित होकर अपना पक्ष प्रस्तुत करे। याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.02.2022 को निर्धारित तिथि पर जांच अधिकारी के समक्ष अपना पक्ष प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी ने अपनी जांच रिपोर्ट अथवा जांच टिप्पणी प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया। इसके उपरांत बैंक के सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने पत्र दिनांक 28.07.2022 के माध्यम से याचिकाकर्ता को निर्देशित किया कि वह 05.08.2022 को सायं 4.00 बजे व्यक्तिगत सुनवाई हेतु उनके समक्ष उपस्थित हो। उक्त पत्र के अनुपालन में याचिकाकर्ता सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुआ तथा आरोपों का खंडन किया। इसके बाद सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा दिनांक 01.09.2022 को एक अन्य सूचना जारी की गई, जिसमें याचिकाकर्ता को निर्देशित किया गया कि वह 05.09.2022 को अपराह्न 1.00 बजे प्रबंधन समिति के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई हेतु उपस्थित होकर अपने बचाव में प्रस्तुतियाँ दे। तत्पश्चात सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता से अंतिम रूप से आरोपों का जवाब देने

की अपेक्षा की गई। याचिकाकर्ता ने दिनांक 15.12.2022 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया और पुनः आरोपों का खंडन किया। दिनांक 18.01.2023 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को 24.01.2023 को अपराह्न 1.00 बजे प्रबंधन समिति के समक्ष पुनः व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने हेतु बुलाया गया, परन्तु बीमारी के कारण याचिकाकर्ता उपस्थित नहीं हो सका।

4. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में यह कहा है कि आक्षेपित आदेश दूषित है, क्योंकि जांच के दौरान प्रतिष्ठान की ओर से तीनों आरोपों के समर्थन में कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया। विशेष रूप से कहा गया है कि दो साक्षी, जिन पर दो आरोप आधारित हैं – अर्थात् श्रीमती गुंजन सिंह और श्रीमती हसीना – को प्रतिष्ठान द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया। यह भी कहा गया है कि प्रतिष्ठान के साक्षियों की सुनवाई के लिए कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया, जहाँ याचिकाकर्ता उन्हें जिरह कर सकता था और आवश्यकता होने पर अपना साक्ष्य भी प्रस्तुत कर सकता था। यह इंगित किया गया है कि जांच लंबी खिंचती रही और इसी प्रकार याचिकाकर्ता का निलंबन भी लटका रहा। इसलिए, याचिकाकर्ता ने अपने निलंबन के आदेश, अथवा यह कहें कि उसके निरंतर निलंबन को चुनौती देते हुए, इस न्यायालय के समक्ष रिट-ए संख्या 21058 सन् 2022 दायर की। उक्त रिट याचिका का निस्तारण इस निर्देश के साथ किया गया कि अनुशासनिक प्राधिकारी, आदेश की सत्यापित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर कार्यवाही का निष्कर्ष कर दे। यह भी प्रावधान किया गया कि यदि निर्धारित अवधि के भीतर कार्यवाही पूर्ण नहीं की जाती, तो याचिकाकर्ता प्राधिकारी (जिसे इस न्यायालय के आदेश में प्रतिवादी संख्या 3 बताया गया है) के समक्ष एक प्रतिवेदन प्रस्तुत कर सकेगा, जो यथाशीघ्र, वरीयता के आधार पर एक माह के भीतर, उस प्रतिवेदन का निर्णय करेगा। यह विवरण अब अप्रासंगिक प्रतीत होता है क्योंकि बैंक के सचिव/मुख्य कार्यकारी अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में प्रबंधन समिति के उस निर्णय की सूचना दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को दो वेतन-वृद्धियाँ रोके जाने (संचयी प्रभाव सहित) की दंडित कार्यवाई की गई है। साथ ही, उसे भविष्य में सावधान रहने की चेतावनी दी गई है, यह निर्देश देते हुए कि यदि भविष्य में पुनः ऐसा कदाचार दोहराया गया, तो बैंक उसे सेवा से बर्खास्त करने के लिए बाध्य होगा। याचिकाकर्ता को सेवा पर पुनःस्थापित कर दिया गया है, यह उपबंध करते हुए कि निलंबन अवधि के दौरान उसे जो भी निर्वाह-भत्ता प्राप्त हुआ है, वही उसके समस्त पारिश्रमिक के रूप में माना जाएगा, तथा वेतन एवं भत्तों के रूप में इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार का भुगतान देय नहीं होगा।

5. याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.02.2023 के उस आदेश से विरक्त होकर, जिसके द्वारा उपर्युक्त दंडादेश दिया गया है, वर्तमान रिट याचिका संस्थित की है।

6. नोटिस ऑफ मोशन दिनांक 02.12.2024 के आदेश द्वारा जारी किया गया, और कालक्रम में पक्षकारों ने अपने-अपने हलफनामों का आदान-प्रदान कर लिया। रिट याचिका को 12.12.2024 को सुनवाई हेतु स्वीकृत किया गया। उसी दिन सुनवाई पूर्ण हुई। निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

7. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री राजेन्द्र प्रसाद मिश्र की ओर से पैरवीधारी अधिवक्ता श्री उमेश चन्द्र तिवारी, प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के लिए अधिवक्ता श्री अशोक कुमार लाल, तथा प्रतिवादी संख्या 1 एवं 4 की ओर से उपस्थित माननीय स्थायी अधिवक्ता श्री एस. सी. उपाध्याय को सुना गया।

8. पक्षकारों के अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने और अभिलेख का अवलोकन करने पर, हमें प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध निम्नलिखित तीन आरोप निर्धारित किए गए थे:

आरोप संख्या - 01

प्रधान कार्यालय के उक्त आदेश के अनुपालन में अधोहस्ताक्षरी द्वारा प्रकरण की जाँच की गयी, जाँच में पाया गया, कि शाखा प्रबन्धक, शाखा-मीरगंज ने अपने पत्र दिनांक 20.12.2021 के माध्यम से अवगत कराया कि दिनांक 18.12.2021 को आप द्वारा खाता-धारक श्रीमती गुंजन सिंह पत्नी श्री गौरव सिंह को उनके अंकन 70,000=00 रुपये के आहरण पर अंकन 69,500=00 रुपये मात्र का भुगतान किया गया और अंकन 500 रुपये कम भुगतान किया गया, जिसकी जाँच करने, श्रीमती गुंजन सिंह ने द्वारा अवगत कराया गया कि उनके द्वारा शाखा मीरगंज में खुले अपने बचत खाता संख्या 21248 से दिनांक 18.12.2021 को अंकन 70,000=00 रुपये निकालने के लिए आहरण-पत्र उक्त धनराशि का दिया गया था, किन्तु तत्समय आप द्वारा उन्हें अंकन 69,500=00 रु0 मात्र का भुगतान किया गया, जो अंकन 500=00 रु0 कम था। उनके बार-बार कहने के उपरान्त भी उन्हें अंकन 500=00 रु0 आप द्वारा नहीं दिए गये, जिसकी शिकायत शाखा प्रबन्धक महोदय से की गयी। तदुपरान्त, शाखा प्रबन्धक ने आपके अंकन 500=00 रु0 वापस दिलवाए। प्रकरण की जानकारी लेने पर शाखा प्रबन्धक द्वारा अवगत कराया गया, कि शाम को कैश बन्द करते समय कैश गिनने पर—रुपये 20 के 20 नोट कम निकले, अर्थात् 400=00 कैश में कम थे, जिसको पूरा कराने के उपरान्त कैश को बन्द कराया गया। साथ ही शाखा प्रबन्धक द्वारा अवगत कराया गया, कि श्रीमती गुंजन सिंह बैंक की पुरानी खाताधारक हैं एवं एक प्रतिष्ठित नागरिक हैं, उनके साथ श्री रंजीत कुमार कैशियर द्वारा इस प्रकार का व्यवहार किए जाने के कारण बैंक की विश्वसनीयता एवं छवि खराब हो रही है।

अतः, आपको शाखा-मीरगंज पर कैशियर पद पर कार्यरत रहते हुए कैश शॉर्ट करने, तथा कैशियर के रूप में कार्य करते हुए कैश में हेरा-फेरी कर बैंक की विश्वसनीयता को धूमिल करने के आरोप से आरोपित किया जाता है।

आरोप संख्या - 02

प्रकरण की जाँच के दौरान, अधोहस्ताक्षरी द्वारा शाखा मीरगंज में शिकायतकर्ता से बयान लिए जा रहे थे, तभी शाखा प्रबन्धक की उपस्थिति में शाखा मीरगंज के कई ग्राहकों ने अधोहस्ताक्षरी को अवगत कराया कि आप द्वारा उन्हें गुमराह करते हुए नकद रुपये उधार ले लिए गए हैं और बहुत माँगने पर भी वापस नहीं कर रहे हैं। प्रकरण की जाँच के दौरान, दिनांक 04.02.2022 को मुख्यालय में श्रीमती हसीना, खाता संख्या 5354, शाखा फरीदपुर, द्वारा लिखित रूप में कहा गया कि आप द्वारा आपके पद का दुरुपयोग एवं उनको गुमराह करते हुए अंकन 10,000=00 रु0 उधार लिए हैं। उक्त शिकायत के सन्दर्भ में जब आपसे अपना पक्ष जानने के लिए जानकारी ली गई तो आप द्वारा लिखित रूप से अपने उक्त कृत्य की स्वीकारोक्ति की गयी।

अतः, आप द्वारा बैंक के ग्राहकों को गुमराह करते हुए रुपये उधार लिए जाने की पुष्टि होती है, जिसके कारन आपको ग्राहकों व आम जनता से रुपये उधार लेकर बैंक की छवि को धूमिल करने के आरोप से आरोपित किया जाता है।

आरोप संख्या - 03

प्रकरण की जाँच करते समय अधोहस्ताक्षरी द्वारा बैंक प्रधान कार्यालय, पत्रांक 3005/निरी0 -संग्रह/2021-22 दिनांक 10.01.2022 के माध्यम से शाखा प्रबन्धक, शाखा-फरीदपुर सायं0 से, आपके शाखा से अनुपस्थित रहने के सन्दर्भ में सूचना माँगी गयी, साथ ही, अधोहस्ताक्षरी द्वारा भी शाखा पर रक्षित कर्मचारियों के उपस्थिति रजिस्टर/प्रपत्रों की जाँच करने पर पाया गया, कि आप दिनांक 01.05.2017, 02.05.2017, 16.08.2017, 02.09.2017, 31.09.2017, 16.10.2017, 17.10.2017, 19.10.2020 को शाखा से बिना किसी सूचना के अनुपस्थित रहे और पाया गया, कि आप द्वारा निम्न दिनांक को शाखा पर कार्य नहीं किया गया, जिसके सम्बन्ध में शाखा प्रबन्धक से

जानकारी ली गयी, तो उनके द्वारा अवगत कराया गया, कि उक्त दिनांक पर-

31.07.2017	18.09.2017	27.07.2018	21.08.2018	27.05.2019	07.08.2019	29.08.2019
01.08.2017	29.09.2017	30.07.2018	28.08.2018	27.05.2019	08.08.2019	19.10.2020
02.08.2017	24.07.2018	31.07.2018	29.08.2018	21.06.2019	26.08.2019	18.12.2020
03.08.2017	25.07.2018	01.08.2018	20.10.2018	05.08.2019	27.08.2019	19.12.2020
17.08.2017	26.07.2018	20.08.2018	07.05.2019	06.08.2019	28.08.2019	

आपको अर्जित अवकाश दिखाया गया है, जबकि मुख्यालय के प्रशासन अनुभाग से प्राप्त सूचना से स्पष्ट होता है, कि आप द्वारा न तो कोई अर्जित अवकाश हेतु कोई आवेदन ही किया गया और न ही इस प्रकार का कोई अवकाश मुख्यालय स्तर से आपको प्रदान किया गया।

अग्रेतर जाँच में पाया गया, कि पूर्व में भी आपके द्वारा इस प्रकार की अनियमितता/पलायन का कृत्य किया जाता रहा है, जिसका संज्ञान लेते हुए प्रधान कार्यालय, पत्रांक 217/प्रशासन/2015-16, दिनांक 12.05.2015 द्वारा आपसे दिनांक 21.04.2015 से 21.04.2015 तक शाखा में बिना सूचना के अनुपस्थित रहने का स्पष्टीकरण माँगा गया था। पूर्व में प्रधान कार्यालय पत्रांक 862/प्रशासन/2016-17, दिनांक 20.07.2016 को भी शाखा फरीदपुर सायं0 के 27.06.2016 को बिना किसी सूचना के अद्यतन शाखा में अनुपस्थित रहने और पत्रांक 3348/प्रशासन/2018-19, दिनांक 03.01.2019 के द्वारा दिनांक 19.12.2018 से दिनांक 24.12.2018 तक अर्जित अवकाश पर होने परन्तु 27.12.2018 तक शाखा में उपस्थित न होने के सम्बन्ध में एवं किसी प्रकार की सूचना शाखा पर न देने विषयक स्पष्टीकरण आपसे माँगा गया बैंक मुख्यालय द्वारा बिना सूचना के अनुपस्थित मानते हुए उक्त तिथियों के वेतन रहित का भी नोटिस आपको दिया गया। इसी क्रम में प्रधान

कार्यालय पत्रांक 2387/प्रशासन/2019-20, दिनांक 15.01.2020 द्वारा आपसे दिनांक 08.01.2020 को शाखा पर बिना किसी सूचना के अनुपस्थित रहने विषयक स्पष्टीकरण माँगा गया। पत्रांक 1023/प्रशासन/2020-21, दिनांक 19.08.2020 द्वारा भी दिनांक 23.07.2020 से 27.07.2020 एवं 01.08.2020 से निरंतर अनुपस्थित रहने का भी स्पष्टीकरण माँगा गया साथ ही इस संबंध में मुख्यालय पत्रांक 740/प्रशासन/2021-22, दिनांक 09.07.2021 के द्वारा आपको दिनांक 23.07.2020 से 27.07.2020 तक तथा दिनांक 01.08.2020 से 27.09.2020 तक बिना किसी सूचना के शाखा से पलायित रहने विषयक चेतावनी पत्र भी निर्गत किया गया। अतः आप शाखा/मुख्यालय को भ्रमित कर बिना सूचना के प्रायः पलायित रहते रहे हैं, जिसके लिए आपको बिना किसी सूचना के शाखा से पलायित रहने और बैंक कार्यों में रुचि न लेने के आरोप से आरोपित किया जाता है।

9. याचिकाकर्ता ने अपने लिखित प्रतिरूप दिनांक 15.04.2022 के माध्यम से इन आरोपों के विरुद्ध अपना विस्तृत प्रतिरक्षण प्रस्तुत किया, जिसमें अनुपस्थिति के दिनों से संबंधित अपनी अवकाश-सूचना का विवरण भी सम्मिलित किया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का प्रबल तर्क था कि चूँकि अनुशासनात्मक कार्यवाही आयोजित की गई थी, अतः जाँच की दिनांक, समय और स्थान की सूचना याचिकाकर्ता को दी जानी आवश्यक थी। उससे भी अधिक, आरोपों के समर्थन में संस्थान का दायित्व था कि वह प्रस्तुतिकरण अधिकारी के माध्यम से औपचारिक रूप से आहूत जाँच में आवश्यक अभिलेखीय तथा मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करे। जाँच अधिकारी ने न तो कोई औपचारिक जाँच आयोजित की, न ही कोई औपचारिक रिपोर्ट तैयार की। वास्तव में, जाँच की कोई रिपोर्ट अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है; न तो याचिकाकर्ता द्वारा और न ही प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत की गई। इस प्रश्न पर विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या प्रतिवादीगण औपचारिक जाँच करने के लिए बाध्य थे। इस वाद के तथ्यों पर अगला प्रश्न यह उठता है कि यदि वे जाँच आयोजित करने को बाध्य थे, जिसमें अभिलेखीय व मौखिक दोनों प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने चाहिए थे, तो क्या अब-जब उन्होंने दो वेतन वृद्धियों को संचयी प्रभाव सहित रोकने का दंड अधिरोपित कर दिया है-वे इस औपचारिक जाँच के आयोजन के लिए विधिक रूप से बाध्य हैं?

10. हमारे विचार में, स्थापित विधि-जो यह उपादेय सिद्धांत निर्धारित करती है कि जहाँ प्रमुख दंड अधिरोपित किया जा सकता है, वहाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही किस प्रकार संचालित की जानी चाहिए-के अनुरूप, प्रतिवादीगण जब प्रारम्भ में जाँच कर रहे थे, तब उन पर यह दायित्व था कि वे अपने जाँच अधिकारी के समक्ष विधिवत् एक औपचारिक जाँच आहूत करते, जिसमें उन्हें अभिलेखीय तथा मौखिक-दोनों प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत करने चाहिए थे। वास्तव में, एक बार उन्होंने आरोप-पत्र जारी कर दिया और एक जाँच अधिकारी की नियुक्ति कर दी, तो यह स्पष्ट है कि उनके मन में विनियम 1975 के विनियम 84 (i) (e), (f) और (g) के अन्तर्गत निर्दिष्ट तीन में से किसी एक प्रमुख दंड को अधिरोपित करने का विचार था। अतः उन्हें आवश्यक था कि वे अनुशासनात्मक कार्यवाही उपादेय सिद्धांतों का पालन करते हुए आगे बढ़ाते-जिसमें जाँच की दिनांक, समय और स्थान नियत करना तथा जाँच अधिकारी के समक्ष विधिवत् जाँच आहूत कर, स्थापना को आरोपों के समर्थन में अभिलेखीय एवं मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बाध्य करना सम्मिलित था। प्रतीत होता है कि यह सब नहीं किया गया। यह उल्लंघन कार्यवाही को आरोप-पत्र के स्तर से ही दोषयुक्त कर देता, जिससे उस

स्तर से (नवीन) जाँच की आवश्यकता पड़ती। परन्तु तथ्यों के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की घटनाएँ ऐसा नहीं होने देतीं, क्योंकि जो दंड अधिरोपित किया गया है, वह संचयी प्रभाव सहित दो वेतन-वृद्धियों को रोकने का दंड है—न कि विनियम 84 के अन्तर्गत वे तीन प्रमुख दंड, जिनके लिए विधिवत् अनुशासनात्मक कार्यवाही अनिवार्य होती है।

11. सामान्यतः, विधि तथा अधिकांश सेवा-नियमों के अन्तर्गत संचयी प्रभाव सहित—एक या अधिक—वेतन-वृद्धियाँ रोकने का दंड प्रमुख दंड माना जाता है। किंतु यहाँ, विनियम 84 की व्यवस्था भिन्न है। वर्ष 1975 के विनियमों का विनियम 84 इस प्रकार प्रावधान करता है:

“84. दण्ड —

(i) किसी अन्य विनियम में अंतर्विष्ट प्रावधानों की अवहेलना किए बिना, कोई कर्मचारी, जिस पर आरोपित कर्तव्य का उल्लंघन करता है या किसी आपराधिक अपराध अथवा अधिनियम की धारा 103 के अधीन किसी अपराध में दोषसिद्ध होता है, या इन विनियमों द्वारा निषिद्ध कोई कार्य करता है, तो उसे निम्नलिखित दण्डों में से किसी एक से दण्डित किया जा सकेगा:—

(a) ताड़ना,

(b) वेतन-वृद्धि रोकना,

(c) श्रेणी-IV (चपरासी, चौकीदार आदि) के कर्मचारी पर जुर्माना,

(d) सहकारी समिति को कर्मचारी के व्यवहार से हुई किसी आर्थिक क्षति की भरपाई हेतु वेतन या सुरक्षा-धन से, पूर्ण या आंशिक, वसूली,

(e) कर्मचारी द्वारा विधिवत धारित पद या वेतन-मान में अवनति,

(f) सेवा से हटाना, अथवा

(g) सेवा से बरखास्त करना।

(ii) दण्डादेश की प्रति संबंधित कर्मचारी को अनिवार्यतः दी जाएगी तथा इस आशय की प्रविष्टि कर्मचारी के सेवा अभिलेख में की जाएगी।

(iii) ताड़ना को छोड़कर कोई भी दण्ड तब तक अधिरोपित नहीं किया जाएगा, जब तक कि कर्मचारी को कारण-बताओ-सूचना न दी गई हो, और उसने या तो निर्दिष्ट समयावधि में उत्तर न दिया हो या उसका उत्तर दण्डप्राधिकारी द्वारा असंतोषजनक न पाया गया हो।

(iv) (a) आरोप-पत्रित कर्मचारी को अपराध की गंभीरता के अनुसार उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा दण्डित किया जाएगा:

परंतु यह कि उपखंड (e), (f) या (g) के अधीन कोई दण्ड अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया अपनाए बिना अधिरोपित नहीं किया जाएगा।

(b) किसी कर्मचारी को उस प्राधिकारी के अतिरिक्त, जिसने उसे नियुक्त किया है, कोई अन्य प्राधिकारी तब तक सेवा से नहीं हटाएगा या बरखास्त नहीं करेगा, जब तक कि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा लिखित रूप में पूर्व अधिकरण उस अन्य व्यक्ति या प्राधिकारी को न दिया गया हो।”

(v) नियुक्ति प्राधिकारी या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति, वेतन-वृद्धि रोकने का आदेश पारित करते समय यह उल्लेख करेगा कि वेतन-वृद्धि किन अवधि के लिए रोकी जा रही है तथा क्या उसका प्रभाव भविष्य की वेतन-वृद्धियों या पदोन्नति को स्थगित करने का होगा।

12. यह सोचा जा सकता है कि संचयी प्रभाव के साथ वेतन-वृद्धियाँ रोकने की दण्ड-विधि, जिसका परिणाम भविष्य की वेतन-वृद्धियों को स्थगित करना होता है, सामान्यतया प्रचलित मानकों के अनुसार निश्चय ही एक गंभीर दण्ड मानी जानी चाहिए; और इस सीमा तक विनियम 84 दण्डों का मनमाने ढंग से वर्गीकरण करता प्रतीत होता है। परन्तु, इस विनियम को याचिकाकर्ता द्वारा असंवैधानिक कहकर चुनौती न दिए जाने की दशा में, इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता। विनियम 84 की वैधता की समीक्षा का वह दुर्लभ मार्ग तभी अपनाया जा सकता था जब सुनवाई के दौरान न्यायालय के समक्ष ऐसा प्रश्न उभरता तथा इस विषय पर प्रतिवादियों को नोटिस जारी कर दिया जाता। ऐसा न तो कभी सुनवाई के दौरान उठाया गया और न ही कोई औपचारिक चुनौती दी गई। फलस्वरूप, यह निष्कर्ष निकलता है कि यहाँ किए गए अनुशासनात्मक कार्यवाही में लागू प्रक्रिया का निर्धारण पूर्णतया विनियम 84 द्वारा ही होगा, तथा दंडों के उसके अपने वर्गीकरण और उन्हें वैध रूप से अधिरोपित करने हेतु अपेक्षित प्रक्रिया का पालन किया जाना आवश्यक होगा। इस संदर्भ में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन का उल्लेख किया जा सकता है, जो **विशेष अनुमति याचिका (नागरिक) सं. 18983 वर्ष 2023, बिहार राज्य दफादार चौकीदार पंचायत (मगध प्रभाग) बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, दिनांक 02.04.2025 के निर्णय में निहित है।**

13. विनियम 84(i) तथा विनियम 84(iii)(a) के उपबंध का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि विनियम 84 के खण्ड (i) के उप-खण्ड (e), (f) तथा (g) में विनिर्दिष्ट दंड को छोड़कर अन्य किसी भी दंड के लिए औपचारिक अनुशासनात्मक कार्यवाही अपनाया जाना आवश्यक नहीं है। विनियम 84(iii) से भी यह परिलक्षित होता है कि उप-खण्ड (a) से (d) में विनिर्दिष्ट सभी दंड, निन्दा को छोड़कर, कारण बताओ नोटिस जारी कर तथा कर्मचारी को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान कर लगाए जा सकते हैं। यहाँ, यद्यपि कार्यवाही का प्रारम्भ विनियम 84 के खण्ड (i) के उप-खण्ड (e), (f) और (g) में विनिर्दिष्ट दंड अधिरोपित करने के उद्देश्य से किया गया था, परन्तु सम्पूर्ण कार्यवाही का परिणाम यह हुआ कि अंततः जो दंड अधिरोपित किया गया, वह विनियम 84 के खण्ड (i) के उप-खण्ड (b) के अंतर्गत आने वाला दंड था। यह दंड विनियम 84 के अंतर्गत कारण बताओ नोटिस देकर अधिरोपित किया जा सकता था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई कार्यवाही का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा कार्यवाही के विभिन्न चरणों पर उसे अवसर तथा कारण बताओ नोटिस प्रदान किए गए, तथा इसके अतिरिक्त, अधिक विस्तृत प्रक्रिया के अंतर्गत जाँच अधिकारी के समक्ष भी अतिरिक्त अवसर उपलब्ध कराया गया। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता पर अधिरोपित दंड की श्रेणी को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि निर्धारित प्रक्रिया का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है।

14. विवादित आदेश का अवलोकन करने से भी यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष कारण बताने का समुचित अवसर प्रदान किया गया था। परिणामतः निष्कर्ष यह होगा कि यद्यपि जो अनुशासनिक कार्यवाही संचालित की गई, वह उस प्रक्रिया के अनुसार नहीं हुई, जो उन दंडों के लिए विनिर्दिष्ट है, जिन्हें प्रतिवादीगण संभवतः लक्षित कर रहे थे – अर्थात् विनियम 84 के खण्ड (i) के उप-खण्ड (e), (f) एवं (g) द्वारा

शासित दंड – किन्तु वास्तविक रूप से अधिरोपित दंड, अर्थात् विनियम 84 के खण्ड (i) के उप-खण्ड (b) के अंतर्गत संचयी प्रभाव सहित वेतन वृद्धियों का प्रतिहारण, के लिए किसी प्रकार की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं हुआ।

15. अन्य जो बिन्दु प्रस्तुत किया गया, वह यह है कि विवादित आदेश अप्रमाणित है क्योंकि वह असंगत है और कारणों का उल्लेख नहीं करता, जो कि प्रक्रिया की निष्पक्षता तथा प्राकृतिक न्याय के नियमों, दोनों के प्रतिकूल है। इस संदर्भ में **बासुदेव दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन SC 3616** का उल्लेख किया जा सकता है, जहाँ माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यहाँ निहित प्रश्न पर निम्न सिद्धांत प्रतिपादित किया है:

“12.2. यह स्थापित विधि है कि प्रत्येक प्रशासनिक अथवा अर्द्ध-न्यायिक आदेश में कारणों का उल्लेख होना अपरिहार्य है। ऐसे कारण न केवल यह सुनिश्चित करते हैं कि प्राधिकारी ने तथ्यों और विधि पर अपना मन लगाया है, बल्कि यह भी कि पीड़ित पक्ष को उस आदेश को विधि द्वारा मान्य तरीके से चुनौती देने के लिए आधार प्राप्त हो सके। कारणों के अभाव में न्यायिक प्राधिकारियों के लिए भी आदेश की शुद्धता की जांच करना, अथवा अन्य शब्दों में, अपने न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार का प्रयोग करना दुष्कर हो जाता है। इस संदर्भ में, इस न्यायालय के निर्णय क्रान्ति एसोसिएट्स (प्रा) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान, (2010) 9 एससीसी 496: (2010) 3 एससीसी (सीआईबी) 852 का उल्लेख उपयोगी होगा, जहाँ विभिन्न निर्णयों का विस्तृत विश्लेषण करने के उपरान्त निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था:

“27. राम वर्मा भरतन थंपुरम बनाम केरल राज्य [(1979) 4 एससीसी 782 : एआईआर 1979 SC 1918] में तीन-न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर ने यह प्रतिपादित किया कि बोर्ड का कार्य-संचालन अर्द्ध-न्यायिक स्वरूप का है। अर्द्ध-न्यायिक कार्य-संचालन का एक गुण यह है कि लिए गए निर्णयों के समर्थन में कारणों का अंकन किया जाए, और दूसरा यह कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किया जाए। माननीय न्यायमूर्ति ने कहा कि प्राकृतिक न्याय यह अपेक्षा करता है कि निष्कर्षों के लिए लिखित रूप में कारण दर्ज किए जाएँ (देखें SCC पृष्ठ 788, अनुच्छेद 14 : AIR पृष्ठ 1922, अनुच्छेद 14)।

“28. गुरदयाल सिंह फिज्जी बनाम पंजाब राज्य [(1979) 2 एससीसी 368: 1979 एससीसी (एल एंड एस) 197] में, इस न्यायालय ने, सेवा-विवाद से सम्बन्धित मामले में, कपूर [(1973) 2 एससीसी 836: 1974 एससीसी (एल एंड एस) 5 : एआईआर 1974 एससी 87] में प्रतिपादित सिद्धांत पर भरोसा करते हुए यह कहा कि ‘रबर-स्टैम्प कारण’ पर्याप्त नहीं होता, और कपूर (उपर्युक्त) में एससीसी पृष्ठ 854, अनुच्छेद 28 में किए गए अवलोकन को वस्तुतः उद्धृत किया, जहाँ यह कहा गया है कि:

“28. ... कारण वे कड़ियाँ हैं जो उन सामग्रियों को, जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित हैं, वास्तविक निष्कर्षों से जोड़ती हैं।” (देखें AIR पृष्ठ 377, अनुच्छेद 18.)”

“29. इस न्यायालय के संविधान पीठ के निर्णय श्री अमर मठ के परम पूजनीय स्वामीजी बनाम आयुक्त, हिन्दू धार्मिक एवं परोपकारी बंदोबस्त विभाग [(1979) 4 एससीसी 642 : 1980 एससीसी (कर) 16 : एआईआर 1980 एससी 1] में, बहुमत निर्णय देते हुए न्यायमूर्ति वाई. वी. चन्द्रचूड़, मुख्य न्यायाधीश ने ब्रूमस लीगल मैक्सिमस का उल्लेख किया (1939 संस्करण, पृष्ठ 97) का उल्लेख किया (SCC पृष्ठ 658, अनुच्छेद 29), जहाँ उक्त सिद्धांत लैटिन में इस प्रकार प्रतिपादित है:”

“जब किसी विधि का आधार या औचित्य समाप्त हो जाता है, तब वह विधि स्वयं भी समाप्त मानी जाती है।”

30. उक्त सिद्धांत का अंग्रेजी रूप मुख्य न्यायाधीश द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है (एच एच श्री स्वामीजी मामला, एससीसी पी। 658, पैरा 29):

29. “कारण ही विधि का प्राण है, और जब किसी विशेष विधि का कारण समाप्त हो जाता है, तब वह विधि स्वयं भी समाप्त हो जाती है।” (देखें एआईआर पृष्ठ 11, पैरा 29।

.....

33. स्टार एंटरप्राइजेज बनाम महाराष्ट्र लिमिटेड का शहर और औद्योगिक विकास निगम [(1990) 3 एससीसी 280] में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने यह प्रतिपादित किया कि वर्तमान व्यवस्था में प्रशासनिक कार्यवाहियों का न्यायिक पुनरावलोकन व्यापक हो गया है और निरंतर विस्तार पा रहा है, तथा राज्य को लोक-न्याय के विभिन्न क्षेत्रों में अपने कार्यों को उचित ठहराना होता है। इन सबके कारण कार्यपालिका द्वारा किये जाने वाले निर्णयों-विशेषकर सर्वोच्च निविदा को अस्वीकार करने जैसे निर्णयों-के लिए कारणों का उल्लेख अनिवार्य हो जाता है। न्यायालय ने कहा कि ऐसे अस्वीकार के कारणों का प्रकटीकरण उच्च प्रशासनिक अधिकारियों तथा न्यायालय, दोनों स्तरों पर वस्तुनिष्ठ पुनरावलोकन का अवसर प्रदान करता है, और यह भी मत व्यक्त किया कि सामान्यतः ऐसे कारणों का संप्रेषण किया जाना चाहिए, जब तक कि उन्हें न बताने का कोई विशेष औचित्य न हो (देखें SCC पृ. 284-85, पैरा 10)।

.....

46. संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति का संकेत इस न्यायालय ने **एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ [(1990) 4 एस.सी.सी. 594 : 1990 एस.सी.सी. (क्रि.) 669 : 1991 एस.सी.सी. (एल.एण्ड एस.) 242 : (1991) 16 ए.टी.सी. 445 : ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 1984]** में एस.सी.सी. पृष्ठ 602, पैरा 11 : ए.आई.आर. पैरा 11, पृष्ठ 1988 पर स्पष्ट किया है। न्यायालय ने कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रशासनिक प्राधिकारियों द्वारा अपने अधिकारों के प्रयोग में कारणों का अभिलेखन करने पर सदैव बल दिया गया है। यह भी प्रतिपादित किया गया कि कारणों का यह अभिलेखन आवश्यक है क्योंकि “जब तक संबंधित आदेश के आधारभूत विचारों की जानकारी न हो, तब तक न्यायालय अपने पुनरावलोकन के दायित्व का निर्वहन नहीं कर सकते।” **एस.एन. मुखर्जी (उपर्युक्त)** मामले में, इस न्यायालय ने अपने उपर्युक्त मत के समर्थन में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों **सिक्नोरिटीज एण्ड एक्सचेंज कमीशन बनाम चेनेरी कॉरपोरेशन [87 एल.एड. 626 : 318 यू.एस. 80 (1943)]** तथा **इनलप बनाम बाकोव्स्की [44 एल.एड. 2d 377 : 421 यू.एस. 560 (1975)]** पर भरोसा किया।

47. उपर्युक्त चर्चा का संक्षेप करते हुए, यह न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्ष प्रतिपादित करता है—

(क) भारत में न्यायिक प्रवृत्ति सदैव यह रही है कि यदि किसी प्रशासनिक निर्णय से किसी व्यक्ति के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो ऐसे निर्णयों में कारणों का अभिलेखन किया जाना आवश्यक है।

(ख) कोई भी अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारणों को अवश्य अभिलिखित करेगा।

(ग) कारण लिखने पर जोर देने का उद्देश्य न्याय के व्यापक सिद्धांत की रक्षा करना है—अर्थात् न्याय केवल किया ही न जाए, बल्कि होता हुआ भी दिखाई दे।

(घ) कारणों का अभिलेखन न्यायिक, अर्ध-न्यायिक, या यहां तक कि प्रशासनिक शक्तियों के संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध अंकुश का कार्य करता है।

(ड) कारण यह आश्वस्त करते हैं कि निर्णयकर्ता ने विवेकाधिकार का प्रयोग प्रासंगिक आधारों पर किया है तथा अप्रासंगिक विचारों को अनदेखा किया है।

(च) कारण, न्यायिक, अर्ध-न्यायिक तथा प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन जितने ही अनिवार्य निर्णय-निर्माण प्रक्रिया के अभिन्न अंग बन गये हैं।

(छ) कारण उच्च न्यायालयों द्वारा होने वाले न्यायिक पुनरावलोकन को सुगम बनाते हैं।

(ज) विश्व के वे सभी देश जो विधि के शासन और संवैधानिक शासन के प्रति प्रतिबद्ध हैं, वहाँ निर्णय युक्तिसंगत कारणों तथा प्रासंगिक तथ्यों पर आधारित होते हैं—और यह न्यायिक निर्णय-निर्माण की जीवन-रेखा के समान है, जो यह सिद्ध करती है कि तर्क ही न्याय की आत्मा है।

(झ) आजकल न्यायालयों या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों के मत, उन्हें देने वाले न्यायाधीशों अथवा अधिकारियों की भाँति भिन्न हो सकते हैं; किन्तु इन सबका उद्देश्य एक ही है—यह प्रदर्शित करना कि निर्णय तर्क पर आधारित है और प्रासंगिक तथ्यों का वस्तुनिष्ठ परीक्षण किया गया है। यही प्रक्रिया न्याय-व्यवस्था में वादकारियों के विश्वास को बनाए रखती है।

(ञ) कारणों पर जोर देना न्यायिक उत्तरदायित्व तथा पारदर्शिता दोनों की मांग है।

(ट) यदि कोई न्यायाधीश अथवा अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण अपने निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया के प्रति स्पष्ट नहीं है, तो यह जानना असंभव है कि निर्णयकर्ता पूर्ववृत्त का पालन कर रहा है या क्रमिक विकास के सिद्धांत का।

(ठ) निर्णयों के समर्थन में कारण प्रभावी, स्पष्ट तथा संक्षिप्त होने चाहिए। कृत्रिम कारण या रबर-स्टैम्प कारण एक वैध निर्णय-निर्माण प्रक्रिया के समकक्ष नहीं माने जा सकते।

(ड) यह संदेह नहीं किया जा सकता कि पारदर्शिता न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर अंकुश का अविभाज्य तत्व है। निर्णय-निर्माण में पारदर्शिता न केवल निर्णयकर्ताओं की त्रुटियों को कम करती है, बल्कि उन्हें व्यापक जांच के अधीन भी लाती है। (देखिए—डेविड शैपिरो, इन डिफेन्स ऑफ़ ज्युडिशियल कैंडर, 100 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731-37, सन् 1987)

(ढ) चूँकि निर्णय में कारण अभिलिखित करने की आवश्यकता न्यायोचित प्रक्रिया के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, अतः यह आवश्यकता अब लगभग मानव अधिकारों का अविभाज्य हिस्सा बन चुकी है। इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का अंग भी माना गया है। देखिए—**रूईज़ टोरिजा बनाम स्पेन** [(1994) 19 ईएचआरआर 553], पैरा 29, पृष्ठ 562 तथा **एन्या बनाम यूनिवर्सिटी ऑफ़ ऑक्सफ़र्ड** [2001 ईडब्ल्यूसीए सीआईवी 405 (सीए)] जहाँ न्यायालय ने यूरोपीय मानवाधिकार अभिसमय के अनुच्छेद 6 का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार “न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और बौद्धिक रूप से ईमानदार कारण दिए जाने चाहिए।”

(ण) सभी कॉमन लॉ क्षेत्रों में, निर्णय कानून के विकास हेतु भविष्य के लिए पूर्ववृत्त स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः निर्णय में कारण देने की आवश्यकता न्यायिक प्रक्रिया का अत्यंत आवश्यक भाग है।

16. उपस्थित वाद में पारित विवादित आदेश का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि आदेश में प्रक्रिया-सम्बन्धी विभिन्न चरणों का विस्तार से उल्लेख है—कि किस प्रकार और किस समय कौन-सा नोटिस याचिकाकर्ता को, तथा किस प्राधिकारी द्वारा दिया गया—परन्तु इसमें यह तक संकेत नहीं मिलता कि बैंक के सचिव/मुख्य कार्यपालक अधिकारी अथवा वास्तविक निर्णय-निर्माता अर्थात् बैंक की प्रबन्ध समिति ने आरोपों

का किस प्रकार परीक्षण किया, याचिकाकर्ता की प्रत्युत्तर-दलीलों पर क्या विचार किया गया और किस तर्क के आधार पर सभी आरोप याचिकाकर्ता के विरुद्ध सिद्ध माने गये। तीनों आरोपों के विशिष्ट अवयवों, याचिकाकर्ता की प्रतिरक्षा-दलीलों तथा यह निष्कर्ष निकालने के कारणों—कि आरोप किस आधार पर *प्रभावी प्रबल संभावना* के मानक पर सिद्ध माने गये—इन सब पर किसी भी चर्चा के अभाव में प्रबन्ध समिति का अन्तर्निहित निर्णय, जो सचिव/मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा पारित विवादित आदेश में व्यक्त हुआ है, प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है। अन्य विवरणों पर शब्दबहुल होने के बावजूद आदेश इस महत्वपूर्ण पहलू पर मौन है कि निर्णय-निर्माताओं के मस्तिष्क में ऐसा क्या विचार-क्रम चला जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप सिद्ध मान लिये गये। अतः यह आदेश आवश्यक न्यायिक मानकों पर खरा नहीं उतरता।

17. केवल इसी संक्षिप्त आधार पर हम यह समझते हैं कि विवादित आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए और विषय को प्रतिवादियों के पास इस निर्देश के साथ वापस भेजा जाना चाहिए कि वे याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार करने के बाद एक नया आदेश पारित करें; स्वाभाविक रूप से, उसे यह अतिरिक्त अवसर दिया जाए कि वह अपनी इच्छानुसार किसी भी दस्तावेज़ सहित एक *पूरक उत्तर* दाखिल करे और उसे पहले की भाँति व्यक्तिगत रूप से पुनः सुना जाए। हम यह मानते हैं कि *अनुशासनिक प्राधिकारी* के समक्ष व्यक्तिगत सुनवाई आवश्यक है क्योंकि पहले निर्णय में भी याचिकाकर्ता को सुना गया था, और यह सम्भव है कि पदाधिकारी बदल गए हों या समय बीतने के कारण उनकी स्मृति धूमिल हो गई हो। अतः, व्यक्तिगत सुनवाई पुनः करना आवश्यक है।

18. कोई अन्य बिंदु नहीं उठाया गया।

19. परिणामतः, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। दिनांक 28.02.2023 को बैंक के सचिव/मुख्य कार्यपालक अधिकारी द्वारा पारित विवादित आदेश यहाँ पर निरस्त किया जाता है। प्रतिवादियों को यह *स्वतंत्रता* रहेगी कि वे याचिकाकर्ता को आवश्यक सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए, आरोपों के गुण-दोष के आधार पर, इस निर्णय में प्रदत्त मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए, विवेचित तथा स्पष्ट कारणों सहित नया आदेश पारित करें। यह भी आदेशित किया जाता है कि यदि नए आदेश में अनुशासनात्मक प्राधिकारी याचिकाकर्ता के विरुद्ध निष्कर्ष पर पहुँचता है, तो विवादित आदेश में दी गई दंड से अधिक दंड आरोपित नहीं किया जाएगा।

20. व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

21. इस निर्णय की एक प्रति पंजीयक, सहकारिता समितियाँ, उ.प्र., लखनऊ, अध्यक्ष, प्रबन्ध समिति, ज़िला सहकारी बैंक लिमिटेड, बरेली, तथा सचिव/मुख्य कार्यपालक अधिकारी, ज़िला सहकारी बैंक लिमिटेड, बरेली को रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा प्रेषित की जाए।

(2025) 6 ILRA 148

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 13.06.2025

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर के समक्ष

रिट - ए संख्या 19578 वर्ष 2024

राकेश कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अर्चना सिंह, श्रीप्रकाश सिंह

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता: सी.एस.सी., रविंद्र सिंह

A. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश गन्ना सहकारी सेवा विनियमावली, 1975 - विनियम 68 एवं 69 - याचिकाकर्ता ने दिनांक 11.03.2022 के अनुशासनात्मक आदेश को चुनौती दी, जो गन्ना आयुक्त, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता पर दो वेतनवृद्धियों को संचयी प्रभाव सहित रोके जाने, हुई हानि की आनुपातिक वसूली तथा निंदा का दंड आरोपित किया गया था तथा अपीलीय आदेश दिनांक 24.09.2024 द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही को पुष्टि प्रदान की गई थी - याचिकाकर्ता, जो गन्ना सहकारी समिति में कैशियर के पद पर कार्यरत था, के विरुद्ध आरोप वित्तीय लापरवाही से संबंधित थे, जिसके कारण 75 लाख रुपये की वित्तीय हानि होने का आरोप था - विभागीय जांच की गई, जिसमें जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता को दोषी पाया - न्यायालय ने पाया कि जांच में विनियम 1975 के विनियम 68 एवं 69 के अंतर्गत अनिवार्य प्रक्रियात्मक सुरक्षा का उल्लंघन किया गया - जांच कार्यवाही के दौरान न तो किसी गवाह का परीक्षण किया गया और न ही कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया गया - जांच अधिकारी ने केवल आरोप-पत्र और उत्तर पर ही अवलंबन किया तथा उचित साक्ष्यात्मक कार्यवाही नहीं की - आरोप-पत्र स्वयं भी दोषपूर्ण था क्योंकि उसमें प्रत्येक आरोप के संबंध में प्रस्तावित साक्ष्य का विवरण नहीं दिया गया था - स्थापित विधि तथा सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर आधारित होकर न्यायालय ने यह धारित किया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में, विशेष रूप से जहाँ प्रमुख दंड आरोपित हो, साक्ष्य का प्रस्तुत किया जाना तथा गवाहों का परीक्षण अनिवार्य है। (पैरा 1 से 28)

रिट याचिका अनुमन्य की गई तथा अनुशासनात्मक एवं अपीलीय दोनों आदेश निरस्त कर दिए गए। (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2 एस.सी.सी. 772
2. रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य (2009) 2 एस.सी.सी. 570
3. उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (2008) 8 एस.सी.सी. 236
4. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम किशोरी लाल एवं अन्य (2018) 9 ए.डी.जे. 397, डी.बी. (एल.बी.)
5. श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2018) 9 ए.डी.जे. 107, डी.बी. (एल.बी.)
6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव एवं अन्य (2017) 2 ए.डी.जे. 554, डी.बी. (एल.बी.)
7. सत्येन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2024) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 3325

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा प्रदत्त)

1. यह वाद गन्ना आयुक्त तथा अध्यक्ष, राज्य गन्ना सेवा प्राधिकरण, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा दिनांक 11.03.2022 को पारित आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके माध्यम से अनुशासनात्मक कार्यवाही संपादित करने के उपरांत याची को दो वेतन वृद्धि रोकने (संचयी प्रभाव सहित), सहकारी गन्ना विकास समिति लिमिटेड, शामली को हुए नुकसान की अनुपातिक वसूली का निर्देश देने तथा उसकी निन्दा करने की दण्ड-सजा दी गई है। याची ने दिनांक 24.09.2024 को आयुक्त, गन्ना एवं चीनी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा पारित अपीलीय आदेश, जिसके द्वारा याची की अपील खारिज कर दण्डादेश की पुष्टि की गई, को भी चुनौती दी है।

2. याची 03.10.2018 से थाना भवन, जनपद शामली स्थित गन्ना सहकारी विकास समिति में कैशियर के पद पर तैनात था। याची की सेवा शर्तें समय-समय पर संशोधित उत्तर प्रदेश गन्ना सहकारी सेवा विनियमावली, 1975 (संक्षेप में, '1975 की विनियमावली') द्वारा नियंत्रित होती हैं। याची को उप गन्ना आयुक्त, मुरादाबाद द्वारा, जिन्हें जांच अधिकारी नामित किया गया था, दिनांक 28.12.2020 को आरोप पत्र जारी किया गया, जिसमें निम्नलिखित आरोप लगाए गए थे:

“आरोप संख्या-1 :

गन्ना आयुक्त एवं निबंधक, सहकारी गन्ना समितियाँ, उत्तर प्रदेश के परिपत्र संख्या: 21/सी दिनांक 10.06.2019 के प्रस्तर -21 में निर्धारित व्यवस्था कि, गन्ना समिति के कोषाध्यक्ष, लेखाकार एवं सचिव का दायित्व होगा कि विनियोजित धनराशि की परिपक्वता तिथि पर धनराशि को समिति खाते में प्राप्त करने अथवा विनियोजित धनराशि को ब्याज सहित आगे की अवधि के लिए विनियोजित किये जाने के संबंध में ससमय निर्णय करायेंगे। यदि इसमें किसी प्रकार की चूक होती है और गन्ना समिति को ब्याज की हानि होती है, तो संबंधित कोषाध्यक्ष, लेखाकार एवं सचिव का दायित्व निर्धारित किया जाएगा। आप द्वारा उक्त निर्देशों का अनुपालन नहीं किया गया, जिसके कारण तत्कालीन कार्यवाहक लेखाकार द्वारा 'सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, खतौली से फर्जी एफ.डी.आर. संख्या 3756234723, दिनांक 24.05.2019, रु. 75.00 लाख बनवाकर समिति धन का व्यपहरण किया गया है। यदि आप अपने पदीय पदायित्वों का निर्वहन करते हुए उक्त एफ.डी.आर. का सत्यापन किया गया होता ,

तो तत्काल ही व्यवहरण संज्ञानित हो जाता। आप द्वारा अपने पदीय दायित्वों का निर्वहन न करने से उक्त व्यपहरण में आपकी संलिप्तता भी परिलक्षित होती है, जिसके लिए आप दोषी प्रतीत होते हैं।

साक्ष्य : उप गन्ना आयुक्त, सहारनपुर की जाँच आख्या, पत्र संख्या 1645/जाँच, दिनांक 01.09.2020

आरोप संख्या-2 :

कोषाध्यक्ष के रूप में समिति के संव्यवहारों की निगरानी, विनियोजित धनराशि के मदवार प्राप्ति एवं उनका ससमय सत्यापन करने में आप द्वारा शिथिलता बरती गयी, जिसके कारण उक्त व्यपहरण हुआ। इस प्रकार आप कोषाध्यक्ष पद के पदीय दायित्वों का निर्वहन न करके समिति को वित्तीय हानि पहुँचाने में संलिप्त रहने के दोषी प्रतीत होते हैं।

साक्ष्य : उप गन्ना आयुक्त, सहारनपुर की जाँच आख्या, पत्र संख्या 1645/जाँच, दिनांक 01.09.2020

आरोप संख्या-3 :

आप द्वारा समिति के संव्यवहारों से संबंधित बैंक रिकॉन्सिलेशन स्टेटमेंट को सत्यापित करने में शिथिलता बरती गयी, जिसके कारण उक्त व्यपहरण ससमय पर प्रकाश में नहीं आ पाया, जिसके लिए आप दोषी प्रतीत होते हैं।

साक्ष्य : उप गन्ना आयुक्त, सहारनपुर की जाँच आख्या, पत्र संख्या 1645/जाँच, दिनांक 01.09.2020

आरोप संख्या-4 :

आप अपने पदीय दायित्वों का समुचित निर्वहन न करने, वित्तीय नियमों का अनुपालन न करने विभागीय आदेशों/निर्देशों की अवहेलना करने के दोषी प्रतीत होते हैं।

साक्ष्य : उप गन्ना आयुक्त, सहारनपुर की जाँच आख्या, पत्र संख्या 1645/जाँच, दिनांक 01.09.2020

3. याचिकाकर्ता ने अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुत किया और आरोपों का खण्डन किया। उसका प्रत्युत्तर दिनांक 18.01.2021 का है।

4. हम आरोपपत्र की विषय-वस्तु, याचिकाकर्ता के प्रत्युत्तर या उसे सिद्ध मानने के लिए विचारित साक्ष्यों में नहीं जाना चाहते, क्योंकि साक्ष्य का मूल्यांकन करना हमारा क्षेत्राधिकार नहीं है। यह कार्य अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथा अपील प्राधिकारी का ही विशेषाधिकार है।

5. यहाँ प्रश्न यह है कि जांच के दौरान अपनाई गई कार्यवाही की निष्पक्षता कैसी रही और क्या किसी भी चरण पर याचिकाकर्ता को सुनवाई के अधिकार से वंचित किया गया या उसके साथ अनुचित व्यवहार किया गया।

जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 28.08.2021 को प्रस्तुत की, जिसमें याचिकाकर्ता को आरोप संख्या 1 और 4 में दोषी ठहराया गया, जबकि आरोप संख्या 2 और 3 से मुक्त कर दिया गया।

6. उक्त जांच प्रतिवेदन के आधार पर अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 24.09.2021 का कारण बताओ नोटिस जारी किया, जिसमें याचिकाकर्ता को एक प्रमुख दंड देने का प्रस्ताव किया गया तथा नोटिस के साथ जांच प्रतिवेदन की प्रति संलग्न कर याचिकाकर्ता से उत्तर देने की अपेक्षा की गई। याचिकाकर्ता ने अपना स्पष्टीकरण दिनांक 29.11.2021 को प्रस्तुत किया और स्वयं को दोषमुक्त किए जाने का अनुरोध किया। इसके उपरांत, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 11.03.2022 के माध्यम से याचिकाकर्ता को उसी प्रकार दंडित किया, जैसा कि इस आदेश के प्रारम्भ में वर्णित है। उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने अपील दिनांक 18.09.2023 के द्वारा अपील प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी। अपील प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता की अपील को आदेश दिनांक 24.09.2024 द्वारा अस्वीकार कर दिया।

7. उक्त आदेशों से अकृतार्थ होकर, याचिकाकर्ता ने यह रिट याचिका संस्थित की है।

8. 10.12.2024 को नोटिस ऑफ मोशन जारी किया गया। इसके प्रत्युत्तर में प्रतिवादी संख्या 3, 4 एवं 5 की ओर से संयुक्त रूप से एक प्रतिजवाब-शपथपत्र दाखिल किया गया तथा प्रतिवादी संख्या 6 की ओर से एक पृथक प्रतिजवाब-शपथपत्र दाखिल किया गया, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3, 4 एवं 5 की ओर से दाखिल प्रतिजवाब-शपथपत्र के कथनों को अपनाया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 20.12.2024 को की गई पेशी पर पुनर्जवाब दाखिल करने के अपने अवसर को त्याग दिया। पक्षकारों द्वारा अपने-अपने शपथपत्रों का आदान-प्रदान कर लेने के उपरांत, वाद को सुनवाई हेतु स्वीकार किया गया और तत्क्षण सुनवाई प्रारम्भ हुई। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

9. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री श्रीप्रकाश सिंह को सुना गया प्रतिवादी संख्या 3, 4, 5 एवं 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री रविन्द्र सिंह को सुना गया प्रतिवादी संख्या 1 एवं 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री शरद चन्द्र उपाध्याय को भी सुना गया।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का सार यह है कि यद्यपि याचिकाकर्ता पर एक गंभीर दंड आरोपित किया गया है, तथापि वह अनिवार्य एवं संरक्षणात्मक प्रक्रिया—जो ऐसे मामलों में विभागीय कार्यवाही हेतु विधि द्वारा अपेक्षित है—का पालन नहीं किया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का आग्रह है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समर्थन में एक भी साक्षी का परीक्षण नहीं किया गया। उनके अनुसार, बिना साक्षियों के परीक्षण और बिना अभियोजन द्वारा किसी भी प्रमाणिक सामग्री को प्रस्तुत किए, केवल आरोपपत्र और याचिकाकर्ता के उत्तर को देखकर ही जांच अधिकारी द्वारा आरोपों को सिद्ध नहीं माना जा सकता था।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान याचिका के अनुच्छेद-संख्या 37 की ओर आकर्षित कराया है, जहाँ विशेष रूप से यह आग्रह किया गया है कि न तो किसी साक्षी का परीक्षण किया गया और न ही कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया। प्रतिवादी-संख्या 3, 4 एवं 5 की ओर से दायर प्रति-शपथपत्र में उपर्युक्त आग्रह का उत्तर अनुच्छेद-संख्या 41 में निम्नलिखित शब्दों में दिया गया है:

“41. याचिका के अनुच्छेद 37 एवं 38 के विषय-वस्तु के उत्तर में यह निवेदन किया जाता है कि दोषारोपित कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत उत्तर-पत्र का परीक्षण करने पर यह पाया गया कि उक्त कर्मचारी ने न तो उन आरोपों के संदर्भ में कोई उत्तर प्रस्तुत किया, जो प्रमाणित पाए गए थे, और न ही अपने उत्तर-पत्र में व्यक्तिगत सुनवाई की इच्छा व्यक्त की। जबकि, 24.09.2021 के पत्र द्वारा निर्गत कारण बताओ नोटिस में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि— “यदि आप व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करना चाहते हों अथवा किसी साक्षी द्वारा आपके प्रतिपरीक्षण कराए जाने के इच्छुक हों, तो इसे अपने उत्तर-पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख करें।”

“दिनांक 24.09.2021 के पत्र द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस की प्रति इस प्रतिज्ञापत्र के साथ सी.ए.-7 के रूप में संलग्न की जा रही है।”

12. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रतिज्ञापत्र के पैराग्राफ 41 में उद्धृत अंश के बाद 1975 के विनियमों के प्रासंगिक प्रावधानों को भी विस्तार से उद्धृत किया गया है, किन्तु उस भाग को यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है, क्योंकि हम स्वयं आवश्यक प्रावधानों को उद्धृत करेंगे।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अत्यंत जोर देकर यह तर्क दिया है कि जो जाँच सम्पन्न की गई, वह 1975 के विनियमों के अनुरूप जाँच नहीं थी। इन विनियमों के अनुसार, जहाँ भी आरोपों का खंडन किया जाता है, वहाँ अनुशासनात्मक जाँच में अनिवार्य रूप से अन्वेषण अधिकारी द्वारा जाँच की तिथि, समय तथा स्थान निर्धारित किया जाना चाहिए। 1975 के विनियम यह भी अपेक्षित करते हैं कि यदि विभागीय कार्यवाही के परिणामस्वरूप कोई प्रमुख दण्ड लगाए जाने की सम्भावना हो, तो अन्वेषण अधिकारी के समक्ष सुनवाई के दौरान प्रतिष्ठान (स्थापना) द्वारा अपना समस्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है—साक्ष्य चाहे दस्तावेजी हो अथवा मौखिक। मौखिक साक्ष्य से अभिप्रेत है—प्रतिष्ठान के गवाह, जो अपने कथनों के माध्यम से आरोपों को सिद्ध करें तथा संबंधित अभिलेखों को भी सिद्ध करें। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि 1975 के विनियमों के अधीन कोई भी जाँच वैध नहीं मानी जा सकती, यदि अन्वेषण अधिकारी मात्र आरोपपत्र तथा उत्तर-पत्र का अवलोकन कर अपने निष्कर्ष दर्ज कर दे, बिना इस के कि प्रतिष्ठान की ओर से आवश्यक साक्ष्य-दस्तावेजी तथा मौखिक-उत्पादित किए जाएँ और सिद्ध कराए जाएँ।

14. प्रतिवादीगण संख्यांक 3, 4, 5 तथा 6 की ओर से उपस्थित श्री रविन्द्र सिंह, अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सन् 1975 के विनियमों के अधीन आरोप अपने-आप में ही सिद्ध माने जाते हैं, और यदि अभियुक्त कर्मचारी अपनी निर्दोषता सिद्ध करना चाहता है, तो वह उसका दायित्व है। नियोक्ता पर यह दायित्व नहीं है कि वह आरोप/आरोपों को प्रमाणित करे।

15. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचारपूर्वक मनन किया है, अभिलेख का अवलोकन किया है तथा सन् 1975 के विनियमों के प्रासंगिक प्रावधानों का भी परीक्षण किया है।

16. सन् 1975 के विनियमों के प्रासंगिक प्रावधान अध्याय-X में विद्यमान हैं, और वर्तमान विवाद से संबंधित विनियम क्रमांक 68 तथा 69 हैं। सन् 1975 के विनियमों के विनियम 68 एवं 69 इस प्रकार हैं:

68. जिस शिकायत पर प्रारम्भिक जांच के आधार पर अनुशासनात्मक कार्यवाही आवश्यक मानी जाती है, उसके संबंध में आरोपों का विवरण लिखित रूप में तैयार किया जाएगा, जिसे संबंधित अधिकारी को सूचित किया जाएगा तथा उसकी प्रति द्वितीय अनुसूची के स्तंभ 4 में उल्लिखित प्राधिकार को भी भेजी जाएगी। प्रत्येक आरोप का आधार तथा उस आरोप के समर्थन में विचार की जाने वाली साक्ष्य को प्रत्येक आरोप के सामने विस्तार से दिया जाएगा। जांच अधिकारी, प्रत्येक आरोप के लिए संबंधित अधिकारी से निर्धारित समय के भीतर लिखित स्पष्टीकरण माँगेगा तथा यह भी पूछेगा कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुना जाना चाहता है, या कोई साक्ष्य (दस्तावेज़ी या मौखिक) प्रस्तुत करना चाहता है, अथवा अपने बचाव में किसी गवाह से जाँच या प्रतिपरीक्षण कराना चाहता है। (यदि वह चाहेगा तो उसे संबंधित अभिलेखों को देखने की अनुमति दी जाएगी।) उसका स्पष्टीकरण प्राप्त होने के बाद, व्यक्तिगत सुनवाई के लिए एक तिथि निर्धारित की जाएगी, जिस पर मौखिक और दस्तावेज़ी दोनों प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएँगे। अधिकारी को अपनी इच्छा के अनुसार गवाहों से प्रतिपरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी। इसके बाद उसे अपने बचाव में अपने स्वयं के गवाह या दस्तावेज़ प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा। जांच अधिकारी संपूर्ण साक्ष्यों का परीक्षण करके प्रत्येक आरोप पर अपनी निष्कर्षात्मक राय देगा तथा, अपने मूल में, संबंधित अधिकारी पर लगाए जाने वाले दंड की अनुशंसा द्वितीय अनुसूची के स्तंभ 4 में वर्णित प्राधिकारी को करेगा। जांच अधिकारी कार्यवाही का अभिलेख भी संधारित करेगा। यदि संबंधित अधिकारी आरोपपत्र में निर्दिष्ट समय के भीतर पर्याप्त कारण बताए बिना अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में असफल रहता है, तो जांच अधिकारी उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अपने निष्कर्ष देने और सक्षम प्राधिकारी को उपयुक्त दंड की संस्तुति देने के लिए स्वतंत्र होगा।

यदि जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर सक्षम प्राधिकारी संबंधित अधिकारी को बर्खास्त करने, सेवा से हटाने या पदावनत करने का प्रस्ताव करता है, तो वह संबंधित अधिकारी को प्रस्तावित कार्यवाई की सूचना देगा और उसे अपना बचाव प्रस्तुत करने का एक और अवसर प्रदान करेगा। जांच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति भी कारण बताओ नोटिस के साथ संबंधित अधिकारी को उपलब्ध कराई जाएगी। उसे एक उचित समय के भीतर अपना लिखित बचाव-पत्र प्रस्तुत करना होगा तथा यह भी बताना होगा कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुना जाना चाहता है या अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है। यदि वह चाहे तो उसे ऐसा अवसर दिया जाएगा। हालाँकि, सक्षम प्राधिकारी, यदि उचित कारण हों, जिन्हें लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा, तो किसी गवाह को बुलाने से इनकार कर सकता है। जांच की कार्यवाही में साक्ष्यों का पर्याप्त अभिलेख तथा निष्कर्ष और उनके आधार शामिल होंगे।

यदि सक्षम प्राधिकारी, बर्खास्तगी, हटाने या पदावनति के अतिरिक्त कोई अन्य दंड देने का निर्णय लेता है, तो वह जांच अधिकारी की रिपोर्ट के आधार पर अंतिम आदेश पारित कर सकता है।

उपरोक्त प्रक्रिया तब लागू नहीं होगी जब आरोपित अधिकारी फरार हो गया हो या किसी अन्य कारण से उससे संपर्क करना संभव न हो। ऐसे मामलों में जांच अधिकारी सक्षम प्राधिकारी को उपयुक्त कार्रवाई के लिए एक पूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

विशेष परिस्थितियों में, और ऐसे विशिष्ट तथा पर्याप्त कारणों के लिए जिन्हें लिखित रूप में दर्ज किया जाएगा, उपरोक्त प्रक्रिया के सभी या किसी भी प्रावधानों को सक्षम प्राधिकारी द्वारा गन्ना आयुक्त की पूर्व और स्पष्ट स्वीकृति से शिथिल किया जा सकता है, यदि प्रक्रिया की आवश्यकताओं का यथावत पालन करना कठिन हो और यदि उन आवश्यकताओं को शिथिल करने से अधिकारी को कोई अन्याय न हो।

“69. अनुशासनात्मक कार्यवाही के निष्कर्ष पर, सक्षम प्राधिकारी, अपराध की प्रकृति एवं गंभीरता के अनुसार, निम्नलिखित में से कोई एक या अधिक दंड आरोपित कर सकता है:

(a) निन्दा।

(b) वृद्धि या वृद्धियों को रोके जाना, जिसमें अकार्यक्षमता सीमा पर रोक अथवा पदोन्नति रोके जाने सहित।

(c) नीचे के पद पर अथवा निम्न वेतनमान पर अथवा वेतनमान की निम्न कोटि पर अवनति।

(d) जुर्माना।

(e) वेतन से उस धनराशि की पूर्ण अथवा आंशिक वसूली, जो संस्था अथवा उसके अधीन संस्थाओं को उसकी लापरवाही या आदेशों के उल्लंघन से क्षतिग्रस्त हुई हो।

(f) सेवा से हटाया जाना ।

(g) सेवा से बर्खास्त किया जाना।

टिप्पणी (N.B.) – पदच्युति होने की स्थिति में कर्मचारी को पुनः सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य माना जाएगा।

17. प्रारंभ में ही यह उल्लेख करना आवश्यक है कि विभागीय जाँच की कार्यवाही के लिए निर्धारित गुणात्मक सिद्धांत यह अपेक्षा करते हैं कि जाँच अधिकारी द्वारा जाँच की तिथि, समय और स्थान निश्चित किया जाए, और जहाँ मुख्य दंड लगाए जाने की संभावना हो, वहाँ प्रारंभिक रूप से ही संस्था पर यह दायित्व होता है कि वह आरोप सिद्ध करने हेतु अपने दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करे। सामान्यतः, अनुशासनात्मक कार्यवाही को संचालित करने वाले ये गुणात्मक सिद्धांत, उन मामलों में इस प्रकार की कठोर प्रक्रिया अपनाने की अपेक्षा नहीं करते, जहाँ केवल लघु दंड का विचार किया जा रहा हो या अंततः लगाया जा सकता हो। 1975 के विनियम, श्री रवीन्द्र सिंह द्वारा प्रस्तुत तर्क के विपरीत, बिल्कुल भिन्न व्यवस्था प्रदान करते हैं। ये विनियम उन मामलों में, जहाँ मुख्य दंड लगाया जा सकता है अथवा लगाया गया है, और उन मामलों में, जहाँ केवल लघु दंड का विचार है या अंततः लगाया जाता है – दोनों के लिए जाँच की प्रक्रिया में कोई भेद नहीं करते।

18. विनियम 69 स्पष्टतः यह वर्गीकृत करता है कि इसके खंड (e), (f) और (g) के अंतर्गत विचारित दंड मुख्य दंड हैं, जबकि खंड (a), (b), (c) एवं (d) के अंतर्गत आने वाले दंड लघु दंड हैं। विनियम 69 के खंड (e), (f) और (g) द्वारा आच्छादित दंडों तथा खंड (a), (b), (c) और (d) के अंतर्गत आने वाले दंडों के मध्य प्रक्रिया संबंधी जो भिन्नता है, वह जाँच उपरांत चरण में लागू होती है—विशेष रूप से उस दायित्व के संदर्भ में

कि नियोक्ता को जाँच प्रतिवेदन की प्रति सहित कारण बताओ नोटिस जारी करना होता है, जिसे सामान्यतः 'द्वितीय कारण बताओ नोटिस' कहा जाता है। 1975 के विनियमों के विनियम 68 के अंतर्गत, जहाँ अनुशासनिक प्राधिकारी, अपराधी (अधिकारी/कर्मचारी) को बर्खास्त करने, सेवा से हटाने, अथवा पदावनत करने का प्रस्ताव करता है, वहाँ प्राधिकारी पर यह दायित्व है कि वह अपराधी को प्रस्तावित कार्रवाई से अवगत कराए तथा उसे अपनी रक्षा प्रस्तुत करने का एक और अवसर प्रदान करे। इसके लिए, जाँच प्रतिवेदन की प्रति कारण बताओ नोटिस के साथ अपराधी को उपलब्ध कराई जानी आवश्यक है। इसके उपरांत अपराधी को अपनी लिखित रक्षा प्रस्तुत करने तथा यह बताने के लिए उचित समय दिया जाना चाहिए कि क्या वह व्यक्तिगत रूप से सुने जाने या अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने की इच्छा रखता है; और यदि वह ऐसा चाहता है, तो उसे यह अवसर प्रदान किया जाएगा।

19. तथापि, अनुशासनिक प्राधिकारी, पर्याप्त कारणों के आधार पर, जिन्हें लिखित रूप में अंकित किया जाना आवश्यक है, किसी साक्षी को बुलाने से इनकार कर सकता है। अब, 1975 के विनियमों में जाँच-उपरांत चरण की प्रक्रिया से सम्बंधित ये अत्यन्त असामान्य विशेषताएँ हैं। 1975 के विनियमों के अंतर्गत एक अन्य असामान्य प्रक्रिया यह है कि विभागीय जाँच अधिकारी द्वारा जाँच पूर्ण होने तक, यह भेद नहीं किया गया है कि मामला मुख्य दंड से सम्बंधित है या लघु दंड से। दोनों ही परिस्थितियों में, जाँच अधिकारी को जाँच हेतु तिथि, समय और स्थान नियत करना होता है, तथा संस्था/नियोक्ता को दस्तावेजी एवं मौखिक—दोनों प्रकार के साक्ष्य प्रस्तुत करने होते हैं। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, सामान्यतः लागू होने वाले सलूतरी सिद्धांतों के अनुसार, जाँच के संचालन की यह प्रक्रिया—जिसमें तिथि, समय और स्थान निर्धारण तथा आरोपों को सिद्ध करने के लिए संस्था द्वारा दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करना शामिल है—केवल मुख्य दंड वाले मामलों में लागू होती है; प्रत्येक दंड के मामले में नहीं। परन्तु 1975 के विनियमों के अंतर्गत यह प्रक्रिया समान रूप से लागू होती है, चाहे दंड की गंभीरता या श्रेणी कुछ भी हो।

20. हम यह मानते हैं कि श्री रवीन्द्र सिंह का यह प्रतिपादन कि 1975 के विनियमों के अंतर्गत आरोप अपने-आप सिद्ध होकर आते हैं, उस भिन्न और विशेष प्रक्रिया से प्रभावित है जो दूसरे कारण बताओ नोटिस के चरण पर प्रदान की गई है। उसी चरण में अभियुक्त कर्मचारी को यह सुविधा दी गई है कि वह अतिरिक्त साक्ष्य, जिसमें अपने बचाव में किसी साक्षी का परीक्षण भी शामिल है, प्रस्तुत कर सके। संभव है, इसी प्रक्रिया ने किसी हद तक श्री रवीन्द्र सिंह के प्रतिपादनों को इस रूप में प्रभावित किया हो, जैसा कि उन्होंने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। खेद है, हम इससे सहमत नहीं हो सकते।

21. इस तथ्य से अलग कि इस मामले में दिया गया दूसरा कारण बताओ नोटिस यह दर्शाता है कि उस समय तक उत्तरदाताओं के मन में कोई प्रमुख दण्ड देने का विचार था, यदि यह मान भी लिया जाए कि उनके मन में ऐसा नहीं था और वे वेतन-वृद्धि रोके जाने, या दक्षता-सीमा पर रोक जैसे दण्ड देने का विचार रखते थे, तब भी वे विभागीय जाँच की प्रक्रिया से विचलित नहीं हो सकते थे। विभागीय जाँच में, जाँच की तिथि निश्चित करने के बाद, अन्वेषण अधिकारी के लिए यह आवश्यक होता है कि वह प्रतिष्ठान को यह निर्देश दे कि वह

आरोपों के समर्थन में मौखिक एवं दस्तावेजी – दोनों प्रकार के – साक्ष्य प्रस्तुत करे। इसका कारण यह है कि उस समय तक 1975 के विनियमों में, दण्ड के प्रकार या प्रस्तावित दण्ड की श्रेणी के आधार पर प्रक्रिया में कोई भेद नहीं है। विनियम 68 अन्वेषण अधिकारी को अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत सुनवाई की एक तिथि नियत करने को कहता है, जिसमें मौखिक एवं दस्तावेजी – दोनों प्रकार के – साक्ष्य प्रस्तुत किए जाएंगे। ये 1975 के विनियमों में प्रयुक्त ठीक-ठीक शब्द हैं। इसके बाद यह शब्द आते हैं कि “उसे ऐसे साक्षियों का प्रतिपरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी, जिनका वह चाहे।” अब, प्रतिपरीक्षण तो उसी साक्षी का किया जाता है जिसे विपक्ष (अन्य पक्ष) द्वारा प्रस्तुत किया गया हो।

22. विनियम 68 के दूसरे अनुच्छेद का आशय, हमारी दृष्टि में, स्पष्ट है कि अभियुक्त कर्मचारी का स्पष्टीकरण प्राप्त करने के बाद, अन्वेषण अधिकारी द्वारा व्यक्तिगत सुनवाई के लिए जो तिथि नियत की जाती है, जहाँ दस्तावेजी तथा मौखिक-दोनों प्रकार के-साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने होते हैं, उसका अर्थ यह नहीं है, जैसा कि श्री रवीन्द्र सिंह प्रतिपादित करते हैं, कि आरोप अपने-आप सिद्ध होकर आते हैं और अभियुक्त कर्मचारी को उन्हें निरस्त करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने पड़ेंगे। 1975 के विनियमों के अध्याय X की अत्यंत उदार योजना को देखते हुए ऐसा आशय कभी भी विनियम 68 का उद्देश्य नहीं हो सकता, जहाँ कार्यवाही के प्रत्येक चरण पर अभियुक्त/आरोपपत्रित कर्मचारी को सामान्य से अधिक अवसर प्रदान किया गया है। स्थापित विधि-सिद्धांतों के अनुसार-जिन्हें विनियम 68 के दूसरे अनुच्छेद द्वारा अपवर्जित नहीं किया गया है-नियोजित तिथि पर व्यक्तिगत सुनवाई के समय, आरोपों के समर्थन में सुनवाई प्रतिष्ठान की ही होनी है तथा आरोप सिद्ध करने के लिए प्रथम दृष्टया मौखिक और दस्तावेजी-दोनों प्रकार के-साक्ष्य भी उन्हें ही प्रस्तुत करने होते हैं।

23. मौखिक साक्ष्य से तात्पर्य साक्षियों से है। साक्षी दस्तावेजों को प्रस्तुत करेंगे और सिद्ध करेंगे, उन दस्तावेजों में जीवन फूँकेंगे जो अन्यथा निष्प्राण कागज़ भर होते। वे अन्य तथ्यों का भी बयान देंगे, ताकि आरोप सिद्ध हो सकें। इन्हीं साक्षियों के संबंध में विनियम 68 के दूसरे अनुच्छेद के अंतर्गत अभियुक्त कर्मचारी को विशिष्ट रूप से प्रतिपरीक्षण का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 2 में अभियुक्त के लिए प्रयुक्त शब्द “उसे ऐसे साक्षियों का प्रतिपरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी, जिनका वह चाहे”, इन शब्दों के बाद यह वाक्य आता है-“उसे तब अपने बचाव में अपने साक्षी या दस्तावेज़ प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा।” उद्धृत अंतिम शब्द इस मुद्दे को निर्णायक रूप से स्पष्ट करते हैं कि विनियम 68 के अनुच्छेद 2 के आरंभिक भाग में, विभागीय जाँच को संचालित करने वाले हितकारी सिद्धांतों के अनुरूप, व्यक्तिगत सुनवाई की नियत तिथि पर पहले स्थापना के साक्ष्य सुने जाने का दायित्व उस पर ही डाला गया है, और उसके बाद ही अभियुक्त कर्मचारी को अपने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बुलाया जा सकता है।

24. जाँच प्रतिवेदन के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि अन्वेषण अधिकारी ने विनियम 68 द्वारा अनिवार्य की गई ऐसी कोई प्रक्रिया अपनाई ही नहीं। उन्होंने आरोपों के प्रावधानों को दर्ज किया, उसके बाद याचिकाकर्ता का बचाव लिखा, और अपने समक्ष रखे निष्प्राण कागज़ों को देखकर-निश्चय ही प्रतिष्ठान की ओर से किसी भी दस्तावेजी या मौखिक साक्ष्य के प्रस्तुत किए बिना-प्रत्येक आरोप पर अपनी निष्कर्षात्मक राय दर्ज कर दी। यह

निश्चित रूप से वह प्रक्रिया नहीं है, जिसका 1975 के विनियमों में प्रतिपादन किया गया है। यह वह प्रक्रिया भी नहीं है, जिसे विभागीय जाँच को संचालित करने वाले हितकारी सिद्धांत—जहाँ प्रमुख दण्ड भी लगाया जा सकता है—स्वीकार्य करते हैं। चूँकि 1975 के विनियमों में सभी प्रकार के दण्डों के लिए प्रक्रिया समान है, और दण्ड की श्रेणी में कोई भेद नहीं किया गया है, इसलिए प्रमुख दण्ड जाँचों के संदर्भ में विकसित सभी सिद्धांत, और भी अधिक बल के साथ, उत्तरदाताओं द्वारा संचालित वर्तमान कार्यवाही पर लागू होंगे।

25. यह विधि की स्थिति दृढ़तापूर्वक स्थापित है, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा, (2010) 2 एससीसी 772; रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एससीसी 570; उत्तरांचल राज्य बनाम खरक सिंह, (2008) 8 एससीसी 236 में प्रतिपादित किया है; तथा इस न्यायालय के खण्डपीठ के निर्णयों—उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशोरी लाल, 2018 (9) एडीजे 397 (DB) (एलबी); श्रीमती करुणा जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018 (9) एडीजे 107 (डीबी) (एलबी); तथा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आदित्य प्रसाद श्रीवास्तव, 2017 (2) एडीजे 554 (डीबी) (एलबी)—में भी यही सिद्धांत दृढ़ किया गया है।

26. इस संबंध में विधि की जो स्थिति समय की कसौटी पर खरी उतरी है, उसे हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सत्येन्द्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 3325 में अनुमोदित किया गया है, जहाँ यह प्रतिपादित किया गया है:

12. राज्य के विद्वान अधिवक्ता इस तथ्य पर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों के साथ सहमत थे कि विभागीय जाँच की कार्यवाही के दौरान किसी भी प्रकार के साक्ष्य—अर्थात् एक भी साक्षी—की जाँच नहीं की गई। जाँच प्रतिवेदन का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह प्रत्यक्ष है कि कथित अनियमित लेन-देन से सम्बन्धित जिन दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है, जिनके आधार पर जाँच प्रारम्भ हुई, उनके अतिरिक्त जाँच अधिकारी ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए एक भी साक्षी का कथन नहीं दर्ज किया।

13. इस न्यायालय ने अनेक वादों में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि यदि किसी विभागीय कार्यवाही में प्रमुख दण्ड दिए जाने का प्रस्ताव हो, तो साक्ष्य का अभिलेखन अनिवार्य है। इस संदर्भ में रूप सिंह नेगी बनाम पंजाब नेशनल बैंक, (2009) 2 एस.सी.सी. 570 तथा निर्मला जे. झाला बनाम गुजरात राज्य, (2013) 4 एस.सी.सी. 301 का उल्लेख योग्य है।”

27. इस वाद में एक अन्य पक्ष भी है, जो आरोपपत्र को आंशिक रूप से दोषपूर्ण बना देता है। विनियमन 68 की अपेक्षा है कि आरोपपत्र में प्रत्येक आरोप का आधार तथा उस आरोप के समर्थन में प्रस्तावित साक्ष्य का विवरण पृथक-पृथक रूप से दिया जाए। यहाँ, जहाँ तक साक्ष्य का प्रश्न है, केवल दिनांक 01.09.2020 को उप गन्ना आयुक्त, सहारनपुर द्वारा की गयी प्राथमिक जाँच प्रतिवेदन की प्रति को दर्शाया गया है। यह प्रतिवेदन आरोपों का आधार तो हो सकता है, किन्तु आरोपों को सिद्ध करने का साक्ष्य नहीं हो सकता। साक्ष्य वे दस्तावेज होंगे, जिनसे आरोप सिद्ध हों, तथा वे साक्षी, जो उन दस्तावेजों और उन तथ्यों को सिद्ध करें, जो दस्तावेजों

में पहले से उल्लिखित नहीं हैं और आरोपों से सम्बद्ध हैं। एक प्राथमिक जाँच प्रतिवेदन न तो प्रलेख साक्ष्य है और न ही मौखिक साक्ष्य। यह केवल आरोप का आधार हो सकता है। विनियमन 68 (विनियमावली, 1975) का प्रथम उपखण्ड यह अनिवार्य करता है कि प्रत्येक आरोप का आधार तथा आरोप के समर्थन में विचारार्थ प्रस्तावित साक्ष्य का विवरण, प्रत्येक आरोप के संदर्भ में विस्तृत रूप से आरोपपत्र के साथ दिया जाए। वर्तमान आरोपपत्र, जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, किसी भी प्रकार के साक्ष्य का विवरण सम्मिलित नहीं करता, जिसके आधार पर आरोपों को सिद्ध किया जाना प्रस्तावित है। उसका उल्लेख तक नहीं है, विवरण की बात तो दूर रही। इस प्रकार दिनांक 28.12.2020 का आरोपपत्र इस सीमा तक विनियमावली, 1975 के विनियमन 68 के प्रथम उपखण्ड के अनुरूप नहीं है और त्रुटिपूर्ण है।”

28. परिणामस्वरूप, यह वाद **सफल** होता है और **स्वीकार** किया जाता है। गन्ना आयुक्त एवं अध्यक्ष, राज्य गन्ना सेवायें प्राधिकरण, उ.प्र., लखनऊ द्वारा दिनांक 11.03.2022 का पारित आदेश तथा आयुक्त, गन्ना एवं चीनी, उ.प्र., लखनऊ द्वारा दिनांक 24.09.2024 का अपीलीय आदेश, दोनों, **रद्द** किये जाते हैं। प्रतिवादीगण, यदि वे ऐसा करना चाहें, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध नये सिरे से कार्यवाही प्रारम्भ कर सकते हैं। यदि वे ऐसा करना चुनते हैं, तो उन्हें विनियमावली, 1975 के विनियमन 68 के अनुरूप नवीन आरोपपत्र तैयार करना आवश्यक होगा, जिसमें प्रत्येक आरोप के सम्बन्ध में उन साक्ष्यों का विवरण दिया जाए, जिनके आधार पर आरोप को सिद्ध किया जाना प्रस्तावित है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 28.12.2020 का आरोपपत्र यथावत् बना रहेगा। यदि प्रतिवादीगण याचिकाकर्ता के विरुद्ध नयी कार्यवाही आगे बढ़ाते हैं, तो विभागीय जाँचों के संचालन के लिए इस निर्णय में प्रदत्त मार्गदर्शन को ध्यान में रखते हुए जाँच सम्पन्न की जाएगी। आगे यह भी निर्देशित किया जाता है कि यदि वास्तव में संशोधित आरोपपत्र के आधार पर नयी कार्यवाही की जाती है, तो याचिकाकर्ता पर पूर्व में आरोपित दण्ड से अधिक कठोर दण्ड नहीं लगाया जाएगा। यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता के विरुद्ध नयी कार्यवाही की जाती है, तो तत्काल आदेशों के अधोमुख होने के आधार पर याचिकाकर्ता किसी प्रकार के मौद्रिक लाभ का अधिकारी नहीं होगा; ऐसे लाभ इस बात पर निर्भर करेंगे कि नयी जाँच कार्यवाही में क्या परिणाम निकलता है। यदि कोई कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की जाती, तो प्रतिवादीगण याचिकाकर्ता को उसके वेतन-भत्तों का वह अंतर भुगतान करने के लिए बाध्य होंगे, जो उसे प्राप्त हुआ और जो दण्ड निरस्त होने के पश्चात् देय होता।

29. व्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

30. यह आदेश गन्ना आयुक्त एवं अध्यक्ष, राज्य गन्ना सेवायें प्राधिकरण, उ.प्र., लखनऊ तथा आयुक्त, गन्ना एवं चीनी, उ.प्र., लखनऊ को रजिस्ट्रार (कम्प्लायंस) द्वारा प्रेषित किया जाए।

(2025) 6 ILRA 157

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

रिट - ए संख्या 35844 वर्ष 2019

सम्बद्ध

रिट - ए संख्या 589 वर्ष 2020

आनंद सिंह असवाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ व अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: शलभ सिंह, गौरव कौशिक, नवनीत अवस्थी

प्रतिवादी के अधिवक्ता: ए.एस.जी, डॉ. वी.के. सिंह, संजीव कुमार श्रीवास्तव, शैलेश कुमार

क. सेवा विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 14 - नैसर्गिक न्याय का सिद्धांत - नियुक्ति - 'प्रोड्यूसर' का पद - नियुक्ति का वापस लिया जाना - आक्षेपित आदेश में कोई कारण नहीं बताया गया - प्रभाव- अधिनिर्णय: यह माना गया कि जिस रीति से नियुक्ति के प्रस्ताव को वापस लेने का आक्षेपित आदेश जारी किया गया है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है; क्योंकि यह एक स्थापित कानून है कि कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नैसर्गिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है, जो शक्तियों के मनमाने प्रयोग के खिलाफ एक अंकुश के रूप में कार्य करता है और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। विपक्षी पक्षकारों ने मनमाने ढंग से और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए कार्य किया। (पैरा 36)

ख. सेवा विधि - नियुक्ति - चयन समिति के गठन में अनियमितता - प्रभाव - न्यायसंगत प्रत्याशा का सिद्धांत - प्रयोज्यता - याचिकाकर्ताओं का चयन किया गया और उन्हें नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया - समिति के गठन में अधिकारियों की गलती के कारण याचिकाकर्ताओं को किस हद तक नुकसान पहुँचाया जा सकता है - 'फूड कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया' के मामले पर भरोसा किया गया - अभिनिर्धारित : यद्यपि इन परिस्थितियों में याचिकाकर्ताओं के पास नियुक्ति का कोई पूर्ण अधिकार नहीं है, लेकिन उनकी प्रत्याशा को मनमाने ढंग से या

निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांतों का पालन किए बिना विफल नहीं किया जा सकता है। (पैरा 39 और 40)

ग. सेवा विधि - वचन विबंध का सिद्धांत - प्रयोज्यता - याचिकाकर्ता, सद्भावनापूर्ण तरीके से कार्य करते हुए, चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुए और चयन में सफल भी हुए - प्रभाव - अभिनिर्धारित : जहाँ कोई भी पक्ष ऐसा वादा करता है जिस पर दूसरा पक्ष अपने नुकसान की संभावना के बावजूद कार्य करता है, वहाँ वादा करने वाला अपने वादे से पीछे हटने से विबंधित हो जाता है - 'मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड' के मामले पर भरोसा किया गया। (पैरा 39 और 40)

रिट याचिका स्वीकार की गई। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य व अन्य; (1974) 4 एससीसी 3
2. रमणा दयाराम शेटी बनाम इंटरनेशनल एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया व अन्य; (1979) 3 एससीसी 489
3. ए.बी.एल. इंटरनेशनल लिमिटेड व अन्य बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्प. ऑफ इंडिया लिमिटेड व अन्य; (2004) 3 एससीसी 553
4. उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. (सुश्री) बीणापाणि देई व अन्य; एआईआर 1967 एससी1269
5. ए.के. क्रैपक व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य; (1969) 2 एससीसी 262
6. एफ.सी.आई. बनाम मेसर्स कामधेनु कैटल फीड इंडस्ट्रीज; (1993) 1 एससीसी 71
7. मेसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (1979) 2 एससीसी 409
8. लक्ष्मी रतन कॉटन मिल्स कंपनी लिमिटेड, कानपुर बनाम जे.के. जूट मिल्स कंपनी लिमिटेड, कानपुर; एआईआर 1957 इला. 311
9. चेयरमैन एवं एम.डी., बी.पी.एल. लिमिटेड बनाम एस.पी. गुरुराजा व अन्य; (2003) 8 एससी 567
10. एम.आर.एफ. लिमिटेड बनाम मनोहर पर्रिकर व अन्य; (2010) 11 एससीसी 374
11. तेज प्रकाश पाठक व अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय व अन्य; (2025) 2 एससीसी 1
12. शंकरसन दश बनाम भारत संघ; (1991) 3 एससीसी 47

(माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान द्वारा निर्णय प्रदत्त)

1. उपर्युक्त दोनों रिट याचिकाओं में चूंकि तथ्य और कानूनी दलीलें समान हैं, इसलिए पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की सहमति से दोनों रिट याचिकाओं को एक साथ संबद्ध कर दिया गया है और एक साझा निर्णय एवं आदेश द्वारा इनका निस्तारण किया जा रहा है।

2. प्रथम रिट याचिका में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शलभ सिंह, विश्वविद्यालय/विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता डॉ. वी.के. सिंह और यू.जी.सी./विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव कुमार श्रीवास्तव को सुना गया; तथा द्वितीय रिट याचिका में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विमल कुमार के होल्डिंग ब्रीफ अधिवक्ता श्री राजेश कुमार एवं विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. सिंह रोयेकवार को सुना गया।

3. प्रथम रिट याचिका (रिट ए संख्या 35844 वर्ष 2019) में याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित प्रार्थना की है:—

“(I) उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.11.2019 को रद्द किया जा सके, जिसके माध्यम से विपक्षी संख्या 2, 3, 4 और 5 के प्रबंधन बोर्ड की बैठक के क्रम में, याचिकाकर्ता को इलेक्ट्रॉनिक मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ में 'प्रोड्यूसर' के पद पर दिए गए नियुक्ति प्रस्ताव को वापस ले लिया गया है, जो इस रिट याचिका के साथ संलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।”

(I-ए) उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 5 द्वारा पारित 31.10.2018 के उस आदेश को रद्द किया जा सके, जो प्रबंधन बोर्ड की एक 'बंद कमरे' की बैठक में लिया गया था और अन्य विपक्षीगण को सूचित किया गया था; जहाँ नियुक्ति पत्र की सभी शर्तों को स्वीकार करने के बावजूद याचिकाकर्ता को कार्यभार ग्रहण करने से वंचित करने और ई.एम.एम.आर.सी के 'प्रोड्यूसर' के पद को रद्द/वापस लेने का यह मनमाना निर्णय, प्रशासनिक हठधर्मिता और पूर्णतः मनमर्जी का प्रदर्शन है।

(I-बी) उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा दिनांक 20.08.2019 के आदेश को रद्द किया जा सके, जिसके माध्यम से उपरोक्त 31.10.2018 के प्रस्ताव की पुष्टि की गई थी।

(I-सी) उत्प्रेषण-युक्त परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 5 की दिनांक 31.10.2018 की कथित बोर्ड बैठक के सभी अभिलेखों को मंगाया जा सके और उसे तत्काल रद्द किया जा सके; क्योंकि यह विवेकाधिकार का घोर मनमाना प्रयोग और शक्तियों का उद्दंड दुरुपयोग है, जहाँ विधिवत स्वीकार की गई और अंतिम रूप दी गई नियुक्ति को बिना किसी संवेदनशीलता के और लापरवाह तरीके से वापस ले लिया गया, तथा पीड़ित पक्ष (याचिकाकर्ता) को सुनवाई का अवसर तक नहीं दिया गया।

II. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षीगण को निर्देशित किया जा सके कि वे याचिकाकर्ता को दिनांक 08.06.2018 को दिए गए नियुक्ति प्रस्ताव के अनुपालन में, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के इलेक्ट्रॉनिक मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर में 'प्रोड्यूसर' के पद पर नियुक्ति और कार्यभार ग्रहण प्रदान करें।

(III) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.11.2019 के संचालन और कार्यान्वयन पर रोक लगाई जा सके।

4. दूसरी रिट याचिका (रिट-ए संख्या 589 वर्ष 2020) में याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित प्रार्थना की है:-

“(क) उत्प्रेषण की रिट या उसी प्रकृति का कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 2 द्वारा जारी आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 को रद्द किया जा सके, साथ ही प्रबंधन बोर्ड के प्रस्ताव दिनांक 31.10.2018 और बोर्ड के पुष्टि आदेश दिनांक 20.08.2019 को भी रद्द किया जाए, जिनका उल्लेख दिनांक 27.11.2019 के आक्षेपित आदेश में किया गया है और जो संलग्नक संख्या 10 और 11 में निहित हैं।

(ख) परमादेश की रिट या कोई अन्य उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके द्वारा विपक्षी संख्या 1 और 2 को निर्देशित किया जा सके कि वे दिनांक 08.06.2018 के अपने जापन/नियुक्ति प्रस्ताव का पालन करें और याचिकाकर्ता को विपक्षी विश्वविद्यालय के मीडिया सेंटर में 'प्रोड्यूसर' के पद पर तत्काल नियुक्ति प्रदान करें और याचिकाकर्ता को कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से तुरंत अवगत कराएं।”

5. दोनों रिट याचिकाओं के तथ्य और परिस्थितियाँ कमोबेश समान हैं, इसलिए इस आदेश में दोनों रिट याचिकाओं की प्रासंगिक दलीलों पर विचार किया जा रहा है।

6. याचिकाकर्तागण उपरोक्त रिट याचिकाओं के माध्यम से विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.11.2019 (संलग्नक संख्या 1) को चुनौती देना चाहते हैं, जिसके द्वारा इलेक्ट्रॉनिक मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर (इसके बाद "ईएमएमआरसी" के रूप में संदर्भित) में 'प्रोड्यूसर' के पद पर याचिकाकर्तागण की नियुक्ति को वापस ले लिया गया था।

7. ई.एम.एम.आर.सी के प्रबंधन बोर्ड (इसके बाद "विपक्षी संख्या 5" के रूप में संदर्भित) ने दिनांक 31.10.2018 को एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें कहा गया कि 'प्रोड्यूसर' और 'इंजीनियर ग्रेड-1' के पदों पर नियुक्तियां रद्द की जाती हैं (संलग्नक 1-ए)। ई.एम.एम.आर.सी के प्रबंधन बोर्ड द्वारा दिनांक 20.08.2019 को इसकी पुष्टि की गई थी।

8. बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, (इसके बाद "विश्वविद्यालय" के रूप में संदर्भित) विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ, एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है जो स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्रियों के पाठ्यक्रम संचालित करता है। कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन (इसके बाद "सी.ई.सी" के रूप में संदर्भित) की स्थापना यू.जी.सी द्वारा टेलीविजन और उभरती प्रौद्योगिकियों के माध्यम से उच्च शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से की गई थी। यह सीधे यू.जी.सी के अधीन कार्य करने वाला एक नोडल निकाय है। अन्य विश्वविद्यालयों की तरह, इस विश्वविद्यालय में भी एक ई.एम.एम.आर.सी है जो यू.जी.सी के दिशा-निर्देशों के अनुरूप वीडियो और मल्टीमीडिया-आधारित कार्यक्रमों के निर्माण में संलग्न है। इसके अलावा, यह उन छात्रों के लिए दृश्य-श्रव्य अध्ययन सामग्री भी तैयार करता है जो सूचना संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं।

9. विश्वविद्यालय ने दिनांक 02.02.2015 को यू.जी.सी और सी.ई.सी के साथ एक समझौता ज्ञापन (एम.ओ.यू) किया था। यह समझौता ज्ञापन (एम.ओ.यू) इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और आई.सी.टी के उपयोग के माध्यम से शैक्षिक संचार के सहयोग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी), कंसोर्टियम (सी.ई.सी), विश्वविद्यालयों/संस्थानों और मीडिया केंद्रों की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को रेखांकित करता है। इसमें मीडिया उपयोग को संरचित करने और बनाए रखने के लिए संयुक्त जिम्मेदारी, संस्थानों और मीडिया केंद्रों के बीच शैक्षणिक जुड़ाव, आयोग (यू.जी.सी) द्वारा धन का प्रावधान, परिभाषित कार्य और जिम्मेदारियां, तथा प्रबंधन और समन्वय के लिए प्रबंधन बोर्ड एवं क्षेत्रीय परिषद की स्थापना शामिल है। इस एम.ओ.यू का उद्देश्य प्रौद्योगिकी-सक्षम शिक्षा और संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा देना है।

10. विश्वविद्यालय ने ई.एम.एम.आर.सी में विभिन्न पदों पर भर्ती के लिए दिनांक 13.01.2017 को एक विज्ञापन (संलग्नक संख्या 2) जारी किया, जिसमें 'प्रोड्यूसर' का पद भी शामिल था। विज्ञापन में विभिन्न पदों के लिए आवश्यक योग्यताएं दी गई थीं और याचिकाकर्तागण ने, उन योग्यताओं को पूरा करते हुए, 'प्रोड्यूसर' के पद के लिए आवेदन किया (संलग्नक संख्या 3)। प्रारंभिक चरण को पार करने के बाद, याचिकाकर्तागण को साक्षात्कार (इंटरव्यू) के लिए नई दिल्ली बुलाया गया, जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कर लिया। इसके परिणामस्वरूप, 30.01.2018 को ई.एम.एम.आर.सी के प्रबंधन बोर्ड द्वारा एक बैठक बुलाई गई जहाँ याचिकाकर्तागण की स्वीकार्यता पर विचार किया गया। 08.06.2018 को याचिकाकर्तागण को एक ज्ञापन भेजा गया जिसमें नियुक्ति का प्रस्ताव शामिल था (संलग्नक संख्या 6)। याचिकाकर्तागण ने उस ज्ञापन को स्वीकार कर लिया और इसकी सूचना ई.एम.एम.आर.सी को दे दी गई (संलग्नक संख्या 7)। इस स्तर पर, याचिकाकर्तागण की ओर से नियुक्ति संबंधी सभी औपचारिकताएं पूरी हो चुकी थीं और अब केवल विश्वविद्यालय के कुलसचिव (रजिस्ट्रार) (इसके बाद "विपक्षी संख्या 4" के रूप में संदर्भित) द्वारा नियुक्ति का अंतिम पत्र जारी किया जाना शेष था। याचिकाकर्तागण ने अपनी नियुक्ति की स्थिति के संबंध में विपक्षी संख्या 3 और 4 को कई प्रत्यावेदन दिए (संलग्नक संख्या 8 से 11), लेकिन उनका कोई लाभ नहीं हुआ।

11. विश्वविद्यालय द्वारा संबंधित पद के लिए जारी दिनांक 13.01.2017 के विज्ञापन में विशिष्ट खंड शामिल थे, जिसके तहत विश्वविद्यालय ने किसी भी समय विज्ञापित पदों को वापस लेने या उन्हें न भरने का अपना अधिकार सुरक्षित रखा था (संलग्नक संख्या सी.ए-4)। इस माननीय उच्च न्यायालय की सुविधा के लिए, विज्ञापन के खंड 1 और 16 को यहाँ पुनरुद्धृत किया गया है।

"खंड 1- विश्वविद्यालय के पास निम्नलिखित अधिकार सुरक्षित हैं:

क. किसी भी श्रेणी के तहत विज्ञापित किसी भी पद को किसी भी समय बिना कोई कारण बताए वापस लेना। साक्षात्कार के समय उत्पन्न होने वाली किसी भी परिणामी रिक्ति को भी उपलब्ध उम्मीदवारों में से भरा जा सकता है। इस प्रकार पदों की संख्या में परिवर्तन किया जा सकता है।

ख. उम्मीदवारों की योग्यता, अनुभव और प्रदर्शन के आधार पर, विज्ञापित स्तर से निचले स्तर के पद का प्रस्ताव देना।

ग. भविष्य में होने वाली संभावित रिक्तियों के लिए आरक्षित पैनल तैयार करना।

घ. किसी भी श्रेणी के तहत पदों की संख्या को बढ़ाना या घटाना, अथवा किसी भी पद को न भरना।"

"खंड 16- चयन की प्रक्रिया में किसी भी अनजाने में हुई गलती के मामले में, जिसका पता नियुक्ति पत्र जारी होने के बाद भी किसी भी स्तर पर चलता है, तो विश्वविद्यालय के पास उम्मीदवारों को भेजे गए किसी भी संचार को संशोधित करने/वापस लेने/रद्द करने का अधिकार सुरक्षित है।"

12. प्रथम रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने एक सूचना का अधिकार आवेदन भी दाखिल किया था, जिसमें उन्होंने अपनी नियुक्ति की स्थिति से संबंधित 6 प्रश्न पूछे थे। 4 प्रश्नों के उत्तर देने के बावजूद, विभाग प्रश्न संख्या 5 और 6 का उत्तर देने में विफल रहा, जो याचिकाकर्ताओं के मामले के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रश्न संख्या 5 कैमरामैन, उत्पादन सहायक और आलेख कलाकार के पदों पर अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए अपनाई गई पद्धति और चयन प्रक्रिया से संबंधित था। प्रश्न संख्या 6 नियुक्ति प्रस्ताव जारी होने के बाद नियुक्ति पत्र जारी करने में 15 महीने से अधिक के विलंब के कारण से संबंधित था।

13. इसके अतिरिक्त, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी दिनांक 23.09.2019 को विपक्षी संख्या 3 को एक ई-मेल भेजकर जल्द से जल्द आवश्यक कार्रवाई करने को कहा था। इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने विपक्षी संख्या 1 और 2 के समक्ष अपना पक्ष रखा, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। याचिकाकर्ताओं ने पुनः विपक्षी संख्या 4 और 6 के समक्ष क्रमशः दिनांक 22.10.2019 और 09.11.2019 को अपना पक्ष प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति वापस लेने का आक्षेपित आदेश 27.11.2019 को पारित किया गया।

14. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि विपक्षी संख्या 4 द्वारा जारी आदेश दिनांक 27.11.2019, जो विपक्षी संख्या 2, 3, 4 और 5 के प्रबंधन बोर्ड की बैठक के बाद आया था और जिसके माध्यम से बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ के इलेक्ट्रॉनिक मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर में प्रोड्यूसर के पद पर याचिकाकर्तागण को दिए गए नियुक्ति प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया था, वह अवैध, मनमाना और पूर्णतः क्षेत्राधिकार से बाहर है।

15. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि याचिकाकर्तागण और अन्य की प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्ति के लिए चयन समिति का गठन विपक्षी संख्या 1 और कंसोर्टियम फॉर एजुकेशनल कम्युनिकेशन (सीईसी) के बीच हुए समझौता ज्ञापन के अनुसार किया गया था। इसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि ऐसी नियुक्तियों के लिए गणपूर्ति (कोरम) अध्यक्ष/सह-अध्यक्ष और कम से कम दो बाहरी विशेषज्ञों तक सीमित थी। याचिकाकर्तागण के साक्षात्कार के दौरान इस गणपूर्ति की शर्त को पूरा किया गया था, इसलिए उक्त पद पर उनकी नियुक्ति उचित और तर्कसंगत थी और विपक्षी संख्या 1 के पास नियुक्ति वापस लेने का कोई ठोस आधार नहीं था। यहाँ यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि 'प्रबंधन बोर्ड के कार्यों और शक्तियों' के शीर्षक के तहत खंड 2.3 को पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि प्रबंधन बोर्ड 15600-39100 + ग्रेड पे 5400/- (समूह 'क') और उससे ऊपर के पदों पर नियुक्तियाँ कर सकता है। ऐसे मामलों में चयन समिति में मेजबान विश्वविद्यालय के कुलपति शामिल होंगे, जो चयन समिति के अध्यक्ष होंगे; सह-अध्यक्ष के रूप में निदेशक

सीईसी; और तीन बाहरी विशेषज्ञ होंगे, जिनमें से एक-एक का नामांकन अध्यक्ष, बी.जी. सी.ई.सी, मेजबान विश्वविद्यालय के कुलपति और निदेशक सी.ई.सी द्वारा किया जाएगा। अध्यक्ष/सह-अध्यक्ष और कम से कम दो बाहरी विशेषज्ञों की उपस्थिति चयन समिति की गणपूर्ति की आवश्यकता को पूरा करेगी। मीडिया केंद्र के निदेशक के चयन के मामले को छोड़कर, अन्य सभी मामलों में मीडिया केंद्र के निदेशक चयन समिति के सदस्य सचिव के रूप में कार्य करेंगे।

16. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि विपक्षियों ने याचिकाकर्तागण को उनके कानूनी अधिकारों से वंचित करने के लिए झूठा और मनगढ़ंत आधार लिया है। इसके अलावा, विपक्षी ने अपनी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि केवल तब कार्रवाई की जब दूसरी रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने पहले एक रिट याचिका (सर्विस सिंगल संख्या 23834 वर्ष 2019) के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जिसमें दिनांक 03.09.2019 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता को अपनी शिकायत के साथ एक नया प्रत्यावेदन देने का निर्देश दिया था और प्रतिवादी-विश्वविद्यालय को एक विस्तृत और सकारण आदेश पारित करके उसका निस्तारण करने का निर्देश दिया था। जैसा कि प्रतिवादी द्वारा अपने उत्तर में दावा किया जा रहा है, यदि संबंधित पद को वापस लेने का निर्णय 31.10.2018 को विश्वविद्यालय के ई.एम.एम.आर.सी के प्रबंधन बोर्ड की बैठक में ही ले लिया गया था और 20.08.2019 को हुई बैठक में इसकी पुष्टि कर दी गई थी, तो विपक्षी ने इसका कोई औचित्य नहीं दिया है कि इसकी सूचना याचिकाकर्तागण को तब क्यों नहीं दी गई जब वे अपने पद पर कार्यभार ग्रहण करने के लिए बार-बार विश्वविद्यालय से संपर्क कर रहे थे। प्रथम रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने भी प्रतिवादियों को दिनांक 29.06.2018, 27.08.2018, 27.09.2018, 27.02.2019 और 21.08.2019 को कई पत्र लिखे थे, लेकिन प्रतिवादी द्वारा न तो उनका उत्तर दिया गया और न ही दिनांक 03.09.2019 की सुनवाई के दौरान माननीय न्यायालय को इस बारे में सूचित किया गया, जबकि उस समय प्रतिवादी-विश्वविद्यालय के अधिवक्ता उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त, प्रोड्यूसर के पद के लिए चयन के संदर्भ में, चयन समिति द्वारा सिफारिश किए जाने, नियुक्ति का निमंत्रण जारी होने और याचिकाकर्ता द्वारा उसे स्वीकार किए जाने के बावजूद, विपक्षी पक्षों ने पद वापसी के प्रस्ताव का हवाला देते हुए किसी भी अभ्यर्थी को कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी। 30.01.2018 को सर्वोच्च कार्यकारी निकाय (प्रबंधन बोर्ड) द्वारा स्पष्ट अनुमोदन के बावजूद, विपक्षी पक्षों ने बाद में दूसरी रिट याचिका के अपने जवाबी हलफनामे में दावा किया कि चयन समिति के गठन के संबंध में 31.10.2018 के समझौता ज्ञापन और 20.08.2019 के अंतिम समझौता ज्ञापन के अनुपालन न होने के कारण प्रोड्यूसर पद की चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण थी, जिससे याचिकाकर्ता को दिए गए प्रस्ताव को वापस लेना आवश्यक हो गया। यह कार्रवाई मनमानी है और विवेक का शून्य प्रयोग दर्शाती है क्योंकि यदि प्रोड्यूसर पद के लिए चयन समिति की प्रक्रिया मौलिक रूप से दोषपूर्ण थी जैसा कि आरोप लगाया गया है, तो प्रश्न यह उठता है कि प्रबंधन बोर्ड ने 30.01.2018 को चयन की सिफारिश को मंजूरी क्यों दी थी। तर्कसंगत रूप से, यदि दोष वास्तविक था और प्रस्ताव वापस लेने के लिए पर्याप्त महत्वपूर्ण था, तो उसकी पहचान अनुमोदन के चरण से पहले या उसके दौरान की जानी चाहिए थी, न कि कई महीनों बाद। किसी मौलिक दोष के बावजूद चयन को मंजूरी देना और बाद में उसी दोष के आधार पर उसे वापस लेना विरोधाभासी और अतर्कसंगत है। आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 (संलग्नक संख्या 1) के माध्यम से

नियुक्ति के प्रस्ताव को वापस लेने की विपक्षी पक्षों की कार्रवाई मनमानी और अवैध है। आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 बिना कोई कारण बताए पारित किया गया था, जो इस न्यायालय के दिनांक 03.09.2019 के आदेश (संलग्नक संख्या 8) के विशिष्ट निर्देश का सीधा उल्लंघन है, जिसमें एक विस्तृत और सकारण आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने कई मामलों में यह माना और इस पर जोर दिया है कि कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता नैसर्गिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है, जो शक्ति के मनमाने प्रयोग के विरुद्ध अंकुश के रूप में कार्य करता है और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। आक्षेपित आदेश में कारण बताने में विफल रहकर, विपक्षी पक्षकारों ने मनमाने ढंग से कार्य किया, जिससे याचिकाकर्ता को जवाबी हलफनामे के चरण तक प्रस्ताव वापस लेने के आधारों के बारे में कोई जानकारी नहीं मिली, जिससे पारदर्शिता और निष्पक्षता प्रभावित हुई है।

17. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि अनुच्छेद 14 यह मांग करता है कि राज्य तर्क और कानून के अनुसार, निष्पक्ष और गैर-मनमाने ढंग से कार्य करे। इसलिए, जब विश्वविद्यालय नियुक्ति वापस लेने के संबंध में एक अतार्किक और असंगत निर्णय लेकर मनमाने ढंग से कार्य करता है, तो यह मौलिक गारंटी का उल्लंघन करता है। जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ई.पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य व अन्य, (1974) 4 एससीसी 3** के पैरा-85 में यह माना है कि समानता कई पहलुओं और आयामों वाली एक गतिशील अवधारणा है और इसे पारंपरिक और सैद्धांतिक सीमाओं के भीतर संकुचित या सीमित नहीं किया जा सकता है। सकारात्मक दृष्टिकोण से, समानता मनमानेपन की विरोधी है। वास्तव में, समानता और मनमानापन कट्टर शत्रु हैं। इसके अलावा, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **रमणा दयाराम शेट्टी बनाम इंटरनेशनल एयरपोर्ट अथॉरिटी ऑफ इंडिया व अन्य, (1979) 3 एससीसी 489** के पैरा 10, 11, 12 और 21 में स्थापित किया गया है कि विपक्षी पक्षों जैसी सरकारी संस्थाओं को प्रशासनिक या संविदात्मक मामलों में भी निष्पक्ष और तर्कसंगत रूप से कार्य करना चाहिए, और उनके कार्य मनमाने या अप्रासंगिक विचारों पर आधारित नहीं होने चाहिए। वर्तमान मामले में, प्रबंधन बोर्ड की विरोधाभासी कार्रवाई से मनमानापन स्पष्ट है, जिसने पहले 30.01.2018 को याचिकाकर्तागण के चयन को मंजूरी दी और बाद में एक कथित दोष के आधार पर प्रस्ताव वापस ले लिया, जो संभवतः अनुमोदन के समय भी मौजूद था। यदि समिति शुरुआत से ही गलत तरीके से गठित थी, तो प्रश्न यह उठता है कि प्रबंधन बोर्ड ने सबसे पहले इन चयनों को मंजूरी ही क्यों दी? यह एक स्पष्ट विरोधाभास स्थापित करता है। किसी भी सरकारी निकाय को एक दिन किसी चीज़ को मंजूरी नहीं देनी चाहिए और अगले दिन उसे उसी कारण के आधार पर रद्द नहीं करना चाहिए जो शुरू से मौजूद था, जब तक कि कुछ नया और महत्वपूर्ण सामने न आया हो। इस तरह की अतार्किक और आत्म-विरोधाभासी कार्रवाई को मनमाना माना जाता है।

18. विपक्षी पक्षकारों के कार्य याचिकाकर्तागण के साथ किए गए एक पूर्ण अनुबंध का स्पष्ट उल्लंघन हैं। विपक्षी पक्षकारों द्वारा दिनांक 08.06.2018 के ज्ञापन/प्रस्ताव पत्र के माध्यम से एक वैध प्रस्ताव दिया गया था। याचिकाकर्तागण ने दिनांक 19.06.2018 और 13.06.2018 के संचार के माध्यम से उस प्रस्ताव को विधिवत प्राप्त किया और स्पष्ट रूप से स्वीकार किया। भारतीय अनुबंध अधिनियम, 1872 की धारा 2 (ख), 4 और 7

के तहत, स्वीकृति पत्र के माध्यम से बिना शर्त स्वीकृति की सूचना दिए जाने पर, वह प्रस्ताव एक वचन बन गया, जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्तागण और विपक्षी पक्षकारों के बीच एक बाध्यकारी अनुबंध हुआ। विपक्षी पक्षकारों द्वारा कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति देने से इनकार करना और उसके बाद का वापसी आदेश दिनांक 31.10.2018, याचिकाकर्तागण को नियुक्त करने के अपने संविदात्मक दायित्व का परित्याग और उल्लंघन है।

19. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विपक्षी पक्षकारों द्वारा विज्ञापन के खंड 16 पर भरोसे को औचित्य के रूप में प्रस्तुत करना कानून की दृष्टि में गलत है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने रमणा दयाराम शेटी (उपरोक्त) और उसके बाद के मामलों जैसे *ए.बी.एल. इंटरनेशनल लिमिटेड व अन्य बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्प. ऑफ इंडिया लिमिटेड व अन्य, (2004) 3 एससीसी 553* के पैरा 10, 19, 22, 27 और 28 में यह माना है कि राज्य की कार्यवाइयाँ, संविदात्मक क्षेत्र के भीतर भी, अनुच्छेद 14 की कठोरताओं के अधीन हैं और वे मनमानी या अतर्कसंगत नहीं हो सकतीं। इसलिए, भले ही खंड 16 संविदात्मक रूप से किसी "गलती" के लिए वापसी की अनुमति देता हो, ऐसी शक्ति का प्रयोग तर्कसंगत, निष्पक्ष और गैर-मनमाने ढंग से किया जाना चाहिए। जैसा कि यहाँ किया गया है, इस खंड का चुनिंदा रूप से, विलंब से और प्रबंधन बोर्ड के विरोधाभासी कार्यों के आधार पर सहारा लेना, शक्ति का मनमाना प्रयोग है और यह याचिकाकर्तागण के साथ हुए पूर्ण अनुबंध के उल्लंघन को कानूनी रूप से उचित नहीं ठहरा सकता।

20. नियुक्ति प्रस्ताव को वापस लेने के निर्णय के याचिकाकर्तागण के लिए गंभीर दीवानी परिणाम होते हैं, जो उनकी आजीविका को प्रभावित करते हैं। यह एक स्थापित सिद्धांत है, जिस पर *उड़ीसा राज्य बनाम डॉ. (सुश्री) बीणापाणि देई व अन्य, एआईआर 1967 एससी1269* के पैरा 12 और *ए.के. क्रैपक व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य (1969) 2 एससीसी 262* के पैरा 20 में जोर दिया गया है कि दीवानी परिणामों वाले प्रशासनिक आदेश भी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप पारित किए जाने चाहिए। "ऑडी अल्टरम पार्टम" का सिद्धांत, जिसका अर्थ है "दूसरे पक्ष को भी सुनें", यह मांग करता था कि विपक्षी पक्ष चयन समिति में कथित प्रक्रियात्मक त्रुटि के बारे में याचिकाकर्तागण को नोटिस देते और प्रस्ताव वापस लेने का प्रतिकूल निर्णय लेने से पहले उन्हें अपना पक्ष रखने का अवसर प्रदान करते। हालांकि यह सच है कि प्रशासनिक मामलों में विश्वविद्यालय के पास विवेकाधिकार होता है, लेकिन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के तहत "राज्य" जैसे सार्वजनिक निकाय के लिए यह विवेकाधिकार पूर्ण नहीं है। इसका प्रयोग कानून के अनुसार तर्कसंगत, निष्पक्ष और गैर-मनमाने ढंग से किया जाना चाहिए, जिसमें जहाँ लागू हो, वहाँ नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत भी शामिल हैं। अभ्यर्थी को सुनने का उद्देश्य उसे यह समझाने का अवसर देना है कि क्यों कथित दोष उसके विशिष्ट चयन को अमान्य नहीं करना चाहिए, विशेष रूप से अनुमोदन और प्रस्ताव दिए जाने के बाद। ऐसा करने में विफलता निर्णय को अनुचित और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन बनाती है।

21. दिनांक 08.06.2018 का नियुक्ति का औपचारिक प्रस्ताव, जो प्रबंधन बोर्ड के अनुमोदन के साथ समाप्त हुई एक पूर्ण चयन प्रक्रिया के बाद जारी किया गया था और जिसे याचिकाकर्तागण द्वारा विधिवत स्वीकार कर लिया गया था, उसने एक 'न्यायसंगत प्रत्याशा' उत्पन्न की कि उन्हें नियुक्त किया जाएगा। जैसा कि माननीय

उच्चतम न्यायालय ने *भारतीय खाद्य निगम बनाम मैसर्स कामधेनु कैटल फीड इंडस्ट्रीज, (1993) 1 एससीसी 71* के पैरा 7, 8 और 10 में यह माना है कि न्यायसंगत प्रत्याशा सार्वजनिक निकायों के स्पष्ट वादों या निरंतर अभ्यासों से उत्पन्न होती है। हालांकि यह नियुक्ति का पूर्ण अधिकार नहीं है, फिर भी इस प्रत्याशा को मनमाने ढंग से या निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांतों का पालन किए बिना विफल नहीं किया जा सकता है। विपक्षी पक्षकारों द्वारा किसी भी व्यापक सार्वजनिक हित को दर्शाए बिना या निष्पक्ष प्रक्रिया का पालन किए बिना की गई मनमानी वापसी, याचिकाकर्तागण की उस न्यायसंगत प्रत्याशा का उल्लंघन करती है जो स्वयं विपक्षी के कार्यों द्वारा उत्पन्न हुई थी।

22. वचनात्मक विबंध' का सिद्धांत इस मामले में पूरी तरह लागू होता है। विपक्षी पक्षकारों ने अपने नियुक्ति प्रस्ताव के माध्यम से एक स्पष्ट और असंदिग्ध वचन दिया था, इस मंशा के साथ कि याचिकाकर्तागण उस पर कार्य करें। याचिकाकर्तागण ने उस प्रस्ताव को स्वीकार करके उस वचन पर अमल किया और कार्यभार ग्रहण करने की तिथि की प्रतीक्षा की, जिससे उन्होंने इस अवधि के दौरान रोजगार के अन्य संभावित अवसरों को छोड़ दिया और अपनी स्थिति में परिवर्तन किया। जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा *मेसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 2 एस.सी.सी 409* के मामले में (पैरा-8 के बाद से) निर्धारित कानून में कहा गया है कि जहाँ एक पक्ष ऐसा वचन देता है जिस पर दूसरा पक्ष अपने अहित की स्थिति में कार्य करता है, वहाँ वचन देने वाला अपने वचन से पीछे हटने से विबंधित हो जाता है, विशेष रूप से जब वह एक राज्य इकाई के रूप में कार्य कर रहा हो। अतः विपक्षी पक्षकारों को याचिकाकर्तागण को नियुक्त करने के अपने वचन से मनमाने ढंग से पीछे हटने से रोका जाना चाहिए।

23. उपरोक्त दलीलों के आलोक में, तथ्यात्मक स्थिति को स्पष्ट करते हुए और लागू कानूनी सिद्धांतों एवं नज़ीरों का विस्तार करते हुए, यह दोहराया जाता है कि आक्षेपित आदेश और विपक्षी पक्षकारों द्वारा बताए गए अंतर्निहित प्रस्ताव अवैध, मनमाने, भेदभावपूर्ण तथा नैसर्गिक न्याय और याचिकाकर्तागण की न्यायसंगत प्रत्याशा का उल्लंघन करने वाले हैं। ये अनुबंध के उल्लंघन का गठन करते हैं, वचनात्मक विबंध द्वारा बाधित हैं, और इसलिए रद्द किए जाने योग्य हैं।

24. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने पुरजोर तरीके से यह तर्क दिया है कि प्रतिवादी विश्वविद्यालय को अपनी कथित आंतरिक प्रक्रियात्मक अनियमितता का हवाला देकर, याचिकाकर्ताओं को जारी किए गए और उनके द्वारा स्वीकार किए गए नियुक्ति-प्रस्ताव को अमान्य करने से रोका जाना चाहिए, जो कि 'आंतरिक प्रबंधन के सिद्धांत' (तर्कद नियम) के सदृश सिद्धांतों पर आधारित है। यद्यपि इसकी उत्पत्ति कंपनी कानून में हुई थी, किंतु किसी संस्था के बाहरी अभ्यावेदन के आधार पर व्यवहार करने वाले निर्दोष बाहरी व्यक्तियों की रक्षा करने वाला इसका अंतर्निहित सिद्धांत निष्पक्षता और विबंध में निहित है, जो इसे यहाँ सुसंगत बनाता है।

25. याचिकाकर्ता विश्वविद्यालय की आधिकारिक भर्ती प्रक्रिया के माध्यम से उससे जुड़ने वाले बाहरी व्यक्ति थे। प्रबंधन बोर्ड के अनुमोदन (30.01.2018) के पश्चात जारी नियुक्ति-प्रस्ताव (08.06.2018) यह दर्शाता था

कि आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण हो चुकी थीं। याचिकाकर्ताओं ने इस प्रस्तुतिकरण पर सद्भावनापूर्वक कार्य किया और उनके पास चयन समिति की आंतरिक संरचना या आंतरिक समझौता जापनों के अनुपालन की जांच करने का न तो कोई साधन था और न ही कर्तव्य—क्योंकि ये आंतरिक प्रबंधन के विषय हैं। भारतीय न्यायशास्त्र में मान्यता प्राप्त मुख्य सिद्धांत, जैसा कि *लक्ष्मी रतन काँटन मिल्स कंपनी लिमिटेड, कानपुर बनाम जे. के. जूट मिल्स कंपनी लिमिटेड, कानपुर ए.आई.आर 1957 इना. 311* (पैरा-13) में निर्धारित किया गया है, यह है कि सद्भावना से कार्य करने वाला बाहरी व्यक्ति यह मानने का हकदार है कि आंतरिक प्रक्रियाओं का पालन किया गया है। इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सार्वजनिक निकायों पर भी ऐसे सुरक्षात्मक सिद्धांतों को लागू किया है। *चेयरमैन एंड एमडी, बीपीएल लिमिटेड बनाम एस.पी. गुरुराजा और अन्य, (2003) 8 एससीसी 567* में न्यायालय ने उल्लेख किया कि एक आवंटी से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह आंतरिक प्रक्रियात्मक अनियमितताओं के बारे में जानता हो। इसी प्रकार, समिति गठन के संबंध में विश्वविद्यालय की कथित आंतरिक चूक के लिए याचिकाकर्ताओं को दंडित नहीं किया जा सकता है।

26. अतः, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि विश्वविद्यालय को अपनी स्वयं की कथित आंतरिक चूक (जिसकी जानकारी याचिकाकर्ता को नहीं थी) के आधार पर अपने औपचारिक प्रस्ताव को वापस लेने की अनुमति देना घोर अन्यायपूर्ण है। यह *मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स* (उपरोक्त) में निर्धारित वचनी विबंध के सिद्धांतों के अनुरूप है; जैसा कि *एम.आर.एफ. लिमिटेड बनाम मनोहर परिकर और अन्य, (2010) 11 एस.सी.सी 374* में भी कहा गया है कि सार्वजनिक निकाय उन प्रस्तुतीकरणों से मनमाने ढंग से पीछे नहीं हट सकते जिन पर सद्भावनापूर्वक अमल किया गया हो। विश्वविद्यालय ने नियुक्ति को वैध बताया था, इसलिए अब उसे निर्दोष बाहरी व्यक्तियों की रक्षा करने वाले सिद्धांतों के अनुसार अपनी आंतरिक अनियमितता का हवाला देने से रोका जाना चाहिए।

27. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि याचिकाकर्तागण ने विपक्षी संख्या 4 द्वारा जारी दिनांक 27.11.2019 के आदेश को रद्द करने की मांग करते हुए वर्तमान याचिकाएं दायर की हैं, जिसने याचिकाकर्तागण के नियुक्ति प्रस्ताव को रद्द कर दिया था। हालांकि, पहली रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 5 द्वारा पारित दिनांक 31.10.2018 के उस प्रस्ताव को चुनौती नहीं दी है, जिसमें शुरू में नियुक्ति प्रस्ताव रद्द करने का निर्णय लिया गया था। याचिकाकर्ता ने केवल नियुक्ति प्रस्ताव वापस लेने के बाद के संचार को चुनौती दी है, न कि मूल आदेश को, जिससे यह रिट याचिका विचारणीय नहीं रह जाती और केवल इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है। हालांकि दूसरी रिट याचिका में, याचिकाकर्ता ने प्रबंधन बोर्ड के दिनांक 31.10.2018 के प्रस्ताव और बोर्ड के दिनांक 20.08.2019 के पुष्टि आदेश को भी चुनौती दी है, जिनका उल्लेख 27.11.2019 के आक्षेपित आदेश में किया गया है।

28. इसके अतिरिक्त, विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि विपक्षी संख्या 6 ने अपने दिनांक 23.07.2012 के पत्र के माध्यम से संकेत दिया था कि मीडिया केंद्र के संचालन के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, शैक्षिक संचार कंसोर्टियम (सीईसी) और बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के बीच 02.02.2015 को

एक समझौता जापन पर हस्ताक्षर किए गए थे। समझौता जापन के पैराग्राफ 2.3 के अनुसार, चयन समिति की गणपूर्ति (कोरम) के लिए अध्यक्ष/सह-अध्यक्ष और कम से कम दो बाहरी विशेषज्ञों की उपस्थिति आवश्यक थी। हालांकि, समीक्षा करने पर यह पाया गया कि न तो सीईसी के निदेशक चयन समिति की बैठक में शामिल हुए और न ही सीईसी के शासी बोर्ड के निदेशक या अध्यक्ष ने किसी विशेषज्ञ को नामित किया। इस प्रक्रियात्मक कमी के कारण, विपक्षी संख्या 5 ने नियुक्ति प्रस्ताव को रद्द करने का निर्णय लिया।

29. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि वित्तीय सहायता विपक्षी संख्या 6 द्वारा प्रदान की जानी थी। मीडिया केंद्र की स्थापना एक 'परियोजना पद्धति' पर की गई थी, जिसके लिए विपक्षी संख्या 6 द्वारा शत-प्रतिशत वार्षिक सहायता दी जानी थी। चूंकि यह सहायता प्रदान नहीं की गई थी, इसलिए पूरी परियोजना प्रभावित हुई, जिसके परिणामस्वरूप विपक्षी संख्या 2 से 5 के प्रबंधन बोर्ड की बैठक के बाद, दिनांक 08.06.2018 के प्रस्ताव पत्र को वापस ले लिया गया।

30. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह भी तर्क दिया कि याचिकाकर्तागण केवल नियुक्ति के प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति के आधार पर अपने दावे के हकदार नहीं हैं, क्योंकि उन्हें औपचारिक नियुक्ति आदेश जारी नहीं किया गया था।

31. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रकार यह निवेदन किया है कि उपरोक्त तथ्यों, परिस्थितियों और आधारों को देखते हुए, विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 27.11.2019 का आदेश, जिसने याचिकाकर्तागण की नियुक्ति वापस ले ली थी, वह सही और कानूनी रूप से सुदृढ़ है। इसलिए, इस माननीय न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है और सम्मानपूर्वक यह अनुरोध किया जाता है कि यह माननीय न्यायालय न्याय के हित में याचिकाकर्तागण द्वारा दायर रिट याचिकाओं को हर्जाने के साथ खारिज कर दे।

32. उपरोक्त तर्कों के समर्थन में, विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने **तेज प्रकाश पाठक व अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय व अन्य (2025) 2 एससीसी 1** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय के पैरा 63 और 64 पर भरोसा जताया है। उपरोक्त पैराग्राफों में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस पहलू पर विचार किया कि चयन सूची में नाम होने के बाद भी नियुक्ति से इनकार किया जा सकता है। उक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने **शंकरसन दश बनाम भारत संघ (1991) 3 एससीसी 47** में दिए गए संविधान पीठ के निर्णय का पालन किया है। **पैरा 63 और 64** इस प्रकार हैं:

"63. उपरोक्त खंड (सी) में, हमने इस न्यायालय की संविधान पीठ के शंकरसन दश [शंकरसन दश बनाम भारत संघ, (1991) 3 एससीसी 47 : 1991 एससीसी (L&S) 800] मामले में दिए गए निर्णय का पहले ही संज्ञान लिया है, जहाँ यह निर्धारित किया गया था: (SCC पृ. 51, पैरा 7) कि:

"7. ... जब तक संबंधित भर्ती नियम ऐसा संकेत न दें, राज्य का सभी या किसी भी रिक्ति को भरने का कोई कानूनी कर्तव्य नहीं है। हालांकि, इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य के पास मनमाने ढंग से कार्य करने

की छूट मिल गई है। रिक्तियों को न भरने का निर्णय उचित कारणों के साथ सद्भावनापूर्वक लिया जाना चाहिए। और यदि रिक्तियां भरी जाती हैं, तो राज्य उम्मीदवारों की तुलनात्मक योग्यता का सम्मान करने के लिए बाध्य है, जैसा कि भर्ती परीक्षा में परिलक्षित होता है, और किसी भी भेदभाव की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

"64. अतः, शंकरसन दश [शंकरसन दश बनाम भारत संघ, (1991) 3 एस सी सी 47 : 1991 एस सी सी (एल और एस) 800] के निर्णय के आलोक में, चयन सूची में शामिल उम्मीदवार को नियुक्त होने का कोई अटूट अधिकार प्राप्त नहीं होता, भले ही रिक्तियां उपलब्ध हों। इस न्यायालय द्वारा सुभाष चंद्र मारवाह [हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंद्र मारवाह, (1974) 3 एस सी सी 220 : 1973 एस सी सी (एल और एस) 488] के मामले में भी ऐसा ही विचार अपनाया गया था, जहाँ 15 रिक्तियों के विरुद्ध चयन सूची से केवल शीर्ष 7 उम्मीदवारों को नियुक्त किया गया था। किंतु यहाँ एक कैविएट है। राज्य या उसकी संस्थाएँ किसी चयनित उम्मीदवार को मनमाने ढंग से नियुक्ति से वंचित नहीं कर सकतीं। इसलिए, जब चयनित उम्मीदवार को नियुक्ति देने से इनकार करने वाले राज्य के कार्य को चुनौती दी जाती है, तो चयन सूची से नियुक्ति न करने के अपने निर्णय को उचित ठहराने का भार राज्य पर होता है। "

33. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री तथा उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्णयों का परिशीलन किया गया।

34. विशेष रूप से, प्रबंधन बोर्ड जो कि सर्वोच्च कार्यकारी निकाय है, ने चयन समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रोड्यूसर के पद के लिए चयन पर विचार करने और उसे मंजूरी देने हेतु 30.01.2018 को अपनी स्वीकृति दे दी थी और याचिकाकर्तागण के पक्ष में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया गया था। विपक्षी संख्या 4 ने 08.06.2018 को एक ज्ञापन जारी किया जिसके माध्यम से याचिकाकर्तागण को प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्तागण ने विश्वविद्यालय द्वारा भेजे गए सत्यापन प्रपत्र के साथ 13.06.2018 को अपना स्वीकृति पत्र भेज दिया। यह भी संज्ञान में लिया गया है कि याचिकाकर्तागण को काफी लंबे समय तक कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई, इसलिए प्रथम रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने फरवरी 2019 से लेकर आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 पारित होने तक सूचना के अधिकार के तहत प्रत्यावेदन और अनुस्मारक भेजे। सूचना के अधिकार के तहत भी याचिकाकर्ता को उचित जानकारी प्रदान नहीं की गई, क्योंकि याचिकाकर्ता ने अपनी नियुक्ति की स्थिति से संबंधित छह प्रश्न पूछे थे, लेकिन उन्होंने केवल चार प्रश्नों के उत्तर दिए और प्रश्न संख्या 5 और 6 का उत्तर देने में विफल रहे, जिसमें संबंधित नियुक्ति की प्रक्रिया और चयन पद्धति तथा नियुक्ति पत्र जारी करने में पंद्रह महीने से अधिक की देरी के कारण के बारे में पूछा गया था। दूसरी रिट याचिका के याचिकाकर्ता ने पहले एक रिट याचिका दायर की थी और इस न्यायालय ने उन्हें प्रत्यावेदन के माध्यम से सक्षम प्राधिकारी से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी थी और प्राधिकारी को उस प्रत्यावेदन पर एक सकारण और विस्तृत आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन जो आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, वह बिना किसी कारण के और मौन आदेश है।

35. आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 में किसी भी प्रकार का कोई कारण नहीं दिया गया है, इसमें केवल इतना संकेत दिया गया है कि प्रोड्यूसर के पद के लिए जापन / नियुक्ति के प्रस्ताव को बोर्ड के दिनांक 31.10.2018 के प्रस्ताव के तहत वापस लिया जाता है, जिसकी पुष्टि 20.08.2019 को आयोजित ई.एम.एम.आर.सी के प्रबंधन बोर्ड की बैठक में की गई थी।

36. जिस रीति से नियुक्ति प्रस्ताव वापस लेने का आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 जारी किया गया है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है, क्योंकि यह एक स्थापित कानून है कि कारणों को दर्ज करना नैसर्गिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है जो शक्तियों के मनमाने प्रयोग के विरुद्ध अंकुश के रूप में कार्य करता है और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। विपक्षी पक्षकारों ने मनमाने ढंग से और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में कार्य किया। उपरोक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मैं सम्मानपूर्वक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **ई.पी. रोयप्पा (उपरोक्त)**, **रमणा दयाराम शेट्टी (उपरोक्त)** और **ए.बी.एल. इंटरनेशनल लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामलों में दिए गए निर्णयों का अनुसरण कर रहा हूँ।

37. मैंने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया है कि याचिकाकर्तागण के प्रोड्यूसर पद के नियुक्ति प्रस्ताव को वापस लेने से पहले, उन्हें सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया, जबकि इस विषय पर **डॉ. बीणापाणि देई (उपरोक्त)** और **ए.के. क्रैपक बनाम भारत संघ (उपरोक्त)** के मामलों में कानून स्पष्ट है, जिनमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि यदि अधिकारियों के किसी भी कार्य या अकर्मण्यता के गंभीर दीवानी परिणाम होते हैं, जो किसी की आजीविका या करियर को प्रभावित करते हैं, तो वे कार्य या अकर्मण्यता नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होने चाहिए।

38. न्यायसंगत प्रत्याशा के संबंध में याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में बल है, क्योंकि याचिकाकर्तागण इस बात से पूरी तरह अनभिज्ञ थे कि चयन समिति का गठन उचित था या नहीं। चयन समिति के समक्ष उपस्थित होने और सफल घोषित होने के बाद, याचिकाकर्तागण को 08.06.2018 को नियुक्ति प्रस्ताव जारी किया गया था, जिसे उनके द्वारा 13.06.2018 और 19.06.2018 को स्वीकार कर लिया गया था। जैसा कि याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा सूचित किया गया है, याचिकाकर्तागण के पास वर्तमान में कोई रोजगार नहीं है।

39. यद्यपि इन परिस्थितियों में याचिकाकर्तागण को नियुक्ति का कोई पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं हुआ है, लेकिन उनकी प्रत्याशा को मनमाने ढंग से या निष्पक्षता और तर्कसंगतता के सिद्धांतों का पालन किए बिना विफल नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के उक्त तर्क को **भारतीय खाद्य निगम (उपरोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से समर्थन मिलता है। यहाँ तक कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वर्तमान मामले में 'वचनात्मक विबंध का सिद्धांत' लागू होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने **मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड (उपरोक्त)** के मामले में यह माना है कि जहाँ कोई पक्ष ऐसा

वादा करता है जिस पर दूसरा पक्ष अपने अहित की स्थिति में कार्य करता है, वहाँ वादा करने वाला अपने वादे से पीछे हटने से वर्जित हो जाता है।

40. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ताओं ने सद्भावनापूर्वक कार्य करते हुए चयन समिति के समक्ष उपस्थित हुए और उक्त चयन में सफल रहे। याचिकाकर्तागण का नियुक्ति प्रस्ताव उन सक्षम अधिकारियों की ओर से हुई गलती के कारण वापस लिया गया है जिन्होंने उस समिति का गठन किया था, जो विपक्षी पक्षकारों के अनुसार उचित समिति नहीं थी और इस तथ्य की जानकारी याचिकाकर्तागण को नहीं थी। यदि समिति शुरुआत से ही गलत तरीके से गठित की गई थी, तो प्रश्न यह उठता है कि प्रबंधन बोर्ड ने 30.01.2018 को ऐसी समिति को स्वीकृति क्यों दी और 08.06.2018 को नियुक्ति प्रस्ताव क्यों जारी किया। किसी सरकारी निकाय को एक दिन किसी चीज़ को मंजूरी नहीं देनी चाहिए और अगले दिन उसे उसी कारण के आधार पर रद्द नहीं करना चाहिए जो शुरू से ही मौजूद था, जब तक कि कुछ नया और महत्वपूर्ण सामने न आया हो। केवल इतना ही नहीं, यदि ऐसी समिति का गठन गलत तरीके से किया गया था, तो ऐसी गलती को साक्षात्कार की तिथि यानी 20.11.2017 से पहले, या अधिक से अधिक 30.01.2018 को या उससे पहले सुधारा जा सकता था, जब चयन समिति की रिपोर्ट पर विचार करने और चयन के अनुमोदन के लिए प्रबंधन बोर्ड की बैठक बुलाई गई थी। सक्षम प्राधिकारी को यह समझने में साक्षात्कार की तिथि 20.11.2017 से लेकर आक्षेपित आदेश की तिथि 27.11.2019 तक लगभग दो वर्ष का समय लग गया कि समिति का गठन गलत तरीके से हुआ था और याचिकाकर्तागण द्वारा कई प्रत्यावेदन देने के बावजूद उन्हें इस संबंध में उचित जानकारी नहीं दी गई। यहाँ तक कि 27.11.2019 का मौन और बिना कारण वाला आदेश तब पारित किया गया है जब इस न्यायालय ने पिछली रिट याचिका में अधिकारियों को याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर सकारण और विस्तृत आदेश पारित करने का निर्देश दिया था। इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 मनमाना और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होने के कारण निरस्त किए जाने योग्य है।

41. सर्वोच्च न्यायालय ने **शंकरसन दश (उपरोक्त)** के मामले में यह टिप्पणी की है कि राज्य प्राधिकारी के पास मनमाने ढंग से कार्य करने का कोई लाइसेंस नहीं है और रिक्तियों को न भरने का निर्णय उचित कारणों के साथ सद्भावनापूर्वक लिया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, विश्वविद्यालय के संबंधित अधिकारियों की ओर से की गई कार्रवाई/अकर्मण्यता नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि आक्षेपित आदेश पूरी तरह से मौन और बिना कारण वाला आदेश है और इसकी सूचना याचिकाकर्तागण को साक्षात्कार की तिथि से लगभग दो वर्ष बाद दी गई है। समिति के गलत गठन के तथ्य पर प्रबंधन बोर्ड द्वारा शुरुआत में ही विचार किया जाना चाहिए था और 30.01.2018 के प्रस्ताव के माध्यम से याचिकाकर्तागण की नियुक्ति को मंजूरी नहीं दी जानी चाहिए थी। अतः, वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ **तेज प्रकाश पाठक (उपरोक्त)** और **शंकरसन दश (उपरोक्त)** के मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों से भिन्न हैं, इसलिए वे इस मामले में लागू नहीं होंगे।

42. यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि इस स्थापित कानून पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि चयन सूची में स्थान मिलने के बाद भी नियुक्ति से इनकार किया जा सकता है।

43. अतः, उपरोक्त विवेचना के आलोक में, मैं बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के कुलसचिव द्वारा जारी आक्षेपित आदेश दिनांक 27.11.2019 के साथ-साथ प्रबंधन बोर्ड के दिनांक 31.10.2018 के प्रस्ताव और प्रबंधन बोर्ड के दिनांक 20.08.2019 के पुष्टि आदेश को, जहाँ तक वे उपरोक्त दोनों रिट याचिकाओं के याचिकाकर्तागण से संबंधित हैं, एतद्वारा निरस्त/रद्द करता हूँ।

44. विपक्षी पक्षकारों को निर्देशित किया जाता है कि वे दिनांक 08.06.2018 के नियुक्ति प्रस्ताव को तत्काल प्रभावी करें और याचिकाकर्तागण को सभी परिणामी सेवा लाभों के साथ प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त करें।

45. तदनुसार, उपरोक्त दोनों रिट याचिकाएँ **स्वीकार** की जाती हैं।

46. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं। समापन से पूर्व, मैं इस मामले में लागू प्रासंगिक कानूनी नज़ीरों को खोजने में लॉ इंटर्न्स (विधि प्रशिक्षुओं) श्री रुद्र सिंह कृष्णा और सुश्री मरियम इकबाल द्वारा किए गए शोध कार्य के प्रयासों की सराहना करता हूँ।

(2025) 6 ILRA 170

मूल क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया

रिट सी संख्या 38609 वर्ष 2019 अन्य संबंधित वादों के साथ

मेसर्स साजिद

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: समर्थ सिन्हा, विजय सिन्हा, विशाल टंडन

प्रतिवादी के अधिवक्ता: मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(ए) प्रशासनिक विधि - उचित दर की दुकान - लाइसेंस का निरस्तीकरण - आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 - धारा 3/7 एवं 13(2) - उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 - सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 - धारा 43, 60, 66 - उचित दर की दुकान के लाइसेंस के निरस्तीकरण का आदेश केवल आपराधिक मामला दर्ज होने के आधार पर नहीं दिया जा सकता - शासनादेश दिनांक 05.08.2019 निरस्तीकरण/निलंबन से पूर्व अनिवार्य प्रारंभिक जांच का प्रावधान करता है - निर्धारित प्रक्रिया का पालन न करने से निरस्तीकरण का आदेश दूषित हो जाता है - उचित दर की दुकान का लाइसेंस शासनादेश दिनांक 05.08.2019 के अंतर्गत उचित जांच किए बिना केवल आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता। (पैरा - 32, 33, 34)

याचिकाकर्ता की उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त कर दिया गया था - आधार - उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी - शासनादेश दिनांक 05.08.2019 द्वारा अनिवार्य की गई कोई प्रारंभिक जांच नहीं की गई थी - नियंत्रण आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत वैधानिक अपीलों को खारिज कर दिया गया था। (पैरा - 3 से 24, 31, 32)

अभिनिर्धारित: - आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस/अनुबंध निरस्त नहीं किया जा सकता। लाइसेंस को निरस्त या निलंबित करने से पहले अधिकारियों के लिए शासनादेश दिनांक 05.08.2019 के तहत निर्धारित प्रारंभिक जांच करना अनिवार्य है। चूंकि

इस प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, इसलिए निरस्तीकरण का आदेश पोषणीय नहीं है। अधिकारियों को तत्काल उचित दर की दुकान के लाइसेंस बहाल करने का निर्देश दिया गया। (पैरा 32, 33, 34, 36)

याचिकाएँ स्वीकार की गईं। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. बजरंगी तिवारी बनाम आयुक्त देवी पाटन मंडल गोंडा व अन्य, विविध एकल संख्या 8033 वर्ष 2013
2. अमित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट सी संख्या 2029 वर्ष 2022
3. मोहम्मद आमिर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, एस.एल.पी. (सिविल) संख्या 25501 वर्ष 2024

(माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाडिया द्वारा निर्णय सुनाया गया।)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल टंडन के साथ विद्वान अधिवक्ता समर्थ सिन्हा और प्रतिवादियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/अपर महाधिवक्ता श्री अशोक मेहता साथ में विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री विजय शंकर प्रसाद को सुना गया।

2. चूंकि सभी याचिकाओं में शामिल कानून का प्रश्न समान है, अर्थात् क्या आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान के लाइसेंस/अनुबंध को निरस्त या निलंबित किया जा सकता है, इसलिए इन सभी का निर्णय इस साझा निर्णय के माध्यम से किया जा रहा है।

रिट सी संख्या - 38609 वर्ष 2019

3. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को केवल इस आधार पर निलंबित कर दिया था कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई है। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 की धारा 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 12.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका प्रस्तुत की है।

रिट सी संख्या - 21616 वर्ष 2019

4. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, बिजनौर ने अपने दिनांक 06.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 18.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 की धारा 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 27.05.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 30465 वर्ष 2019

5. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, बिजनौर ने अपने दिनांक 06.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 19.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66सी के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 की धारा 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 13.08.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 32174 वर्ष 2019

6. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 की धारा 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 28.05.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 32614 वर्ष 2019

7. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 की धारा 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 02.09.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 37063 वर्ष 2019

8. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 06.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 37249 वर्ष 2019

9. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 30.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 20.02.2019/21.02.2019 के आदेश द्वारा इसे इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 08.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 38622 वर्ष 2019

10. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 08.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 12.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 38638 वर्ष 2019

11. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 09.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 12.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 38643 वर्ष 2019

12. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 09.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 12.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 38649 वर्ष 2019

13. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 09.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 66 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 12.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 40437 वर्ष 2019

14. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 21.02.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 08.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 40444 वर्ष 2019

15. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 06.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 40451 वर्ष 2019

16. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 06.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 1852 वर्ष 2020

17. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 31.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 18.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 1866 वर्ष 2020

18. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, गाजियाबाद ने अपने दिनांक 30.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 10.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. अधिनियम की धारा 43 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 18.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 2382 वर्ष 2019

19. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, आगरा ने अपने दिनांक 30.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 15.03.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420 व 120B के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, आगरा मंडल, आगरा के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 08.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 5595 वर्ष 2020

20. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मेरठ ने अपने दिनांक 14.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 22.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 14.11.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 21467 वर्ष 2020

21. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, अमरोहा ने अपने दिनांक 11.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 05.03.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 व 468 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/अपर आयुक्त (प्रशासन), मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 24.02.2020 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 21533 वर्ष 2020

22. इस रिट याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, अमरोहा ने अपने दिनांक 11.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 05.03.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 व 468 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/अपर आयुक्त (प्रशासन), मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 24.02.2020 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 22154 वर्ष 2020

23. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, अमरोहा ने अपने दिनांक 30.08.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 01.04.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467 व 468 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-2/अपर आयुक्त (प्रशासन), मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 24.02.2019 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था।

रिट सी संख्या - 17812 वर्ष 2023

24. इस याचिका में निहित संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता उचित दर की दुकान का लाइसेंस धारक था और प्रतिवादी संख्या-3/जिला पूर्ति अधिकारी, मुरादाबाद ने अपने दिनांक 06.09.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को निलंबित कर दिया था और तत्पश्चात दिनांक 08.01.2019 के आदेश द्वारा इसे केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता ने कई बार आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और खाद्यान्न में हेरफेर की, जिसके लिए उसके विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 417 व 419 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 के खंड 13(2) के तहत प्रदान की गई वैधानिक अपील प्रतिवादी संख्या-4/अपर आयुक्त द्वितीय, मुरादाबाद मंडल, मुरादाबाद के समक्ष दायर की गई थी, जिसे उनके द्वारा दिनांक 05.03.2020 के आदेश के

माध्यम से खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त आदेश के विरुद्ध, उनके समक्ष एक पुनर्विलोकन आवेदन भी दायर किया गया था, जिसे प्रतिवादी संख्या-4 ने अपने दिनांक 07.09.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया।

25. उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी द्वारा राशन कार्ड धारकों के बयान न तो याचिकाकर्ता की उपस्थिति में दर्ज किए गए और न ही याचिकाकर्ता को उक्त गवाहों से जिरह करने का कोई अवसर प्रदान किया गया। रिट याचिका में आगे यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता (उचित दर की दुकान विक्रेता) के विरुद्ध कोई पूर्ण जांच नहीं की गई है, याचिकाकर्ता को कोई आरोप पत्र नहीं दिया गया और न ही विवादित निरस्तीकरण आदेश पारित करने से पूर्व की गई जांच के संबंध में याचिकाकर्ता को सुनवाई की किसी तिथि या स्थान की सूचना दी गई। यह भी कहा गया है कि उचित दर की दुकान का लाइसेंस केवल इस आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई है। यह तर्क दिया गया कि उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में शामिल विवाद को इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **'मिसलेनियस सिंगल संख्या 8033 वर्ष 2013, बजरंगी तिवारी बनाम आयुक्त देवीपाटन मंडल गोंडा व एक अन्य'** के मामले में दिनांक 26.10.2017 को दिए गए निर्णय में पहले ही तय किया जा चुका है, जिसमें निम्नलिखित प्रश्न बड़ी पीठ को संदर्भित किए गए थे:

- "1. क्या केवल लाइसेंस धारक के विरुद्ध आपराधिक मामला दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त किया जा सकता है?; और
2. क्या ऐसा कोई आदेश पारित करते समय सरकारी आदेश दिनांक 17.8.2002, विशेष रूप से उक्त सरकारी आदेश के पैरा-10 को लागू किया जाएगा या उस पर विचार किया जाएगा या नहीं?"

26. उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं:-

- (i) उत्तर 'नहीं' में है। केवल लाइसेंस धारक के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता।
(ii) उत्तर 'नहीं' में है। दिनांक 17.8.2002 का सरकारी आदेश उचित दर की दुकान के आवंटन से संबंधित है, इसलिए लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण के मामले में इसका संदर्भ नहीं दिया जा सकता। निलंबन या निरस्तीकरण की कार्रवाई दिनांक 29.7.2014 के सरकारी आदेश के अनुसार ही की जा सकती है।

27. आगे यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादियों द्वारा उपरोक्त आदेश पारित करने से पहले दिनांक 05.08.2019 के सरकारी आदेश में निहित प्रावधानों का अनुपालन किया जाना चाहिए था, लेकिन उनका अनुपालन नहीं किया गया। अतः, यह आदेश कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया कि अमित कुमार नामक व्यक्ति द्वारा इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका **रिट सी संख्या 2029 वर्ष 2022 (अमित कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य)** दायर की गई थी और इस न्यायालय ने **बजरंगी तिवारी (उपरोक्त)** के मामले में पूर्ण पीठ द्वारा पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 11.09.2024 को रिट

याचिका स्वीकार कर ली थी। न्यायालय ने उसमें यह माना था कि उचित दर की दुकान का लाइसेंस केवल आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता। दिनांक 11.09.2024 का आदेश इस प्रकार है:-

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विशाल टंडन और राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री रविंद्र कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को उचित दर की दुकान का लाइसेंस प्रदान किया गया था और याचिकाकर्ता लंबे समय से उचित दर की दुकान का संचालन कर रहा था। याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही शुरू की गई और दिनांक 26.12.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का लाइसेंस निरस्त कर दिया गया। निरस्तीकरण आदेश दिनांक 26.12.2018 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील भी दिनांक 4.3.2021 के आदेश द्वारा खारिज कर दी गई। अतः, निम्नलिखित राहतों के लिए यह रिट याचिका दायर की गई है:-

i) उत्प्रेषण रिट की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसके द्वारा अपील संख्या 93/2020-21 और 94/2020-21 में संयुक्त आयुक्त (खाद्य), सहारनपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 04.03.2021 तथा जिला पूर्ति निरीक्षक, मुजफ्फरनगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.12.2018 एवं 01.09.2018 को रद्द किया जाए।

ii) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए, जिसके द्वारा प्रतिवादी अधिकारियों को याचिकाकर्ता के पक्ष में उचित दर की दुकान के लाइसेंस को बहाल करने का निर्देश दिया जाए।

iii) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त समझे।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 11.02.2022 के आदेश द्वारा मामले पर विचार किया और राज्य को जवाबी हलफनामा दाखिल करने का निर्देश दिया।

4. दिनांक 11.02.2022 के आदेश के अनुपालन में, पक्षों के बीच अभिवचनों का आदान-प्रदान पूरा हो चुका है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता का उचित दर की दुकान का लाइसेंस, दिनांक 05.08.2019 के सरकारी आदेश और उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (बिक्री और वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश, 2016 में निहित प्रावधानों के उल्लंघन में निरस्त किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि इस मामले में कोई प्रारंभिक जांच नहीं की गई है और याचिकाकर्ता का लाइसेंस गलत आधारों पर निरस्त कर दिया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 की धारा 3/7 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होना उचित दर की दुकान के लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण का आधार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि मामले की उचित जांच न की जाए। उन्होंने इस न्यायालय की पूर्ण पीठ (Full Bench) द्वारा मिसलेनियस सिंगल संख्या 8033 वर्ष 2013, दिनांक 26.10.2017 (बजरंगी तिवारी बनाम आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा व अन्य) में दिए गए निर्णय पर भरोसा जताया, ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि केवल प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि दिनांक 05.08.2019 के सरकारी आदेश और नियंत्रण आदेश, 2016 के अनिवार्य प्रावधानों के उल्लंघन को देखते हुए, आक्षेपित आदेशों को बरकरार नहीं रखा जा सकता और वे इस न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने योग्य हैं।

6. राज्य की ओर से विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही शुरू की गई थी और यह पाया गया कि कार्डधारकों को आवश्यक वस्तुओं के वितरण के संबंध में याचिकाकर्ता की ओर से अनियमितता बरती गई थी, इसलिए याचिकाकर्ता का लाइसेंस बिल्कुल सही तरीके से निरस्त किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही भी शुरू की गई थी और आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, अतः इस मामले में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और रिट याचिका खारिज होने योग्य है।
7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।
8. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता को उचित दर की दुकान का लाइसेंस प्रदान किया गया था। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि आक्षेपित आदेश के तहत याचिकाकर्ता का लाइसेंस निरस्त कर दिया गया है और अपील भी खारिज कर दी गई है।
9. मामले में निहित विवाद को समझने के लिए, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में उचित दर की दुकान के लाइसेंस के निलंबन/निरस्तीकरण के संबंध में लागू शासकीय आदेश दिनांक 05.08.2019 का अवलोकन करना आवश्यक होगा, जो कि इस प्रकार है:

प्रेषक,

ओम प्रकाश वर्मा,
विशेष सचिव,
उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

1. आयुक्त, खाद्य एवं रसद विभाग, उत्तर प्रदेश।
2. समस्त जिलाधिकारी, उत्तर प्रदेश।
3. समस्त जिला पूर्ति अधिकारी, उत्तर प्रदेश।

खाद्य एवं रसद अनुभाग-6

लखनऊ: दिनांक 05 अगस्त, 2019

विषय: ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की उचित दर की दुकानों के निलम्बन/निरस्तीकरण एवं सम्बद्धीकरण के सम्बन्ध में प्रक्रिया का निर्धारण।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत कार्यरत उचित दर की दुकानों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की जाँच एवं तत्क्रम में उनके विरुद्ध सम्पादित की जाने वाली कार्यवाहियों यथा निलम्बन, निरस्तीकरण एवं सम्बद्धीकरण के सम्बन्ध में समय-समय पर विभिन्न शासनादेशों के माध्यम से निर्देश प्रसारित किये गये हैं। वर्तमान में लागू राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम-2013 एवं तत्क्रम में जारी उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु (विक्रय एवं वितरण नियंत्रण का विनियमन) आदेश-2016 तथा उत्तर प्रदेश खाद्य सुरक्षा नियमावली-2015 के प्रख्यापन तथा लाभार्थियों को आवश्यक वस्तुओं के वितरण में तकनीकी अनुप्रयोग (पब्लिक पोर्टल पर सम्बद्ध लाभार्थियों का ऑनलाइन प्रदर्शन एवं तदनुसार आवंटन का सृजन तथा ई०पी०ओ०एस०

मशीनों के माध्यम से कराये जा रहे वितरण) तथा डोर स्टेप डिलीवरी का कार्य प्रचलित होने के दृष्टिगत पूर्व में निर्गत समस्त शासनादेशों को अवक्रमित करते हुए वर्तमान परिदृश्य में निम्नवत् व्यवस्था निर्दिष्ट किये जाने का मुझे निदेश हुआ है:-

1- उचित दर की दुकानों के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों की जाँच-

(1) उचित दर विक्रेताओं के विरुद्ध सामान्यतया आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त न होने, विक्रेता द्वारा घटतौली किये जाने, अधिक मूल्य लिये जाने, एवं सूची में नाम न होने का बहाना बनाकर खाद्यान्न न देने, ई-पाँस मशीन में नेटवर्क न आने/सर्वर डाउन होने का बहाना बनाकर खाद्यान्न वितरण के पूर्व ही बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण कराकर लाभार्थियों को वास्तव में खाद्यान्न न देकर कालाबाजारी कर लेने तथा यूनिट के सापेक्ष कम खाद्यान्न देने, कार्ड में दर्ज यूनिटों के सापेक्ष कम यूनिट के आधार फीड होने का आधार लेकर शेष यूनिटों का खाद्यान्न न देने, उपभोक्ताओं से दुर्व्यवहार करने, समय से दुकान न खोलने, आवश्यक सूचनाओं का प्रदर्शन न करने, आदि शिकायतें प्राप्त होती हैं। शिकायत मुख्यतः मा० मुख्यमंत्री हेल्प लाइन, विभागीय टोल फ्री नम्बर कॉल सेन्टर, आई०जी०आर०एस०, तहसील दिवस, उप जिलाधिकारी, जिला पूर्ति अधिकारी, जिलाधिकारी, मण्डलायुक्त, खाद्य आयुक्त एवं शासन पर लिखित में डाक द्वारा, व्यक्तिगत रूप से एवं दूरभाष पर प्राप्त होती हैं। शिकायतकर्ता मुख्यतः तीन प्रकार के हो सकते हैं, यथा विशिष्ट व्यक्ति, सम्बन्धित उचित दर विक्रेता से सम्बद्ध कार्डधारक एवं सम्बन्धित उचित दर विक्रेता से सम्बद्ध लाभार्थियों से भिन्न अन्य स्रोत/व्यक्तियों के स्तर से प्राप्त शिकायतें।

(2) उपरोक्तानुसार प्राप्त होने वाली शिकायतों पर कार्यवाही/जाँच के सम्बन्ध में निम्नवत् प्रक्रिया अपनायी जाये-

(क) विशिष्ट व्यक्तियों से प्राप्त शिकायती पत्रों के सम्बन्ध में कार्यवाही आरम्भ करने से पूर्व सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्ति को पत्र भेजकर यह पुष्टि कर ली जाय कि पत्र उन्हीं के द्वारा हस्ताक्षरित है और शिकायतों के सम्बन्ध में उनको समाधान हो गया कि शिकायतें तथ्यों पर आधारित हैं।

(ख) सम्बन्धित उचित दर विक्रेता से सम्बद्ध कार्डधारकों के स्तर से प्राप्त शिकायतों पर कार्यवाही से पूर्व शिकायतों की प्रारम्भिक जाँच की जाए। उचित दर की दुकानों के विरुद्ध जाँच प्रक्रिया के दौरान विक्रेता द्वारा ई-पाँस के माध्यम से किये गये वितरण का विवरण (एम०आई०एस० रिपोर्ट) जो पब्लिक पोर्टल पर उपलब्ध है, का संज्ञान अवश्य लिया जाय। विक्रेता द्वारा प्रदर्शित वितरण का मिलान कार्डधारकों के राशन कार्ड में दुकानदारों द्वारा की गयी प्रविष्टियों से भी किया जा सकता है। साथ ही शिकायतकर्ता व अन्य सम्बन्धित पक्षों का कथन अंकित करते समय उनका प्रतिपरीक्षण भी अवश्य किया जाये ताकि जाँच कार्यवाही की निष्पक्षता प्रथम दृष्टया स्थापित हो एवं अनावश्यक लिटिगेशन की स्थिति उत्पन्न न हो।

(ग) अन्य स्रोतों/व्यक्तियों से प्राप्त शिकायतों के सम्बन्ध में यदि शिकायती पत्र शपथ पत्र से समर्थित नहीं है, तो शिकायतकर्ता से इस बारे में एक शपथ पत्र उपलब्ध कराने को कहा जाए और शपथ पत्र प्राप्त होने के उपरान्त ही आगे की कार्यवाही की जाए।

(घ) उचित दर विक्रेता के विरुद्ध किसी एक या अत्यन्त अल्प संख्या में उपभोक्ताओं द्वारा उचित दर विक्रेता की दुकान पर जाने के बावजूद अपना अनुमन्य खाद्यान्न प्राप्त न होने की स्थिति में वे अपनी शिकायत जिला

शिकायत निवारण अधिकारी के समक्ष भी दर्ज करा सकते हैं, जो निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए प्रकरण के परीक्षणोपरान्त उसकी नियमानुसार हकदारी/खाद्य सुरक्षा भत्ता दिलाया जाना सुनिश्चित करेंगे।

10. ऊपर उद्धृत सरकारी आदेश के अवलोकन से यह पूरी तरह स्पष्ट होता है कि उचित दर की दुकान के लाइसेंस धारक के लाइसेंस को निलंबित या निरस्त करने से पूर्व अधिकारियों द्वारा प्रारंभिक जांच की जानी अनिवार्य है।

11. उपरोक्त सरकारी आदेश दिनांक 05.08.2019 के साथ-साथ आक्षेपित आदेशों और रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य साक्ष्यों के अवलोकन से यह पता चलता है कि अधिकारियों द्वारा सरकारी आदेश में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता का लाइसेंस केवल इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि उसके विरुद्ध उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई है। इस न्यायालय द्वारा बजरंगी तिवारी (उपरोक्त) के मामले में दिए गए पूर्ण पीठ के निर्णय में यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि केवल आपराधिक मामला दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता है।

12. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा 'बजरंगी तिवारी (उपरोक्त)' के मामले में प्रतिपादित कानून के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या-3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26.12.2018 और प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा पारित अपीलीय आदेश दिनांक 4.3.2021 निरस्त किए जाने योग्य हैं और उन्हें एतद्वारा निरस्त किया जाता है।

13. यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है और प्रतिवादियों को निर्देशित किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के उचित दर की दुकान के लाइसेंस को तत्काल बहाल करें।

14. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

28. उपरोक्त आदेश को एक मोहम्मद आमिर द्वारा **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 25501 वर्ष 2024 (मोहम्मद आमिर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य)** दाखिल कर माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 21.04.2025 के आदेश द्वारा उक्त विशेष अनुमति याचिका को खारिज कर दिया। दिनांक 21.04.2025 का आदेश इस प्रकार है:-

"1. हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं; अतः, विशेष अनुमति याचिकाएँ खारिज की जाती हैं।

2. लंबित आवेदन, यदि कोई हों, निस्तारित माने जाएंगे।"

29. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि मामले में उचित जाँच की गई थी, जिसमें यह पाया गया कि याचिकाकर्ता ने ई-पी.ओ.एस मशीन के माध्यम से एफ.पी.एस. ऑटोमेशन सिस्टम का उपयोग करके विभिन्न राशन कार्डों से अवैध रूप से खाद्यान्न निकालने के लिए आधार कार्ड का दुरुपयोग किया और याचिकाकर्ता द्वारा किए गए उक्त अपराध के अनुसरण में उनकी कालाबाजारी की, जिसके लिए प्राथमिकी पहले ही दर्ज की जा चुकी है। इस दृष्टिकोण से, यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादियों द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध की गई कार्रवाई बिल्कुल सही थी। जहाँ तक इस न्यायालय द्वारा **बजरंगी (उपरोक्त)** और **अमित कुमार (उपरोक्त)** के मामले में प्रतिपादित कानून का प्रश्न है, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने स्वीकार किया है कि उपरोक्त सभी याचिकाओं में शामिल विवाद अब माननीय उच्चतम न्यायालय तक तय हो चुका है और यह कानून स्थापित हो गया है कि केवल आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता है।

30. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

31. इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं को अधिकारियों द्वारा उचित दर की दुकान का लाइसेंस प्रदान किया गया था और आक्षेपित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता का उचित दर की दुकान का लाइसेंस इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि आधार कार्ड के दुरुपयोग और खाद्यान्न के वितरण में कदाचार के लिए आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई है तथा उक्त आदेश के विरुद्ध दायर अपील भी खारिज कर दी गई है।

32. दिनांक 05.08.2019 के सरकारी आदेश, जिसका उद्धरण 'अमित कुमार (उपरोक्त)' के निर्णय में ऊपर दिया गया है, के अवलोकन से यह पूरी तरह प्रदर्शित होता है कि लाइसेंस धारक के उचित दर की दुकान के लाइसेंस के निलंबन/निरस्तीकरण से पूर्व अधिकारियों द्वारा प्रारंभिक जाँच की जानी अनिवार्य है। लेकिन आक्षेपित आदेशों और रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य साक्ष्यों के अवलोकन से पता चलता है कि अधिकारियों द्वारा उक्त सरकारी आदेश में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है और याचिकाकर्ता का लाइसेंस इस आधार पर निरस्त कर दिया गया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध उत्तर प्रदेश आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 और आई.टी. एक्ट की धारा 60/43 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है।

33. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **बजरंगी तिवारी (उपरोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय में यह माना गया कि केवल आपराधिक मामला दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस निरस्त नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त कानून की पुनः पुष्टि इस न्यायालय द्वारा अमित कुमार (उपरोक्त) के मामले में की गई है, जिसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा मोहम्मद आमिर (उपरोक्त) के मामले में भी पुष्टि किया गया है।

34. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, न्यायालय की यह राय है कि आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के तहत प्राथमिकी दर्ज होने के आधार पर उचित दर की दुकान का लाइसेंस/अनुबंध निरस्त नहीं किया जा सकता था।

[illegible]

(2025) 6 ILRA 183

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.06.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन राँय

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट टैक्स संख्या 30 वर्ष 2025

के साथ

रिट टैक्स संख्या 31 वर्ष 2025

प्रमोद स्वरूप अग्रवाल

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

प्रधान आयकर निदेशक (अन्वेषण) लखनऊ व अन्य

...विपक्षी गण

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:

अनुपम मिश्रा, शलभ सिंह

विपक्षी गण के अधिवक्ता:

नीरव चित्रवंशी, ए.एस.जी.आई., डॉ. रवि कुमार मिश्रा

क. कराधान विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - आयकर अधिनियम, 1961 - धारा 131(1क) और 132 --- याचिकाकर्ताओं के परिसर में संचालित तलाशी कार्यवाही की वैधता के साथ-साथ प्राधिकरण के वारंट और अधिनियम की धारा 131(1क) के तहत जारी नोटिस को चुनौती देने वाली रिट याचिका ---- धारा 132 के तहत कोई भी कार्यवाई शुरू करने के लिए, सबसे पहले, उसके अंतर्गत संदर्भित अधिकारियों के पास जानकारी होनी चाहिए। दूसरा, ऐसे अधिकारियों के पास ऐसी जानकारी के परिणामस्वरूप और उस पर आधारित 'विश्वास करने का कारण' होना चाहिए। तीसरा, इस जानकारी और विश्वास करने के कारण का उसमें निहित तीन खंडों (क), (ख) या (ग) में से किसी एक के साथ संबंध होना चाहिए, अन्यथा ऐसा प्रयोग विधि की दृष्टि में त्रुटिपूर्ण होगा।

ख. जानकारी और विश्वास करने का कारण उपर्युक्त खंड (ख) से संबंधित/संदर्भित होना चाहिए और उक्त खंड (ख) के साथ इसका तर्कसंगत संबंध होना चाहिए और यदि ऐसा नहीं है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप का आधार हो सकता है क्योंकि तब यह धारा 132 की उप-धारा (1) के उक्त खंड (ख) के संदर्भ में ऐसी जानकारी/विश्वास करने के कारण के अभाव का मामला होगा और इस निष्कर्ष पर ले जाएगा

कि यह कानून के प्रावधानों और उसमें निहित कानूनी आवश्यकताओं के प्रति मस्तिष्क के प्रयोग के बिना, शक्ति का मनमाना प्रयोग है।

ग. धारा 132 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्वापेक्षाएँ इस मामले में अत्यंत अभावग्रस्त थीं और परिणामस्वरूप ऐसे संतुष्टि नोट और प्राधिकरण के वारंट पर आधारित पूरी तलाशी कार्यवाही अवैध है --- अधिकृत अधिकारी के पास तलाशी के बाद धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी करने की कोई शक्ति नहीं है, अधिक से अधिक ऐसे नोटिस का जारी किया जाना नोटिस को अमान्य बना देगा। लेकिन तलाशी के बाद धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी करना किसी भी तरह से धारा 132 के तहत कार्यवाही को अमान्य नहीं बनाएगा, यदि उन्हें अन्यथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संतोष दर्ज करने के बाद जारी किए गए वैध प्राधिकार के अनुसरण में शुरू किया गया था।

याचिका स्वीकार की गई। (ई-15)

उद्धृत वादों की सूची:

1. एल.आर. गुप्ता व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य (1992), इनकम टैक्स रिपोर्ट्स, खंड-194, पृष्ठ 32
2. एच.एल. सिबल बनाम आयकर आयुक्त व अन्य (1975), 101 आई.टी.आर. 112 (पंजाब और हरियाणा)
3. गंगा प्रसाद माहेश्वरी बनाम सी.आई.टी. (1981), 6 टैक्समैन 363
4. प्रधान आयकर निदेशक (अन्वेषण) व अन्य बनाम लालजीभाई कांजीभाई मंडालिया (2022), 446 आई.टी.आर., पृष्ठ 18 (सर्वोच्च न्यायालय)
5. स्पेसवुड फर्निशर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम आयकर महानिदेशक (2012), 340 आई.टी.आर. 393
6. विंध्य मेटल कॉर्पोरेशन व अन्य बनाम आयकर आयुक्त व अन्य (1985), आई.टी.आर. खंड-156, पृष्ठ 233
7. रिट याचिका संख्या 122 वर्ष 2009, 'एच.जे. इंडस्ट्रीज प्रा. लिमिटेड व अन्य बनाम श्री राजेंद्र व अन्य'
8. रिट याचिका संख्या 1729 वर्ष 2024, 'बालकृष्ण गोपालराव बूटी व अन्य बनाम प्रधान निदेशक (अन्वेषण), नागपुर व अन्य'
9. एमर अलॉयज़ प्रा. लिमिटेड बनाम आयकर महानिदेशक (अन्वेषण) व अन्य

(माननीय न्यायमूर्ति राजन रॉय द्वारा पारित)

(1) विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री जहाँगीर मिस्त्री और श्री जे.एन. माथुर, जिनकी सहायता याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री शलभ सिंह, श्री सतीश मोदी, श्री अनुपम मिश्रा, श्री मुदित अग्रवाल और सुश्री ऐश्वर्या माथुर कर रहे हैं, तथा श्री एन. वेंकटरमण, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता एवं भारत के अपर सॉलिसिटर जनरल,

जिनकी सहायता विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता श्री नीरव चित्रांशी, श्री कुशाग्र दीक्षित और श्री रवि कुमार मिश्रा कर रहे हैं, को सुना गया ।

(2) उपर्युक्त दोनों याचिकाओं के याचिकाकर्ता पति-पत्नी हैं।

(3) दोनों रिट याचिकाओं में, आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 132 के अंतर्गत 12.12.2024 को जारी प्राधिकार वारंट दिनांकित 11.12.2024 तथा उस पर आधारित याचिकाकर्ताओं के परिसर में आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत की गई तलाशी कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी गई है।

(4) रिट टैक्स संख्या 31 वर्ष 2025 में, उपर्युक्त चुनौती के अतिरिक्त, चूंकि उक्त याचिकाकर्ता को अधिनियम, 1961 की धारा 131(1क) के तहत एक नोटिस जारी किया गया था, इसलिए संशोधन के माध्यम से, 27.01.2025 के उक्त नोटिस को भी चुनौती दी गई है।

(5) पर्याप्त अवसर मिलने के बावजूद, राजस्व विभाग ने रिट याचिकाओं के विरुद्ध कोई प्रतिशपथ पत्र दाखिल नहीं किया और वास्तव में, 11.03.2025 को, राजस्व विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आदेश-पत्र में हमारे द्वारा दर्ज किए गए अनुसार एक कथन दिया कि अभिवचन दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है और वह रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों के आधार पर बहस करेंगे।

(6) रिट टैक्स संख्या 30 वर्ष 2025 के याचिकाकर्ता अस्सी वर्षीय डॉक्टर बताए जाते हैं। यद्यपि यह बहुत प्रासंगिक नहीं है, लेकिन यह बताया गया है कि वह अल्जाइमर से पीड़ित हैं। वह इंडिया पेस्टिसाइड्स लिमिटेड नामक कंपनी के प्रवर्तक शेयरधारक हैं।

(7) रिट टैक्स संख्या 31 वर्ष 2025 की याचिकाकर्ता भी, जैसा कि दावा किया गया है, लगभग अस्सी वर्ष की आयु की हैं और उपर्युक्त कंपनी की एक प्रवर्तक शेयरधारक हैं।

(8) दोनों याचिकाकर्ता पिछले अठारह वर्षों से अधिक समय से अपना आयकर रिटर्न दाखिल कर रहे हैं और ऐसा कभी नहीं हुआ कि उन्हें कोई नोटिस जारी किया गया हो जिसका उन्होंने जवाब न दिया हो, या इस संबंध में दस्तावेज अथवा जानकारी प्रस्तुत करने या उपस्थिति के लिए कोई समन जारी किया गया हो और उन्होंने उसका जवाब न दिया हो। उनका दावा है कि वे नियमित रूप से अपना रिटर्न दाखिल कर रहे हैं और अपनी आय का खुलासा कर रहे हैं।

(9) 01.07.2021 को, याचिकाकर्ताओं ने आई.पी.ओ. के हिस्से के रूप में जनता को 'वर्षर फॉर सेल' के अंतर्गत कंपनी के इक्विटी शेयर बेचे/हस्तांतरित किए थे। प्रमोद स्वरूप अग्रवाल के मामले में, 33,00,00,000/- रुपये के कुल प्रतिफल के लिए 11,11,486 इक्विटी शेयर हस्तांतरित किए गए थे, जबकि स्नेह लता अग्रवाल के

मामले में, उन्होंने 41,59,99,880/- रुपये के कुल प्रतिफल के लिए 14,05,405 इक्विटी शेयर बेचे/हस्तांतरित किए। इस प्रकार के हस्तांतरण के समय, कंपनी एक सूचीबद्ध कंपनी नहीं थी। इसे 05.07.2021 को मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध किया गया था। यह दावा किया गया है कि शेयर बेचने से प्राप्त धनराशि याचिकाकर्ताओं के बैंक खाते में प्राप्त हुई थी। उन्होंने आई.पी.ओ. में ओ.एफ.एस. शेयरों की बिक्री से उत्पन्न आय पर अग्रिम कर का भुगतान किया, लेकिन निर्धारण वर्ष 2022-23 के लिए अपना आयकर रिटर्न दाखिल करने से पहले, विभिन्न कर सलाहकारों से परामर्श और राय लेने के बाद, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ओ.एफ.एस. के माध्यम से जनता को शेयरों की बिक्री/हस्तांतरण पर उन्हें प्राप्त प्रतिफल, आयकर अधिनियम, 1961 (जिसे इसके बाद 'अधिनियम, 1961' के रूप में संदर्भित किया गया है) की धारा 45 के अंतर्गत पूंजीगत अभिलाभ कर के लिए उत्तरदायी नहीं था। इस कारण से, उन्होंने निर्धारण वर्ष 2022-23 के लिए दाखिल अपने रिटर्न में उक्त लेनदेन पर कोई कर प्रस्तावित नहीं किया और वास्तव में, भुगतान किए गए अग्रिम कर की वापसी का दावा किया।

(10) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, आयकर रिटर्न में ऐसा कोई कॉलम नहीं था जो याचिकाकर्ताओं को यह सूचित करने की अनुमति देता कि उक्त लेनदेन कर-योग्य नहीं हैं, अन्यथा जैसा कि दावा किया गया है, वे ऐसा कर देते। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं ने अपने चार्टर्ड अकाउंटेंट्स/सलाहकारों के माध्यम से विपक्षी संख्या 5, यानी अधिकार क्षेत्र वाले निर्धारण अधिकारी के समक्ष 16.01.2023 का एक पत्र दाखिल किया, क्योंकि यह अधिकतम वही था जो वे कर सकते थे, क्योंकि आयकर विभाग के संबंधित पोर्टल पर ऐसी जानकारी अपलोड करने का कोई प्रावधान नहीं है। उक्त दस्तावेज की प्रति दोनों रिट याचिकाओं में अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है। इसमें उन कारणों का विवरण दिया गया है कि याचिकाकर्ता पूंजीगत अभिलाभ कर के लिए उत्तरदायी क्यों नहीं थे।

(11) अधिनियम, 1961 की धारा 55(2)(एसी) में ऐसा कोई तंत्र शामिल नहीं था जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ताओं द्वारा बेचे गए शेयरों के 'उचित बाजार मूल्य' की गणना की जा सके, जो कि पूंजीगत अभिलाभ की गणना करने और उस पर कर का भुगतान करने के लिए आवश्यक था। इस तंत्र के अभाव में, पूंजीगत अभिलाभ कर की गणना करने और उसका भुगतान करने का कोई तरीका नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निर्धारण अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं द्वारा भुगतान किए गए अग्रिम कर की वापसी का आदेश दिया। अतः, विभाग ने भी यह समझा कि आय कर-योग्य नहीं थी, अन्यथा, सजा आदि के लिए याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही शुरू की गई होती।

(12) चूँकि इसी तरह की स्थिति वाले कई व्यक्ति ऐसे लेनदेन के संबंध में कर के लिए उत्तरदायी न होने का लाभ उठा रहे थे, इसलिए, कमियों को महसूस करते हुए, 01.09.2024 को अधिनियम, 1961 की धारा 55 में एक संशोधन लाया गया, जिसमें उनके उचित बाजार मूल्य की गणना करने के लिए एक तंत्र प्रदान करके ऐसे लेनदेन को पूंजीगत अभिलाभ कर के दायरे में लाया गया। असंशोधित प्रावधान में किसी भी ऐसे तंत्र के अभाव ने किसी भी इच्छुक व्यक्ति के लिए कर का भुगतान करना असंभव बना दिया था। यह संशोधन 01.04.2018

से प्रभावी किया गया। उपर्युक्त कारणों से ही याचिकाकर्ताओं को अवैध रूप से अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत तलाशी अभियानों का सामना करना पड़ा।

(13) याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मिस्त्री द्वारा यह तर्क दिया गया कि इस पूर्वव्यापी संशोधन के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता लेनदेन पर कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी थे, लेकिन 12.12.2024 को विपक्षी पक्षकारों द्वारा की गई तलाशी कार्यवाही के कारण, अधिनियम, 1961 की धारा 139 (8क) के दूसरे परंतुक के तहत, उन्हें ऐसा करने से वैधानिक रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया था। उक्त परंतुक यह प्रावधान करता है कि कोई व्यक्ति उक्त उप-धारा के अंतर्गत अद्यतन रिटर्न प्रस्तुत करने के लिए पात्र नहीं होगा जहाँ (क) ऐसे व्यक्ति के मामले में धारा 132 के तहत तलाशी शुरू की गई हो या धारा 132ए के तहत लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज या कोई संपत्ति मंगवाई गई हो। उन्होंने तलाशी अभियानों के शुरू होने के परिणामों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया।

(14) केवल जब याचिकाकर्ताओं जैसी स्थिति वाले व्यक्तियों ने उक्त लाभ का दावा करना शुरू किया, तब विभाग ने प्रावधान में संशोधन करने के लिए कदम उठाया। उनके अनुसार, याचिकाकर्ताओं को कानून में स्वीकृत खामी, जिसे केवल बाद में सुधारा गया, के कारण पूंजीगत अभिलाभ कर का भुगतान न करने पर अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत तलाशी अभियानों के अधीन नहीं किया जा सकता था, और यह तथ्य अधिनियम, 1961 के उक्त प्रावधान के तहत किसी भी कार्यवाई का आधार नहीं हो सकता था।

(15) उनके अनुसार, धारा 132(1)(ख) के संदर्भ में कोई जानकारी नहीं थी और इस मामले के तथ्यों में कोई भी विवेकशील व्यक्ति अधिनियम, 1961 की धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के संदर्भ में विश्वास करने का कोई कारण नहीं रख सकता था।

(16) उन्होंने इस तथ्य पर भी जोर दिया कि सामान्यतः पूंजीगत अभिलाभ कर संबंधित समय पर दस प्रतिशत की दर से देय होता है, हालाँकि, तलाशी अभियानों के बाद यदि निर्धारण होता है, तो दायित्व साठ प्रतिशत का होगा। इस संबंध में, उन्होंने अधिनियम, 1961 की धारा 113 का उल्लेख किया, जो तलाशी मामलों के ब्लॉक असेसमेंट के मामले में कर को संदर्भित करती है, एक ऐसी स्थिति जिसे राजस्व विभाग के विद्वान अधिवक्ता द्वारा खंडित नहीं किया जा सका। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं को अब ब्लॉक असेसमेंट के अधीन किया जाएगा। इसलिए, प्रश्नगत कार्यवाही अवैध होने के अलावा याचिकाकर्ताओं के लिए अत्यधिक प्रतिकूल है।

(17) राजस्व विभाग के विद्वान अधिवक्ता ने, निःसंदेह, यह तर्क दिया कि ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा बहुत सीमित है और न्यायालय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों, विशेष रूप से 'प्रधान निदेशक, आयकर (अन्वेषण) एवं अन्य बनाम लालजीभाई कांजीभाई मंडालिया', जो (2022) 446 आईटीआर पृष्ठ 18 (एससी) पर रिपोर्ट किया गया है, को ध्यान में रखना चाहिए और इस मामले का निर्णय एक अपीलीय न्यायालय के रूप में नहीं करना चाहिए। पर्याप्त जानकारी उपलब्ध थी और उसी के आधार पर, सक्षम अधिकारी

द्वारा तलाशी अभियान के लिए विश्वास करने का कारण निर्मित किया गया था और न्यायिक समीक्षा की सीमित सीमाओं के भीतर, यह हस्तक्षेप करने का मामला नहीं था। उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मिस्त्री का यह तर्क कि तलाशी अभियान इसलिए अमान्य थे क्योंकि धारा 132 के तहत तलाशी अभियानों के लिए सक्षम प्राधिकारी से 'विश्वास करने का कारण' निर्मित करने की अपेक्षा की जाती थी, जो कि धारा 131(1ए) के तहत आवश्यकता से उच्च स्तर पर था (जिसमें केवल 'संदेह करने का कारण' आवश्यक था), इसलिए, स्नेह लता अग्रवाल के मामले में, तलाशी अभियानों के बाद धारा 131(1क) के तहत एक नोटिस जारी किया गया था, अतः तलाशी अभियान अमान्य थे, स्वीकार्य नहीं था और कानून के विपरीत था। उन्होंने यह भी कहा कि 'डॉ. अनीता सहाय बनाम निदेशक, आयकर (अन्वेषण) एवं अन्य, जो (2004) आईटीआर खंड 266, पृष्ठ 597 पर रिपोर्ट किया गया है, के निर्णय पर श्री मिस्त्री द्वारा किया गया भरोसा गलत है, क्योंकि उक्त निर्णय को बाद में इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ द्वारा 'डॉ. वी.एस. चौहान बनाम निदेशक, आयकर (अन्वेषण), जो (2011) 200 टैक्समैन 413 (इलाहाबाद) में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में स्पष्ट किया गया है। दूसरे, झारखंड उच्च न्यायालय ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया है और यह माना है कि यह अपने आप में तलाशी अभियानों को अमान्य नहीं करेगा, जो उनके अनुसार कानूनी स्थिति की सही समझ को प्रदर्शित करता है।

(18) सुनवाई के दौरान, अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत कार्यवाही के संदर्भ में 'संतुष्टि नोट' वाला एक लिफाफा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसे सील कर दिया गया और रिकॉर्ड पर रखा गया। हमने इसका अवलोकन किया है। इसके अतिरिक्त, बाद की किसी तारीख पर, सीलबंद लिफाफे में कुछ अन्य दस्तावेज हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए, जिनका उल्लेख हम इसके बाद करेंगे।

(19) जहाँ तक अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत अधिकृत वारंट और तलाशी कार्यवाही को चुनौती देने का प्रश्न है, दोनों याचिकाकर्ता पति और पत्नी हैं और उसी आवास में रहते हैं जहाँ 12.12.2024 को तलाशी ली गई थी, और इस संदर्भ में चुनौती के आधार दोनों रिट याचिकाओं में समान हैं। इसलिए, हम सबसे पहले मामले के इस पहलू से निपटेंगे और उस प्रक्रिया में, हम विरोधी पक्षों के तर्कों और प्रति-तर्कों पर विचार करेंगे।

(20) आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 132 निम्नलिखित है:-

"तलाशी और जब्ती।

132.(1) जहाँ प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक या प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त या अतिरिक्त निदेशक या अतिरिक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक या संयुक्त आयुक्त, उसके पास मौजूद जानकारी के परिणामस्वरूप, यह विश्वास करने का कारण रखता है कि—
(क) कोई भी व्यक्ति जिसे भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11) की धारा 37 की उप-धारा (1), या इस अधिनियम की धारा 131 की उप-धारा (1) के तहत समन, या भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 22 की उप-धारा (4), या इस अधिनियम की धारा 142 की उप-धारा (1) के तहत कोई नोटिस जारी किया गया था कि वह कोई लेखा पुस्तक या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करे, या प्रस्तुत करवाए, ने ऐसे समन या नोटिस

द्वारा अपेक्षित ऐसी लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करने में, या प्रस्तुत करवाने में लोप किया है या विफल रहा है, या

(ख) कोई भी व्यक्ति जिसे उपर्युक्त समन या नोटिस जारी किया गया है या किया जा सकता है, वह ऐसी कोई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत नहीं करेगा, या नहीं करवाएगा, जो भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11) के तहत, या इस अधिनियम के तहत, किसी भी कार्यवाही के लिए उपयोगी या प्रासंगिक होंगे, या

(ग) कोई भी व्यक्ति किसी मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज के कब्जे में है और ऐसी मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज पूर्णतः या अंशतः ऐसी आय या संपत्ति का प्रतिनिधित्व करती है, जिसे भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11), या इस अधिनियम (जिसे इस धारा में इसके बाद अधोषित आय या संपत्ति के रूप में संदर्भित किया गया है) के प्रयोजनों के लिए प्रकट नहीं किया गया है, या नहीं किया जाएगा,

तो,—

(क) प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक या प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त, यथास्थिति, किसी अतिरिक्त निदेशक या अतिरिक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक, संयुक्त आयुक्त, सहायक निदेशक या उप निदेशक, सहायक आयुक्त या उप आयुक्त या आयकर अधिकारी को प्राधिकृत कर सकते हैं, या

(ख) ऐसा अतिरिक्त निदेशक या अतिरिक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक, या संयुक्त आयुक्त, यथास्थिति, किसी सहायक निदेशक या उप निदेशक, सहायक आयुक्त या उप आयुक्त या आयकर अधिकारी को, (सभी मामलों में इस प्रकार प्राधिकृत अधिकारी को इसमें इसके बाद प्राधिकृत अधिकारी के रूप में संदर्भित किया जाएगा) निम्नलिखित के लिए प्राधिकृत कर सकता है—

(i) किसी भी ऐसी इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान में प्रवेश करना और तलाशी लेना, जहाँ उसे संदेह करने का कारण है कि ऐसी लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज रखी गई है;

(ii) खंड (i) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए किसी भी दरवाजे, संदूक, लॉकर, तिजोरी, अलमारी या अन्य पात्र के ताले को तोड़कर खोलना, जहाँ उनकी चाबियाँ उपलब्ध न हों;

(iik) किसी भी ऐसे व्यक्ति की तलाशी लेना जो किसी इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान से बाहर निकला है, या उसमें प्रवेश करने वाला है, या उसमें है, यदि प्राधिकृत अधिकारी के पास यह संदेह करने का कारण है कि ऐसे व्यक्ति ने अपने पास ऐसी कोई लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज छिपा रखी है;

(iix) सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) की धारा 2 की उप-धारा (1) के खंड (टी) में परिभाषित इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के रूप में रखी गई किसी भी लेखा पुस्तक या अन्य दस्तावेजों के कब्जे या नियंत्रण में पाए गए किसी भी व्यक्ति से यह अपेक्षा करना कि वह प्राधिकृत अधिकारी को ऐसी लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों का निरीक्षण करने के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करे;

(iii) ऐसी तलाशी के परिणामस्वरूप पाई गई ऐसी किसी भी लेखा पुस्तक, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज को जब्त करना:

[परंतु यह कि ऐसी तलाशी के परिणामस्वरूप पाया गया सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज, जो व्यवसाय की स्टॉक-इन-ट्रेड है, जब्त नहीं की जाएगी, लेकिन प्राधिकृत अधिकारी व्यवसाय के ऐसे स्टॉक-इन-ट्रेड का एक नोट या सूची तैयार करेगा]

(iv) किसी भी लेखा पुस्तक या अन्य दस्तावेजों पर पहचान के चिह्न लगाना या उनमें से अर्क या प्रतियां तैयार करना या करवाना;

(v) ऐसी किसी भी मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज का एक नोट या सूची तैयार करना: परंतु यह कि जहाँ खंड (i) में निर्दिष्ट कोई इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान किसी प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त के अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत है, लेकिन ऐसे प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त का खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो धारा 120 में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, उसके लिए इस उप-धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करना तब संभव होगा जब उसके पास यह विश्वास करने का कारण हो कि ऐसे व्यक्ति पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त से प्राधिकार प्राप्त करने में होने वाली कोई भी देरी राजस्व के हितों के लिए प्रतिकूल हो सकती है:

परंतु यह और कि जहाँ किसी बहुमूल्य वस्तु या चीज के आयतन, भार या अन्य भौतिक विशेषताओं के कारण, या उसके खतरनाक प्रकृति के होने के कारण, उसका भौतिक कब्जा लेना और उसे किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाना संभव या साध्य न हो, तो प्राधिकृत अधिकारी उसके स्वामी या उसके तत्काल कब्जे या नियंत्रण में रहने वाले व्यक्ति पर यह आदेश तामील कर सकता है कि वह ऐसे प्राधिकृत अधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना उसे हटाएगा नहीं, अलग नहीं करेगा या अन्यथा उसके साथ कोई व्यवहार नहीं करेगा, और प्राधिकृत अधिकारी की ऐसी कार्रवाई को खंड (iii) के तहत ऐसी बहुमूल्य वस्तु या चीज की जब्ती माना जाएगा:

परंतु यह भी कि दूसरे परंतुक में निहित कोई भी बात किसी बहुमूल्य वस्तु या चीज के मामले में लागू नहीं होगी, जो व्यवसाय का स्टॉक-इन-ट्रेड है:

परंतु यह भी कि अतिरिक्त निदेशक या अतिरिक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक या संयुक्त आयुक्त द्वारा 1 अक्टूबर, 2009 को या उसके बाद कोई प्राधिकार जारी नहीं किया जाएगा, जब तक कि उसे ऐसा करने के लिए बोर्ड द्वारा सशक्त न किया गया हो।

स्पष्टीकरण.—संदेहों को दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि इस उप-धारा के तहत आयकर प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया 'विश्वास करने का कारण', किसी भी व्यक्ति या किसी प्राधिकारी या अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकट नहीं किया जाएगा।

(1क) जहाँ कोई प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त, अपने पास मौजूद जानकारी के परिणामस्वरूप, यह संदेह करने का कारण रखता है कि कोई भी लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज, जिसके संबंध में उप-धारा (1) के खंड (i) से (v) के तहत कार्रवाई करने के लिए किसी अधिकारी को प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या

निदेशक या किसी अन्य प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त या अतिरिक्त निदेशक या अतिरिक्त आयुक्त या संयुक्त निदेशक या संयुक्त आयुक्त द्वारा प्राधिकृत किया गया है, किसी ऐसी इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान में रखी गई है जिसका उल्लेख उप-धारा (1) के तहत प्राधिकार में नहीं है, तो ऐसा प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त, इस धारा में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, उक्त अधिकारी को ऐसी इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान के संबंध में उपर्युक्त खंडों में से किसी के तहत कार्रवाई करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है।

स्पष्टीकरण.—संदेहों को दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि इस उप-धारा के तहत आयकर प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया 'संदेह करने का कारण', किसी भी व्यक्ति या किसी प्राधिकारी या अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष प्रकट नहीं किया जाएगा।

[(2) प्राधिकृत अधिकारी निम्नलिखित की सेवाओं की मांग कर सकता है,—

(i) किसी पुलिस अधिकारी या केंद्र सरकार के किसी अधिकारी, या दोनों की; या

(ii) किसी ऐसे व्यक्ति या इकाई की जिसे प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक द्वारा, इस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अनुमोदित किया गया हो, ताकि वह उप-धारा (1) या उप-धारा (1क) में निर्दिष्ट सभी या किसी भी उद्देश्य के लिए उसकी सहायता कर सके और ऐसे प्रत्येक अधिकारी या व्यक्ति या इकाई का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी मांग का अनुपालन करे।]

(3) प्राधिकृत अधिकारी, जहाँ ऐसी किसी लेखा पुस्तक, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज को जब्त करना साध्य न हो, उप-धारा (1) के दूसरे परंतुक में उल्लिखित कारणों के अलावा अन्य कारणों से, उसके स्वामी या उसके तत्काल कब्जे या नियंत्रण में रहने वाले व्यक्ति पर यह आदेश तामील कर सकता है कि वह ऐसे अधिकारी की पूर्व अनुमति के बिना उसे हटाएगा नहीं, अलग नहीं करेगा या अन्यथा उसके साथ कोई व्यवहार नहीं करेगा और ऐसा अधिकारी इस उप-धारा के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए ऐसे कदम उठा सकता है जो आवश्यक हों।

स्पष्टीकरण.—संदेहों को दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि इस उप-धारा के तहत उपर्युक्त आदेश की तामील को, उप-धारा (1) के खंड (iii) के तहत ऐसी लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेजों, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज की जब्ती नहीं माना जाएगा।

(4) प्राधिकृत अधिकारी, तलाशी या जब्ती के दौरान, किसी भी ऐसे व्यक्ति से शपथ पर पूछताछ कर सकता है जो किसी लेखा पुस्तक, दस्तावेजों, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज के कब्जे या नियंत्रण में पाया जाता है और ऐसी पूछताछ के दौरान उस व्यक्ति द्वारा दिया गया कोई भी बयान, उसके बाद भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11) के तहत, या इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

स्पष्टीकरण.—संदेहों को दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि इस उप-धारा के तहत किसी भी व्यक्ति की पूछताछ न केवल तलाशी के परिणामस्वरूप पाई गई किसी लेखा पुस्तक, अन्य दस्तावेजों या आस्तियों के संबंध में हो सकती है, बल्कि उन सभी मामलों के संबंध में भी हो सकती है जो भारतीय

आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11), या इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही से जुड़ी जांच के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक हैं।

(4क) जहाँ तलाशी के दौरान किसी व्यक्ति के कब्जे या नियंत्रण में कोई लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज पाई जाती है, वहाँ यह उपधारणा की जा सकती है—

(i) कि ऐसी लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज, मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज उस व्यक्ति की हैं;

(ii) कि ऐसी लेखा पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों की विषय-वस्तु सत्य हैं; और

(iii) कि ऐसी लेखा पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों के हस्ताक्षर और प्रत्येक अन्य भाग, जो किसी विशेष व्यक्ति की हस्तलिपि में होने का तात्पर्य रखते हैं या जिन्हें यथोचित रूप से यह माना जा सकता है कि वे किसी विशेष व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित हैं, या किसी विशेष व्यक्ति की हस्तलिपि में हैं, उस व्यक्ति की हस्तलिपि में हैं, और मुद्रांकित, निष्पादित या अनुप्रमाणित दस्तावेज के मामले में, यह कि उसे उस व्यक्ति द्वारा विधिवत मुद्रांकित और निष्पादित या अनुप्रमाणित किया गया था, जिसके द्वारा उसे इस प्रकार निष्पादित या अनुप्रमाणित किए जाने का तात्पर्य है।

(5) [***]

(6) [***]

(7) [***]

(8) उप-धारा (1) या उप-धारा (1क) के तहत जब्त की गई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज प्राधिकृत अधिकारी द्वारा [उस तिमाही की समाप्ति से एक माह] की अवधि से अधिक समय तक प्रतिधारित नहीं रखे जाएंगे जिस तिमाही में धारा 143 की उप-धारा (3) या धारा 144 या धारा 147 या धारा 153क या धारा 158खग के खंड (ग) के तहत निर्धारण या पुनःनिर्धारण या पुनःगणना का आदेश दिया गया है, जब तक कि उन्हें प्रतिधारित रखने के कारणों को उसके द्वारा लिखित रूप में दर्ज न किया गया हो और ऐसी प्रतिधारण के लिए प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त, प्रधान आयुक्त या आयुक्त, प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक का अनुमोदन प्राप्त न कर लिया गया हो :

परंतु यह कि प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त, प्रधान आयुक्त या आयुक्त, प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक, लेखा पुस्तकों और अन्य दस्तावेजों को उस अवधि के बाद, जिसके लिए वे लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज प्रासंगिक हैं, भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11), या इस अधिनियम के तहत सभी कार्यवाहियाँ पूरी होने के तीस दिन बाद की अवधि के लिए प्रतिधारित रखने का प्राधिकार नहीं देंगे।

(8क) उप-धारा (3) के तहत कोई आदेश, आदेश की तारीख से साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए लागू नहीं रहेगा।

(9) वह व्यक्ति जिसकी अभिरक्षा से उप-धारा (1) या उप-धारा (1क) के तहत कोई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज जब्त किए गए हैं, प्राधिकृत अधिकारी या इस निमित्त उसके द्वारा सशक्त किसी अन्य व्यक्ति की उपस्थिति में, ऐसे स्थान और समय पर जो प्राधिकृत अधिकारी इस निमित्त नियुक्त करे, उनकी प्रतियाँ बना सकता है, या उनमें से अर्क ले सकता है।

(9क) जहाँ प्राधिकृत अधिकारी का उप-धारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट व्यक्ति पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, वहाँ उस उप-धारा के तहत जब्त की गई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज, या कोई मुद्रा, सर्राफा, आभूषण या अन्य बहुमूल्य वस्तु या चीज (जिसे इस धारा और धारा 132क और 132ख में इसके बाद आस्तियों के रूप में संदर्भित किया गया है) को प्राधिकृत अधिकारी द्वारा तलाशी के लिए अंतिम प्राधिकार निष्पादित किए जाने की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर ऐसे व्यक्ति पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले निर्धारण अधिकारी को सौंप दिया जाएगा और तदुपरांत उप-धारा (8) या उप-धारा (9) के तहत प्राधिकृत अधिकारी द्वारा प्रयोग करने योग्य शक्तियां ऐसे निर्धारण अधिकारी द्वारा प्रयोग करने योग्य होंगी।

(9ख) जहाँ तलाशी या जब्ती के दौरान या तलाशी के लिए अंतिम प्राधिकार निष्पादित किए जाने की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर, प्राधिकृत अधिकारी लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, इस बात से संतुष्ट है कि राजस्व के हितों की रक्षा के उद्देश्य से ऐसा करना आवश्यक है, तो वह प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक के पूर्व अनुमोदन से, लिखित आदेश द्वारा, निर्धारिती की किसी भी संपत्ति को अनंतिम रूप से कुर्क कर सकता है, और उक्त उद्देश्यों के लिए, दूसरी अनुसूची के प्रावधान, आवश्यक परिवर्तनों के साथ, लागू होंगे।

(9ग) उप-धारा (9ख) के तहत की गई प्रत्येक अनंतिम कुर्की, उप-धारा (9ख) में निर्दिष्ट आदेश की तारीख से छह महीने की अवधि समाप्त होने के बाद प्रभावी नहीं रहेगी।

[(9घ) प्राधिकृत अधिकारी, तलाशी या जब्ती के दौरान या तलाशी के लिए अंतिम प्राधिकार निष्पादित किए जाने की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर, निम्नलिखित को एक निर्देश भेज सकता है,—

(i) धारा 142क में निर्दिष्ट मूल्यांकन अधिकारी, या

(ii) कोई अन्य व्यक्ति या इकाई या तत्समय लागू किसी कानून के तहत या द्वारा पंजीकृत कोई मूल्यांकनकर्ता, जिसे प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक द्वारा, इस संबंध में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अनुमोदित किया गया हो,

जो संपत्ति के उचित बाजार मूल्य का उस रीति से अनुमान लगाएगा जो निर्धारित की जाए, और ऐसे निर्देश की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों की अवधि के भीतर प्राधिकृत अधिकारी या निर्धारण अधिकारी, जैसा भी मामला हो, को अनुमान की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।]

(10) यदि कोई व्यक्ति, जो उप-धारा (8) के तहत प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त, प्रधान आयुक्त या आयुक्त, प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक द्वारा प्रतिधारित की गई लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों का कानूनी रूप से हकदार है, इस प्रकार के प्रतिधारण पर आपत्ति करता है, तो वह बोर्ड को एक आवेदन दे सकता है जिसमें ऐसी आपत्ति के कारणों का उल्लेख हो और लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों को वापस करने का अनुरोध किया जा सकता है और बोर्ड, आवेदक को सुनवाई का अवसर देने के बाद, ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।

(11) [***]

(11क) [***]

(12) [***]

(13) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के तलाशी और जब्ती से संबंधित प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, उप-धारा (1) या उप-धारा (1क) के तहत तलाशी और जब्ती पर लागू होंगे।

(14) बोर्ड इस धारा के तहत किसी भी तलाशी या जब्ती के संबंध में नियम बना सकता है; विशेष रूप से, और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम प्राधिकृत अधिकारी द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के लिए प्रावधान कर सकते हैं—

(i) किसी ऐसी इमारत, स्थान, जलयान, वाहन या विमान में प्रवेश प्राप्त करने के लिए जिसकी तलाशी ली जानी है, जहाँ उसके लिए स्वतंत्र प्रवेश उपलब्ध न हो;

(ii) जब्त की गई किसी भी लेखा पुस्तक या अन्य दस्तावेजों या आस्तियों की सुरक्षित अभिरक्षा सुनिश्चित करने के लिए।

[स्पष्टीकरण 1.—उप-धारा (9क), (9ख) और (9घ) के प्रयोजनों के लिए, तलाशी के लिए अंतिम [प्राधिकार] को निष्पादित माना जाएगा,—

(क) तलाशी के मामले में, उस अंतिम पंचनामे के निष्कर्ष पर जो किसी ऐसे व्यक्ति के संबंध में तैयार किया गया है जिसके मामले में प्राधिकार का वारंट जारी किया गया है; या

(ख) धारा 132क के तहत मांग के मामले में, प्राधिकृत अधिकारी द्वारा लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों या आस्तियों की वास्तविक प्राप्ति पर।]

स्पष्टीकरण 2.—इस धारा में, "कार्यवाही" शब्द का अर्थ किसी भी वर्ष के संबंध में कोई भी कार्यवाही है, चाहे वह भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11) के तहत हो, या इस अधिनियम के तहत, जो उस तारीख को लंबित हो सकती है जिस तारीख को इस धारा के तहत तलाशी को प्राधिकृत किया गया है, या जो ऐसी तारीख को या उससे पहले पूरी की जा चुकी हो, और इसमें इस अधिनियम के तहत वे सभी कार्यवाहियाँ भी शामिल हैं जो किसी भी वर्ष के संबंध में ऐसी तारीख के बाद शुरू की जा सकती हैं।

लेखा पुस्तकों, आदि की मांग करने की शक्तियाँ।

132क. (1) जहाँ प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक या प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त को, अपने कब्जे में मौजूद जानकारी के परिणामस्वरूप, यह विश्वास करने का कारण है कि—

(क) कोई ऐसा व्यक्ति जिसे भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11) की धारा 37 की उप-धारा (1) के तहत, या इस अधिनियम की धारा 131 की उप-धारा (1) के तहत समन, या भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 22 की उप-धारा (4) के तहत, या इस अधिनियम की धारा 142 की उप-धारा (1) के तहत नोटिस, कोई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करने या प्रस्तुत करवाने के लिए जारी किया गया था, ने ऐसे समन या नोटिस द्वारा अपेक्षित ऐसी लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत करने या प्रस्तुत करवाने में लोप किया है या असफल रहा है और उक्त लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों को तत्समय लागू किसी अन्य कानून के तहत किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा अभिरक्षा में ले लिया गया है, या

(ख) कोई लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11), या इस अधिनियम के तहत किसी कार्यवाही के लिए उपयोगी होंगे, या प्रासंगिक होंगे और वह व्यक्ति जिसे उपर्युक्त अनुसार समन या नोटिस जारी किया गया है या किया जा सकता है, ऐसी लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों

के उस अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा, जिसके द्वारा या जिसके पास ऐसी लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज तत्समय लागू किसी अन्य कानून के तहत अभिरक्षा में ले लिए गए हैं, वापस किए जाने पर, ऐसी लेखा पुस्तकों या अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं करेगा, या प्रस्तुत नहीं करवाएगा, या

(ग) कोई आस्तियां या तो पूर्णतः या अंशतः ऐसी आय या संपत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसे भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 (1922 का 11), या इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति द्वारा प्रकट नहीं किया गया है, या नहीं किया जाता, जिसकी कब्जे या नियंत्रण से ऐसी आस्तियों को तत्समय लागू किसी अन्य कानून के तहत किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा अभिरक्षा में ले लिया गया है,

तो, प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक या प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त, किसी अपर निदेशक, अपर आयुक्त, संयुक्त निदेशक, संयुक्त आयुक्त, सहायक निदेशक या उप निदेशक, सहायक आयुक्त या उप आयुक्त या आयकर अधिकारी (जिसे इस धारा और धारा 278घ की उप-धारा (2) में इसके बाद मांग करने वाला अधिकारी कहा गया है) को यह प्राधिकृत कर सकता है कि वह खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग), जैसा भी मामला हो, में निर्दिष्ट अधिकारी या प्राधिकारी से ऐसी लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेजों या आस्तियों को मांग करने वाले अधिकारी को सौंपने की अपेक्षा करे। स्पष्टीकरण.—संदेह दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि इस उप-धारा के तहत आयकर प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया विश्वास करने का कारण, किसी व्यक्ति या किसी प्राधिकारी या अपीलीय अधिकरण को प्रकट नहीं किया जाएगा।

(2) उप-धारा (1) के तहत मांग किए जाने पर, उस उप-धारा के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग), जैसा भी मामला हो, में निर्दिष्ट अधिकारी या प्राधिकारी, लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेजों या आस्तियों को मांग करने वाले अधिकारी को या तो तुरंत सौंप देगा या तब सौंप देगा जब ऐसा अधिकारी या प्राधिकारी इस राय का हो कि उन्हें उसकी अभिरक्षा में बनाए रखना अब आवश्यक नहीं है।

(3) जहाँ कोई लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज या आस्तियाँ मांग करने वाले अधिकारी को सौंप दी गई हैं, वहाँ धारा 132 की उप-धाराओं (4क) से (14) (दोनों सहित) और धारा 132ख के प्रावधान, जहाँ तक संभव हो, इस प्रकार लागू होंगे मानो ऐसी लेखा पुस्तकें, अन्य दस्तावेज या आस्तियाँ इस धारा की उप-धारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग), जैसा भी मामला हो, में निर्दिष्ट व्यक्ति की अभिरक्षा से मांग करने वाले अधिकारी द्वारा धारा 132 की उप-धारा (1) के तहत जब्त की गई हों और मानो पूर्वोक्त उप-धाराओं (4क) से (14) में से किसी में भी आने वाले शब्दों "प्राधिकृत अधिकारी" के स्थान पर, शब्द "मांग करने वाला अधिकारी" प्रतिस्थापित कर दिए गए हों।

जब्त या मांगी गई आस्तियों का अनुप्रयोग।

132ख. (1) धारा 132 के तहत जब्त की गई या धारा 132क के तहत मांगी गई आस्तियों के संबंध में निम्नलिखित तरीके से कार्यवाही की जा सकती है, अर्थात्:—

(i) इस अधिनियम, धन-कर अधिनियम, 1957 (1957 का 27), व्यय-कर अधिनियम, 1987 (1987 का 35), उपहार-कर अधिनियम, 1958 (1958 का 18) [ब्याज-कर अधिनियम, 1974 (1974 का 45) और काला धन (अघोषित विदेशी आय और आस्तियाँ) और कर अधिरोपण अधिनियम, 2015 (2015 का 22)] के तहत किसी मौजूदा दायित्व की राशि, और निर्धारण या पुनःनिर्धारण या पुनःसंगणना के पूरा होने पर निर्धारित दायित्व की

राशि और उस वर्ष का निर्धारण जो उस पूर्व वर्ष के लिए प्रासंगिक है जिसमें तलाशी शुरू की गई है या मांग की गई है, या ब्लॉक अवधि के लिए अध्याय XIV-ख के तहत निर्धारण पूरा होने पर निर्धारित दायित्व की राशि, जैसा भी मामला हो (ऐसे निर्धारण के संबंध में लगाए गए किसी भी जुर्माने या देय ब्याज सहित) और जिसके संबंध में ऐसा व्यक्ति व्यतिक्रमी है या व्यतिक्रमी माना जाता है, या धारा 245ग की उप-धारा (1) के तहत निपटान आयोग के समक्ष किए गए आवेदन पर उत्पन्न होने वाली दायित्व की राशि, को ऐसी आस्तियों में से वसूल किया जा सकता है:

परंतु जहाँ संबंधित व्यक्ति, उस महीने के अंत से तीस दिनों के भीतर जिसमें आस्ति जब्त की गई थी, निर्धारण अधिकारी को आस्ति को मुक्त करने के लिए आवेदन करता है और ऐसी किसी आस्ति के अर्जन की प्रकृति और स्रोत को निर्धारण अधिकारी की संतुष्टि के अनुसार स्पष्ट कर दिया जाता है, तो इस खंड में निर्दिष्ट किसी भी मौजूदा दायित्व की राशि को ऐसी आस्ति में से वसूल किया जा सकता है और आस्ति का शेष भाग, यदि कोई हो, प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व अनुमोदन से, उस व्यक्ति को मुक्त किया जा सकता है जिसकी अभिरक्षा से आस्तियाँ जब्त की गई थीं:

परंतु यह और कि, पहले परंतुक में निर्दिष्ट ऐसी आस्ति या उसका कोई भाग उस तारीख से एक सौ बीस दिनों की अवधि के भीतर मुक्त किया जाएगा जिस तारीख को धारा 132 के तहत तलाशी के लिए या धारा 132क के तहत मांग के लिए, जैसा भी मामला हो, अंतिम प्राधिकार निष्पादित किया गया था;

(ii) यदि आस्तियाँ पूर्णतः धन के रूप में हैं, या अंशतः धन और अंशतः अन्य आस्तियों के रूप में हैं, तो निर्धारण अधिकारी खंड (i) में निर्दिष्ट दायित्वों के निर्वहन में ऐसी धनराशि का उपयोग कर सकता है और निर्धारित इस प्रकार उपयोग की गई धनराशि की सीमा तक ऐसे दायित्व से मुक्त हो जाएगा;

(iii) धन के अलावा अन्य आस्तियों का उपयोग खंड (i) में निर्दिष्ट किसी भी ऐसे दायित्व के निर्वहन के लिए भी किया जा सकता है जो असमाप्त रहता है और इस प्रयोजन के लिए ऐसी आस्तियों को कुर्की के अधीन माना जाएगा, मानो ऐसी कुर्की निर्धारण अधिकारी या, जैसा भी मामला हो, कर वसूली अधिकारी द्वारा धारा 226 की उप-धारा (5) के तहत प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त से प्राधिकार प्राप्त करके प्रभावी की गई हो, और निर्धारण अधिकारी या, जैसा भी मामला हो, कर वसूली अधिकारी ऐसी आस्तियों की बिक्री द्वारा ऐसे दायित्वों की राशि की वसूली कर सकता है और ऐसी बिक्री तीसरी अनुसूची में निर्धारित तरीके से प्रभावी की जाएगी।

(2) उप-धारा (1) में निहित कोई भी बात इस अधिनियम में निर्धारित किसी अन्य तरीके से पूर्वोक्त दायित्वों की राशि की वसूली को वर्जित नहीं करेगी।

(3) उप-धारा (1) के खंड (i) में निर्दिष्ट दायित्वों के निर्वहन के बाद जो भी आस्तियाँ या उनकी प्राप्तियाँ शेष रहती हैं, उन्हें तुरंत उन व्यक्तियों को सौंप दिया जाएगा या भुगतान कर दिया जाएगा जिनकी अभिरक्षा से आस्तियाँ जब्त की गई थीं।

(4) (क) केंद्र सरकार उस राशि पर प्रत्येक महीने या महीने के किसी भाग के लिए आधे प्रतिशत की दर से साधारण ब्याज का भुगतान करेगी, जिस राशि से धारा 132 के तहत जब्त या धारा 132क के तहत मांगी गई धन की कुल राशि, उप-धारा (1) के खंड (i) के पहले परंतुक के तहत मुक्त की गई धन की राशि (यदि कोई हो), और उप-धारा (1) के खंड (i) में निर्दिष्ट मौजूदा दायित्व के निर्वहन के लिए बेची गई आस्तियों की प्राप्तियाँ

(यदि कोई हो), को घटाने के बाद, इस धारा की उप-धारा (1) के खंड (i) में निर्दिष्ट दायित्वों को पूरा करने के लिए आवश्यक राशि के कुल योग से अधिक हो जाती है।

(ख) ऐसा ब्याज उस तारीख के ठीक बाद की तारीख से, जिस तारीख को धारा 132 के तहत तलाशी या धारा 132क के तहत मांग के लिए अंतिम प्राधिकार निष्पादित किया गया था, एक सौ बीस दिनों की अवधि समाप्त होने से, निर्धारण या पुनःनिर्धारण या पुनःसंगणना के पूरा होने की तारीख तक चलेगा।

स्पष्टीकरण 1.—इस धारा में,—

(i) "ब्लॉक अवधि" का वही अर्थ होगा जो उसे धारा 158ख के खंड (क) में दिया गया है;

(ii) "तलाशी या मांग के लिए प्राधिकार का निष्पादन" का वही अर्थ होगा जो उसे [धारा 158ख के स्पष्टीकरण] में दिया गया है।

स्पष्टीकरण 2.—संदेह दूर करने के लिए, इसके द्वारा यह घोषित किया जाता है कि "मौजूदा दायित्व" में अध्याय XVII के भाग ग के प्रावधानों के अनुसार देय अग्रिम कर शामिल नहीं है।

(21) धारा 132 एक ऐसा प्रावधान है जो नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता, विशेषकर निजता के अधिकार का उल्लंघन करता है, इसलिए इसके तहत शक्ति का प्रयोग कुछ शर्तों के अधीन है ताकि मनमानी और दुर्भावनापूर्ण कार्रवाई से बचा जा सके और नागरिकों को ऐसी कार्रवाई से सुरक्षित रखा जा सके। वे राज्य (राजस्व) की मांगों और इस देश के नागरिकों को उपलब्ध निजता के अधिकार सहित अधिकारों और स्वतंत्रता के बीच संतुलन भी बनाए रखते हैं। इसलिए, धारा 132 के प्रावधानों को ठीक उसी तरह सख्ती से समझा और व्याख्यायित किया जाना चाहिए, जिस तरह उनका सख्ती से पालन किया जाना आवश्यक है।

(22) उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान को केवल पढ़ने से यह स्पष्ट है कि उसके तहत कोई भी कार्रवाई शुरू करने के लिए, सबसे पहले, उसमें निर्दिष्ट अधिकारियों के पास जानकारी होनी चाहिए। दूसरे, ऐसे अधिकारियों को ऐसी जानकारी के परिणामस्वरूप और उस पर आधारित विश्वास करने का कारण होना चाहिए। तीसरे, यह जानकारी और विश्वास करने का कारण उसमें निहित तीन खंडों (क), (ख) या (ग) में से किसी एक के साथ संबंध रखना चाहिए, अन्यथा ऐसा प्रयोग कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण होगा।

(23) इस संदर्भ में, हम दिल्ली उच्च न्यायालय के 'एल.आर. गुप्ता व अन्य बनाम भारत संघ व अन्य' के मामले में खंडपीठ के निर्णय पर लाभप्रद रूप से भरोसा कर सकते हैं, जो (1992) इनकम टैक्स रिपोर्ट्स खंड-194 पृष्ठ 32 पर प्रकाशित है, जिसमें माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"धारा 132 के तहत की जाने वाली तलाशी नागरिक की निजता में एक गंभीर हस्तक्षेप है। धारा 132(1) की व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए और प्राधिकृत अधिकारी द्वारा राय या विश्वास करने का कारण, उसके द्वारा दर्ज नोट से स्पष्ट होना चाहिए। इस प्रकार दर्ज की गई राय या विश्वास से स्पष्ट रूप से यह दिखना चाहिए कि क्या यह विश्वास धारा 132(1) के उप-खंड (क), (ख) या (ग) के अंतर्गत आता है। उप-खंड (क), (ख) या (ग) में निहित किन्हीं कारणों के अतिरिक्त कोई तलाशी का आदेश नहीं दिया जा सकता है। संतुष्टि नोट से स्वयं अधिकारी द्वारा दिमाग का प्रयोग और राय का गठन परिलक्षित होना चाहिए, जो तलाशी का

आदेश दे रहा है। यदि दर्ज किए गए कारण खंड (क), (ख) या (ग) के अंतर्गत नहीं आते हैं, तो धारा 132(1) के तहत दिए गए प्राधिकार को रद्द करना होगा। जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने 'इनकम टैक्स ऑफिसर बनाम सेठ ब्रदर्स', (1969) 74 आईटीआर 836, 843 में कहा है:

"चूंकि शक्ति के प्रयोग से करदाता के अधिकारों, निजता और स्वतंत्रता पर गंभीर आक्रमण होता है, इसलिए शक्ति का प्रयोग कानून के अनुसार सख्ती से किया जाना चाहिए और केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए किया जाना चाहिए जिनके लिए कानून इसे प्रयोग करने के लिए अधिकृत करता है। यदि प्राधिकार जारी करने वाले अधिकारी या नामित अधिकारी की कार्रवाई को चुनौती दी जाती है, तो संबंधित अधिकारी को अपनी कार्रवाई की नियमितता के बारे में न्यायालय को संतुष्ट करना होगा। यदि कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण रूप से की गई है या इस धारा के तहत शक्ति का प्रयोग किसी संपार्श्विक उद्देश्य के लिए किया गया है, तो इसे न्यायालय द्वारा रद्द किए जाने की संभावना है। यदि शक्ति के प्रयोग के लिए शर्तें पूरी नहीं होती हैं, तो कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।"

(24) दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ को 'एल.आर. गुप्ता' (पूर्वोक्त) मामले में धारा 132 (1) के खंड (क), (ख) और (ग) के अर्थ, तात्पर्य और दायरे पर विचार करने का अवसर मिला था और उस संदर्भ में अधिनियम, 1961 की धारा 132(1) के खंड (ख) का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की थी:-

"धारा 132(1) का उप-खंड (ख) उन मामलों को संदर्भित करता है जहाँ विश्वास करने का कारण है कि यदि उप-खंड (क) में निर्दिष्ट कोई सम्मन या नोटिस जारी किया गया है या जारी किया जाएगा, तो वह व्यक्ति लेखा-बहियों, आदि को प्रस्तुत नहीं करेगा या प्रस्तुत नहीं करवाएगा। दूसरे शब्दों में, उक्त प्रावधान उस विश्वास को संदर्भित करता है जो समुचित प्राधिकारी द्वारा इस आशय से बनाया जा सकता है कि संबंधित व्यक्ति द्वारा आयकर अधिकारियों के समक्ष स्वेच्छा से, या नोटिस के बाद भी, दस्तावेज प्रस्तुत करने की संभावना नहीं है। उदाहरण के लिए, जहाँ ऐसी जानकारी हो कि कोई व्यक्ति ऐसे दस्तावेजों या लेखा-बहियों को छिपा रहा है या छिपाने या नष्ट करने की संभावना है, जो अधिनियम के उद्देश्यों के लिए आवश्यक या प्रासंगिक हैं, तो ऐसे मामले में, यह कहा जा सकता है कि जब तक तलाशी नहीं ली जाती, तब तक उक्त लेखा-बहियाँ या दस्तावेज बरामद नहीं किए जाएंगे। प्राधिकारी का यह विश्वास होना चाहिए कि आयकर विभाग जिस एकमात्र तरीके से किसी व्यक्ति से लेखा-बहियाँ और दस्तावेज प्राप्त करने की स्थिति में होगा, वह तलाशी का संचालन और उसके परिणामस्वरूप दस्तावेजों की जब्ती है। हमारी राय में, कुछ ऐसे तथ्य या परिस्थितियाँ मौजूद होनी चाहिए जिनके आधार पर ऐसा विश्वास बनाया जा सके। उदाहरण के लिए, यदि विभाग के पास यह जानकारी है कि किसी व्यक्ति के पास लेखा-बहियों या दस्तावेजों के दोहरे सेट हैं जहाँ हवाला लेन-देन दर्ज हैं, तो विभाग वैध रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि यदि नोटिस भेजा जाता है, तो उस व्यक्ति द्वारा उक्त दस्तावेज, आदि प्रस्तुत करने की संभावना नहीं है। लेखा-बहियाँ और इस प्रकार के दस्तावेजों की दोहरी प्रतियाँ मुख्य रूप से इस कारण से रखी जाती हैं कि उन्हें आयकर अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाना है। इसे दूसरे शब्दों में कहें तो, दस्तावेजों की प्रकृति ऐसी हो सकती है जो सामान्य तौर पर, स्वेच्छा से या मांग भेजे जाने पर आयकर अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत किए जाने की संभावना नहीं है। यह भी हो सकता है कि दस्तावेज मौजूद हों और किसी व्यक्ति की अभिरक्षा में हों, जो ऐसी अचल संपत्ति के अस्तित्व को दर्शाते हों जिसे उसने

आयकर विभाग से छिपाई गई धनराशि या आय से अर्जित किया हो। निर्धारिती का पिछला रिकॉर्ड और जीवन में उसकी स्थिति या पद भी इस संबंध में प्रासंगिक परिस्थितियाँ हैं। हालाँकि, जहाँ ऐसे दस्तावेज मौजूद हैं जिन्हें किसी निर्धारिती द्वारा गुप्त रूप से नहीं रखा गया है, उदाहरण के लिए पास बुक, बिक्री विलेख जो पंजीकृत हैं और जिनके अस्तित्व के बारे में विभाग को जानकारी है, तो ऐसे मामले में, यह विश्वास करना कठिन होगा कि एक निर्धारिती उन दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं करेगा।"

(25) हम यहाँ ऊपर उद्धृत दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1961 की धारा 132(1) के खंड (ख) के अनुप्रयोग के संबंध में कानून की व्याख्या से सम्मानपूर्वक सहमत हैं।

(26) इसी संदर्भ में हम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के 'एच.एल. सिम्बल बनाम आयकर आयुक्त व अन्य' (1975) 101 आईटीआर 112 (पी&एच) के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसे दिल्ली उच्च न्यायालय के 'एल.आर. गुप्ता' (पूर्वोक्त) मामले के निर्णय में उद्धृत किया गया है और उस मामले में, यह टिप्पणी की गई थी:-

"धारा 132(1) के तहत की गई तलाशियों पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 165 की प्रयोज्यता यह संकेत देती है कि इस धारा का उद्देश्य सीमित परिस्थितियों में उन व्यक्तियों पर लागू होना है जिनकी मानसिकता ऐसी है, जिनसे या तो प्राधिकारियों के साथ प्रासंगिक बहियों को प्रस्तुत करने के लिए सहयोग की अपेक्षा नहीं की जाती है या जो अघोषित धन, सर्राफा और आभूषण, आदि के कब्जे में हैं। उदाहरण के तौर पर, एक विशेष निर्धारिती को लें जिसने अपनी अघोषित आय का उपयोग एक विशाल भवन के निर्माण में किया है। केवल इसी आधार पर उसके परिसर की तलाशी इस धारा के तहत नहीं ली जा सकती। तलाशी को केवल तभी अधिकृत किया जाएगा यदि आयकर आयुक्त को यह जानकारी दी जाती है कि ऐसा व्यक्ति इस भवन में या कहीं और धन, सर्राफा, आभूषण, आदि रख रहा है। इसके अलावा, यदि कोई निर्धारिती नियमित रूप से कर-निर्धारण प्राधिकारियों के समक्ष अपनी लेखा-बहियाँ प्रस्तुत कर रहा है और वे प्राधिकारी इन बहियों को व्यवसाय के उचित क्रम में अनुरक्षित मानते हुए स्वीकार करते रहे हैं, तो आयकर आयुक्त द्वारा इन लेखा-बहियों को प्रस्तुत करने के लिए तलाशी वारंट जारी करना शक्ति का कुछ हद तक अनुचित प्रयोग होगा, जब तक कि निश्चित रूप से ऐसी जानकारी न हो कि वह कुछ गुप्त लेखा-बहियाँ भी रख रहा है। उसे किसी व्यक्ति या किसी लेन-देन या उद्यम में संयुक्त रूप से रुचि रखने वाले व्यक्तियों की मानसिक बनावट की पृष्ठभूमि में निर्णय पर पहुँचना होता है। इस अनिश्चित संभावना पर कि यदि उनके परिसरों की तलाशी ली जाए तो कुछ दोषारोपण करने वाली सामग्री मिल सकती है, एक-दूसरे से असंबंधित विविध गतिविधियों वाले व्यक्तियों की व्यापक निंदा करना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 165 के दायरे से पूरी तरह बाहर है। इस शक्ति का प्रयोग ईमानदारी से किया जाना चाहिए और तलाशी वारंट केवल नीति के मामले के रूप में अंधाधुंध जारी नहीं किए जा सकते हैं।"

(27) 'विश्वास करने का कारण' संतुष्टि नोट में निहित है। यह वही नोट है जिसे हमारे द्वारा देखा जाना है, लेकिन ऐसा करने से पहले, हमें 'विश्वास करने का कारण' शब्द के अर्थ और ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे को समझने की आवश्यकता है। इस न्यायालय को (1981) 6 टैक्समैन 363 में प्रकाशित 'गंगा प्रसाद

माहेश्वरी बनाम सीआईटी के मामले में 'विश्वास करने का कारण' वाक्यांश की व्याख्या करने का अवसर मिला था, जो इस प्रकार है:-

"विश्वास करने का कारण' कराधान कानूनों में एक सामान्य विशेषता है। इसे संबंधित अधिकारी द्वारा शक्ति के प्रयोग पर सबसे कल्याणकारी सुरक्षा उपाय माना गया है। यह दो शब्दों 'कारण' और 'विश्वास करना' से बना है। 'कारण' शब्द का अर्थ है हेतु या औचित्य, और 'विश्वास करना' शब्द का अर्थ है सत्य के रूप में स्वीकार करना या उसमें आस्था रखना। इससे पहले कि अधिकारी किसी तथ्य पर आस्था रखे या उसे अस्तित्व में स्वीकार करे, इसके लिए एक औचित्य होना चाहिए। विश्वास शायद जांच के लिए खुला न हो क्योंकि यह संबंधित अधिकारी द्वारा प्राप्त जानकारी पर किए गए मानसिक अभ्यास के परिणामस्वरूप निकाला गया अंतिम निष्कर्ष है। किंतु, वह कारण जिसके आधार पर निर्णय लिया गया है, उसकी जाँच हमेशा की जा सकती है। जब यह कहा जाता है कि 'विश्वास करने का कारण' जाँच के दायरे से बाहर है, तो उसका तात्पर्य यह है कि संबंधित अधिकारी द्वारा पहुँचा गया समाधान चुनौती से सुरक्षित है, लेकिन जहाँ वह समाधान किसी सामग्री पर आधारित नहीं है या वह तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है, जो इसका एक अभिन्न अंग है, तो वह विफल हो जाता है और न्यायालय इसे रद्द करने के लिए सशक्त है। विश्वास व्यक्तिपरक हो सकता है, लेकिन तर्क वस्तुनिष्ठ होता है। 'आईटीओ बनाम लखमनी मेवाल दास' (1976) 103 आईटीआर 437 (एससी) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 147 में प्रयुक्त इसी तरह के वाक्यांश की व्याख्या करते हुए (पृष्ठ 446, 103 आईटीआर पर) यह माना:

'विश्वास करने का कारण' वाक्यांश का अर्थ आयकर अधिकारी की ओर से केवल एक व्यक्तिपरक समाधान नहीं है। यह कारण सद्भावनापूर्वक होना चाहिए। यह केवल दिखावा नहीं हो सकता।"

(28) अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत तलाशी के मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे और अन्य संबंधित मुद्दों के संबंध में, हम सीधे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के '**प्रधान निदेशक, आयकर (अन्वेषण) व अन्य बनाम लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया**' (2022) 446 आईटीआर पृष्ठ 18 (एससी) के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें इस विषय पर पूर्व के पूर्ववृत्तों पर विचार करने के बाद, अंततः निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:-

"32. ऊपर संदर्भित निर्णयों के प्रकाश में, तलाशी और जब्ती करने के लिए प्राधिकार के कार्य की वैधता पर विचार करते समय दर्ज किए गए 'विश्वास करने के कारणों' की पर्याप्तता या अपर्याप्तता की जाँच नहीं की जा सकती है। केवल दर्ज किया गया विश्वास ही न्यायोचित है, लेकिन वह भी केवल 'वेन्सबरी तर्कसंगतता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए। ऐसी तर्कसंगतता का तात्पर्य दर्ज किए गए 'विश्वास करने के कारणों' पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करने की शक्ति नहीं है।

33. हम अधिनियम की धारा 132 के तहत तलाशी और जब्ती के मामले में रिट अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के सिद्धांतों को निम्नानुसार दोहराना और स्पष्ट करना चाहेंगे:

i) राय का गठन और दर्ज किए गए 'विश्वास करने के कारण' कोई न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य नहीं है, बल्कि यह प्रशासनिक प्रकृति का है;"

- ii) प्राधिकृत अधिकारी के पास सामग्री के आधार पर जानकारी होनी चाहिए और राय का गठन ईमानदार और सद्भावी होना चाहिए। यह केवल दिखावा नहीं हो सकता। किसी भी बाहरी या अप्रासंगिक सामग्री पर विचार करने से विश्वास/संतुष्टि दूषित हो जाएगी;
- iii) प्राधिकारी के पास ऐसी जानकारी होनी चाहिए जिसके आधार पर एक उचित विश्वास स्थापित किया जा सके कि संबंधित व्यक्ति ने लेखा-बहियों या अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत करने में चूक की है या विफल रहा है, जिन्हें प्रस्तुत करने के लिए सम्मन या नोटिस जारी किया गया था, या ऐसा व्यक्ति सम्मन या नोटिस जारी किए जाने पर भी ऐसी लेखा-बहियों या अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं करेगा; या
- iv) ऐसा व्यक्ति किसी ऐसे धन, सराफा, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु के कब्जे में है जो ऐसी आय या संपत्ति का पूर्णतः या आंशिक रूप से प्रतिनिधित्व करती है जिसे प्रकट नहीं किया गया है या नहीं किया जाएगा;
- v) सक्षम प्राधिकारी के विश्वास के गठन को चुनौती दिए जाने की स्थिति में, उन कारणों को उच्च न्यायालय के समक्ष रखा जा सकता है, जिस स्थिति में न्यायालय विश्वास के गठन के कारणों की जाँच करने का हकदार होगा, हालाँकि उनकी पर्याप्तता या उपयुक्तता की नहीं। दूसरे शब्दों में, न्यायालय यह जाँच करेगा कि क्या दर्ज किए गए कारण दुर्भावना से प्रेरित हैं या केवल एक दिखावा हैं और क्या किसी बाहरी या अप्रासंगिक सामग्री पर विचार नहीं किया गया है;
- vi) संतुष्टि नोट का हिस्सा बनने वाले ऐसे कारण न्यायालय की न्यायिक अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए हैं और ऐसे संतुष्टि नोट के किसी भी हिस्से को आदेश का हिस्सा नहीं बनाया जाना है;
- vii) क्या ऐसे कारण पर्याप्त हैं या नहीं, यह प्रश्न रिट याचिका में न्यायालय द्वारा समीक्षा का विषय नहीं है। जिन आधारों ने सक्षम प्राधिकारी को कार्य करने के लिए प्रेरित किया, उनकी पर्याप्तता कोई न्यायोचित मुद्दा नहीं है;
- viii) विश्वास के गठन के कारणों की प्रासंगिकता का परीक्षण प्रशासनिक कार्रवाई की तरह ही न्यायिक संयम द्वारा किया जाना है, क्योंकि न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में नहीं बैठता है, बल्कि केवल उस तरीके की समीक्षा करता है जिसमें निर्णय लिया गया था। न्यायालय उनकी पर्याप्तता या उपयुक्तता की जाँच नहीं करेगा;
- ix) वित्त अधिनियम, 2017 द्वारा 1.4.1962 से भूतलक्षी प्रभाव के साथ सम्मिलित स्पष्टीकरण के अनुसार, आयकर अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए 'विश्वास करने के ऐसे कारणों' का खुलासा किसी भी व्यक्ति या किसी प्राधिकारी या अपीलीय अधिकरण को किए जाने की आवश्यकता नहीं है।"

(29) भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 'लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया' (पूर्वोक्त) मामले में निर्णय सुनाते हुए 'स्पेसवुड फर्निशर्स (पी) लिमिटेड बनाम डीजी वर्ष इनकम टैक्स', (2012) 340 आईटीआर 393 में दिए गए अपने पूर्व निर्णय का उल्लेख किया, जिसमें उच्च न्यायालय के उस आदेश को रद्द कर दिया गया था और उच्च न्यायालय के उस निर्णय को अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें संतुष्टि नोट को विस्तार से उद्धृत किया गया था।

(30) इस संदर्भ में, हम इस न्यायालय की खंडपीठ के 'विंध्य मेटल कोऑपरेशन व अन्य बनाम आयकर आयुक्त व अन्य' (1985) आईटीआर खंड 156 पृष्ठ 233 के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें निम्नलिखित रूप से अभीनिर्धारित किया गया है:-

"यह सुस्थापित है कि इन प्रावधानों के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्व शर्त का अस्तित्व या अभाव, न्यायिक जाँच के दायरे में आता है। पूर्व शर्त का अभाव स्वाभाविक रूप से इन दो प्रावधानों में से किसी के तहत आयुक्त द्वारा किए गए प्राधिकार और उसके परिणामस्वरूप हुई कार्यवाही को दूषित करने का प्रभाव रखेगा। जहाँ जानकारी की पर्याप्तता या अन्यथा की जाँच न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती है, वहीं जानकारी का अस्तित्व और विश्वास के गठन के लिए उसकी प्रासंगिकता की जाँच निस्संदेह की जा सकती है। साथ ही, क्या आयुक्त के पास उपलब्ध सामग्री के आधार पर, कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता था कि तलाशी, जब्ती या मांग को अधिकृत किया जाना चाहिए, यह एक ऐसा क्षेत्र है जो न्यायिक समीक्षा के लिए खुला है। (देखें छगामल राजपाल बनाम चलिहा [1971] 79 आईटीआर 603 (एससी); मोतीलाल बनाम प्रिवेंटिव इंटेलिजेंस ऑफिसर [1971] 80 आईटीआर 418 (इलाहाबाद); सिब्बल बनाम सीआईटी [1975] 101 आईटीआर 112 (पी&एच); आईटीओ बनाम लखमनी मेवाल दास [1976] 103 आईटीआर 437 (एससी); मंजू टंडन (श्रीमती) बनाम कपूर [1978] 115 आईटीआर 473 (इलाहाबाद) और गंगा प्रसाद माहेश्वरी बनाम सीआईटी [1983] 139 आईटीआर 1043 (इलाहाबाद)।)"

(31) यह निर्णय ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा के दायरे की भी व्याख्या करता है जो माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुरूप हैं, भले ही इसे पहले दिया गया हो।

(32) राजस्व की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और ए.एस.जी. ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के 'लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया' (पूर्वोक्त) मामले के निर्णय पर भारी भरोसा जताया और यह तर्क दिया कि वर्तमान मामले में न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित है और संतुष्टि नोट में संदर्भित तथा निहित जानकारी और 'विश्वास करने के कारण' को देखते हुए, जिसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, वास्तव में इस मामले में आक्षेपित कार्रवाई की ऐसी समीक्षा की कोई गुंजाइश नहीं है क्योंकि इसमें कोई अवैधता नहीं है। न केवल जानकारी है, बल्कि 'विश्वास करने का कारण' भी है और इस संदर्भ में उन्होंने तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने एक गलत आधार पर बहस की है, मानो कि ओएफएस के तहत शेरों की बिक्री के लिए पूंजीगत लाभ कर का भुगतान न करना ही अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत तलाशी अभियान का एकमात्र आधार है, जबकि ऐसा नहीं है। इस संदर्भ में, उन्होंने न्यायालय से 'अन्य आरोप' शीर्षक के अंतर्गत संतुष्टि नोट को पढ़ने का आग्रह किया।

(33) बहस के दौरान, राजस्व की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और ए.एस.जी., श्री एन. वेंकटरमण ने बहुत स्पष्टता से यह प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1961 की धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (क) और (ग) वर्तमान मामले में बिल्कुल भी लागू नहीं होते हैं, जो केवल उसी के खंड (b) से संबंधित है।

(34) निष्कर्ष यह है कि अधिनियम, 1961 की धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के संदर्भ में जानकारी होनी चाहिए और उस पर आधारित 'विश्वास करने का कारण' होना चाहिए कि हमारे समक्ष उपस्थित याचिकाकर्ताओं को, जिन्हें तलाशी अभियान से पहले कोई सम्मन/नोटिस जारी नहीं किया गया था, यदि उन्हें सम्मन/नोटिस जारी किया जाता, तो वे ऐसी कोई लेखा-बही या अन्य दस्तावेज प्रस्तुत नहीं करते या प्रस्तुत नहीं करवाते जो भारतीय आयकर अधिनियम, 1961 के तहत किसी भी कार्यवाही के लिए उपयोगी या प्रासंगिक हों।

(35) ऊपर संदर्भित जानकारी और 'विश्वास करने का कारण' उक्त खंड (ख) से संबंधित/संदर्भित होने चाहिए और उनका उक्त खंड (ख) के साथ तर्कसंगत संबंध होना चाहिए; और यदि ऐसा नहीं है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप का आधार हो सकता है, क्योंकि तब यह अधिनियम, 1961 की धारा 132 की उप-धारा (1) के उक्त खंड (ख) के संदर्भ में ऐसी जानकारी/'विश्वास करने के कारण' के अभाव का मामला होगा। यह इस निष्कर्ष की ओर ले जाएगा कि यह शक्ति का मनमाना प्रयोग है, जिसमें कानून के प्रावधानों और उसमें निहित विधिक आवश्यकताओं के प्रति मस्तिष्क का प्रयोग नहीं किया गया है।

(36) उपर्युक्त के आलोक में, हमने संतुष्टि नोट का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है। चूँकि हमें इसे न तो उद्धृत करना है और न ही स्पष्ट कारणों से इसके संदर्भ का विस्तार से उल्लेख करना है, क्योंकि राजस्व के अनुसार, कर-निर्धारण अभी शुरू होना बाकी है और धारा 132 के स्पष्टीकरण को देखते हुए ऐसी सामग्री/जानकारी करदाता को केवल कर-निर्धारण कार्यवाही शुरू होने के बाद ही उपलब्ध हो सकती है और निस्संदेह, '**लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया'** (पूर्वोक्त) मामले में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को देखते हुए भी; किंतु, अपने निर्णय को न्यायोचित ठहराने के लिए, हमें कानून की आवश्यकताओं के आलोक में संतुष्टि नोट का संदर्भ देना होगा, भले ही वह सरसरी तौर पर ही क्यों न हो।

(37) जब हम संतुष्टि नोट का अवलोकन करते हैं, तो हमें 'अन्य आरोप' शीर्षक के अंतर्गत या अन्यथा, कहीं भी ऐसी कोई जानकारी नहीं मिलती है, जिसे तलाशी के लिए प्राधिकार वारंट जारी करने हेतु धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के संदर्भ में माना जा सके।

(38) '**लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया'** (पूर्वोक्त) के मामले में संदर्भित कानून की आवश्यकताओं या धारा 132 के स्पष्टीकरण में बाधा डाले बिना, संतुष्टि नोट में संदर्भित जानकारी/सामग्री का, 'अन्य आरोप' शीर्षक के अलावा, खंड (ख) से बिल्कुल कोई संबंध नहीं है। यह भाग केवल ओ.एफ.एस. के तहत शेयरों की बिक्री और अधिनियम, 1961 की धारा 55 (2)(कग) में संशोधनों के संदर्भ में है। 01.09.2024 को अधिनियम, 1961 की धारा 55(2)(कग) का संशोधन स्वयं यह प्रदर्शित करता है कि एक गैर-सूचीबद्ध कंपनी के शेयरों की बिक्री के संबंध में उचित बाजार मूल्य की गणना के लिए किसी तंत्र के अभाव के कारण, ओ.एफ.एस. के तहत प्रमोटर शेयरधारकों द्वारा शेयरों की बिक्री/हस्तांतरण पर पूंजीगत लाभ कर की गणना नहीं की जा सकती। यह धारा 132(1)(ख) के तहत तलाशी के लिए जानकारी नहीं हो सकती है, क्योंकि राजस्व यह प्रदर्शित करने में विफल

रहा है कि निर्धारण वर्ष 2022-23 के लिए याचिकाकर्ता द्वारा रिटर्न दाखिल करने की तिथि पर ऐसी बिक्री/हस्तांतरण पूंजीगत लाभ कर के लिए उत्तरदायी था। यहाँ तक कि 'अन्य आरोप' शीर्षक के अंतर्गत भी, जिस पर विद्वान ए.एस.जी. द्वारा बहुत अधिक जोर दिया गया था, केवल एक पैराग्राफ याचिकाकर्ताओं में से एक, अर्थात् प्रमोद स्वरूप अग्रवाल का उल्लेख करता है, लेकिन इसमें फिर से अस्पष्ट अभिवचन हैं जिनका धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) से कोई संबंध नहीं है। श्री मिस्त्री द्वारा यह जोर देकर कहा गया कि याचिकाकर्ता न तो इंडियन पेस्टिसाइड लिमिटेड के निदेशक हैं और न ही इसमें किसी प्रबंधकीय पद पर हैं। संतुष्टि नोट में ऐसी कोई जानकारी नहीं है जो धारा 132 के अंतर्गत परिकल्पित उस विश्वास का आधार बन सके कि यदि याचिकाकर्ताओं को सम्मन या नोटिस जारी किया जाता, तो वे ऐसी कोई लेखा-बही या कोई अन्य दस्तावेज प्रस्तुत नहीं करते या प्रस्तुत नहीं करवाते जो अधिनियम, 1961 के तहत किसी भी कार्यवाही के लिए उपयोगी या प्रासंगिक हों। इसमें याचिकाकर्ताओं के ऐसे किसी पूर्व आचरण का उल्लेख नहीं है। न ही ऐसी किसी अन्य जानकारी का उल्लेख है जिसका धारा 132(1)(ख) से कोई संबंध हो।

(39) धारा 132(1)(ख) में निहित कानून की आवश्यकताओं के आलोक में संतुष्टि नोट को पढ़ने पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता है कि 10.12.2024 को हस्ताक्षरित हस्तलिखित नोट में इस संबंध में सक्षम प्राधिकारी द्वारा गठित ऐसी जानकारी और 'विश्वास करने का कारण', अधिनियम, 1961 की धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) से किसी भी प्रकार से संबंधित था, जो याचिकाकर्ताओं के संदर्भ में उक्त प्रावधान के तहत तलाशी अभियान को न्यायोचित ठहरा सके।

(40) संतुष्टि नोट और धारा 132 को सरसरी तौर पर पढ़ने पर, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने में कोई संकोच नहीं करते हैं कि धारा 132 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक क्षेत्राधिकार संबंधी पूर्व-शर्तें इस मामले में दुखद रूप से अनुपस्थित थीं और परिणामस्वरूप, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ऐसे संतुष्टि नोट और प्राधिकार वारंट के आधार पर की गई पूरी तलाशी कार्यवाही अवैध है। जहाँ तक याचिकाकर्ताओं का संबंध है, जानकारी और उस पर आधारित 'विश्वास करने का कारण' केवल एक दिखावा है।

(41) रोचक बात यह है कि संतुष्टि नोट में निहित 'विश्वास करने के कारण' अधिनियम की धारा 132 (1) के खंड (क), (ख) और (ग) में निहित तीनों शर्तों के संबंध में हैं, लेकिन विद्वान ए.एस.जी. ने बहस के दौरान बहुत स्पष्टता से यह प्रस्तुत किया कि केवल खंड (ख) ही लागू होता है, और हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि ऐसी कोई जानकारी बिल्कुल नहीं है जिसके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति खंड (क) और (ग) के संदर्भ में 'विश्वास करने का कारण' गठित कर सकता था, जहाँ तक याचिकाकर्ता प्रमोद स्वरूप अग्रवाल और स्नेह लता अग्रवाल का संबंध है। बेशक, संतुष्टि नोट न केवल प्रमोद स्वरूप अग्रवाल और स्नेह लता अग्रवाल के संबंध में है, बल्कि कई अन्य व्यक्तियों के संबंध में भी है, इसलिए, संभवतः, उपर्युक्त तथ्य के कारण इन तीनों खंडों का उल्लेख किया गया है, अन्यथा, जहाँ तक इन दो याचिकाओं में हमारे समक्ष उपस्थित याचिकाकर्ताओं का संबंध है, धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (क) और (ग) के संदर्भ में कोई जानकारी नहीं है, और न ही उस मामले के लिए खंड (ख) के संबंध में ही कोई जानकारी है।

(42) हम पहले ही बता चुके हैं कि राजस्व ने कोई प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं किया है कि आयकर अधिनियम के तहत किसी भी पूर्व कार्यवाही में, याचिकाकर्ताओं ने दस्तावेजों आदि को प्रस्तुत करने से परहेज किया हो, जिससे यह उचित विश्वास पैदा हो सके कि वे इस मामले में भी ऐसा ही करेंगे, जब उन्हें नोटिस या सम्मन जारी किए जाएंगे। हमने 'एल.आर. गुप्ता' (पूर्वोक्त) मामले में डिवीजन बेंच के निर्णय का भी उल्लेख किया है, जिसमें धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के संदर्भ में कानून की व्याख्या की गई है और जिससे हम सहमत हैं। राजस्व ने अभिवचनों में या दोनों याचिकाकर्ताओं द्वारा किए गए इन दावों का खंडन नहीं किया है कि उन्होंने समय पर अपने आयकर रिटर्न दाखिल किए हैं और आयकर अधिकारियों द्वारा जारी किए गए नोटिसों और सम्मनों का हमेशा उत्तर दिया है। इसलिए, यह भी एक ऐसा कारक है जिसे इस तथ्य के अलावा ध्यान में रखा जाना चाहिए कि नोटिस में ऐसी कोई जानकारी नहीं है जिसके आधार पर, कोई भी विवेकशील व्यक्ति धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (ख) के संदर्भ में 'विश्वास करने का कारण' गठित कर सके।

(43) इस संदर्भ में, हम विद्वान ए.एस.जी. द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कुछ पूरक दस्तावेजों पर दी गई निर्भरता का उल्लेख कर सकते हैं, जो उनके अनुसार संतुष्टि नोट का स्पष्टीकरण थे। हमने एक पृष्ठ के नोट और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों का अवलोकन किया है। हमने विद्वान ए.एस.जी. के इस तर्क पर विचार किया है कि राजस्व अभी केवल जांच के चरण में है, इसलिए, 'लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया' (पूर्वोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को देखते हुए, इस न्यायालय को ऐसा कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए जो जांच को रोक दे और अंततः राजस्व को मामले में आगे की कार्यवाही करने से बाधित करे। उन्होंने इस तथ्य पर भी जोर दिया कि इंडिया पेस्टिसाइड लिमिटेड के अठारह शेयरधारकों में से दो ने ओ.एफ.एस. के तहत अपने पास रखे शेयरों की बिक्री के आधार पर पूंजीगत लाभ कर का भुगतान किया था, हालाँकि, उनके पास याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मिस्त्री के इस तर्क का कोई उत्तर नहीं था कि यदि तलाशी अभियान उक्त लेनदेन पर आधारित नहीं था, तो इन दो व्यक्तियों के परिसरों की तलाशी क्यों नहीं ली गई। जो भी हो, क्या केवल इसलिए याचिकाओं को खारिज किया जा सकता है क्योंकि दो शेयरधारकों ने पूंजीगत लाभ कर का भुगतान किया, विशेष रूप से तब जब याचिकाकर्ता ने शुरू से ही यह दावा किया हो कि वे कर के लिए उत्तरदायी नहीं थे? निश्चित रूप से नहीं। हमने अपने समक्ष उपस्थित याचिकाकर्ताओं के संबंध में संतुष्टि नोट के परीक्षण के आधार पर जो कुछ भी पहले ही कहा है, उसे देखते हुए हम इस पहलू पर और अधिक विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। विद्वान ए.एस.जी. ने यहाँ तक कह दिया कि यदि याचिकाकर्ता चाहें, तो वे पूंजीगत लाभ कर के भुगतान न किए जाने के संदर्भ में 31.03.2025 तक रिटर्न दाखिल कर सकते हैं। हालाँकि, श्री मिस्त्री द्वारा इंगित कानून के प्रावधानों, अर्थात् धारा 139 (8-क) के दूसरे परंतुक, जो याचिकाकर्ताओं को ऐसा करने से रोकता है, के समक्ष सामना किए जाने पर उनके पास कोई उत्तर नहीं था। जो भी हो, हम अभी केवल धारा 132 के तहत संचालित प्राधिकार वारंट और तलाशी अभियानों की वैधता से संबंधित हैं।

(44) विद्वान ए.एस.जी. द्वारा प्रदान किए गए पूरक दस्तावेजों के संदर्भ में, हम यह टिप्पणी करने के लिए बाध्य हैं कि इनमें ऐसी जानकारी है जो तलाशी के बाद खोजी गई थी। अधिनियम, 1961 की धारा 132 में संदर्भित 'जानकारी' और 'विश्वास करने का कारण' धारा 132 के तहत तलाशी अभियान से पहले मौजूद होने

चाहिए। ऐसी तलाशी को तलाशी के बाद की सामग्री या जानकारी या विश्वास करने के कारण पर निर्भर रहकर न्यायोचित या वैध नहीं ठहराया जा सकता है। इस संबंध में बम्बई उच्च न्यायालय की खंडपीठ के रिट याचिका संख्या 122 वर्ष 2009 'एच.जे. इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम श्री राजेंद्र और अन्य' के निर्णय के साथ-साथ उसी उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ के रिट याचिका संख्या 1729 वर्ष 2024 'बाल कृष्ण गोपालराव बुटी और अन्य बनाम प्रधान निदेशक (अन्वेषण), नागपुर और अन्य' के निर्णय (नागपुर पीठ) का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसका निर्णय 23.04.2024 को दिया गया था।

(45) तलाशी और तलाशी के बाद की जानकारी या 'विश्वास करने का कारण' प्राधिकार वारंट या उसके अनुसरण में की गई तलाशी को न्यायोचित ठहराने का आधार नहीं बन सकते। इस संबंध में विधिक स्थिति सुस्थापित है।

(46) पूरक दस्तावेजों, विशेष रूप से एक पृष्ठ के नोट को देखने के बाद भी, हम पाते हैं कि उसमें दिए गए अधिकांश विवरणों का उल्लेख संतुष्टि नोट में नहीं है, और संलग्न दस्तावेज तलाशी के बाद की जानकारी से संबंधित हैं, जिन्हें आक्षेपित तलाशी को न्यायोचित ठहराने का आधार नहीं बनाया जा सकता है। लेकिन इसे ध्यान में रखने के बाद भी, ऊपर दिए गए कारणों से, हम अपनी पूर्व में व्यक्त की गई राय को बदलने का कोई कारण नजर नहीं आता है। राजस्व के लिए अधिनियम, 1961 के अन्य प्रावधानों जैसे धारा 148 आदि के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करना हमेशा खुला है, जहाँ तक यह अनुमेय हो, लेकिन धारा 132 के तहत तलाशी को बरकरार नहीं रखा जा सकता। हम केवल यही कामना करते हैं कि हम संतुष्टि नोट में निहित विवरणों और जानकारी पर अपने विचार प्रकट करने के लिए और अधिक विस्तार से चर्चा कर पाते, लेकिन 'लालजीभाई कांजीभाई मंडलिया' (पूर्वोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून हमें ऐसा करने से रोकता है। इतना कहना ही पर्याप्त होगा, भले ही इसे दोहराना पड़े, कि संतुष्टि नोट में वर्णित कोई भी बात धारा 132(1) के खंड (ख), और न ही खंड (क) और (ग) के लिए प्रासंगिक है। तलाशी के बाद की जानकारी का उपयोग ऐसे कृत्य को न्यायोचित ठहराने के लिए नहीं किया जा सकता है।

(47) याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मिस्त्री का यह तर्क कि तलाशी कार्यवाही के बाद याचिकाकर्ताओं में से एक, स्नेह लता अग्रवाल को अधिनियम, 1961 की धारा 131 (1क) के तहत नोटिस जारी किया जाना इस बात का प्रमाण है कि उससे पहले धारा 132 के तहत कार्यवाही करने के लिए 'विश्वास करने का कोई कारण' मौजूद नहीं था, क्योंकि धारा 131 की आवश्यकता एक कमतर आवश्यकता है, जो कि 'संदेह करने का कारण' होना है, जबकि 'विश्वास करने का कारण' उच्च स्तर का होता है; इस तर्क पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम पहले ही इस पर चर्चा कर चुके हैं।

(48) उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हम यहाँ आक्षेपित प्राधिकार वारंट को रद्द करते हैं और हमारे समक्ष आक्षेपित तलाशी कार्यवाही को भी अवैध घोषित करते हैं। कानून के अनुसार इसके परिणाम तदनुसार होंगे। इस आदेश का लाभ स्वतः उन अन्य लोगों को उपलब्ध नहीं होगा जिनके नाम संतुष्टि नोट में अंकित हैं, और यदि अवसर उत्पन्न होता है, तो उनके मामलों पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जा सकता है। हमारा आदेश यदि राजस्व के

पास अधिनियम, 1961 के किन्हीं अन्य प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही करने का कोई कारण है, तो उसके आड़े भी नहीं आएगा।

(49) अब, उस अन्य मुद्दे पर आते हैं जो स्नेह लता अग्रवाल की रिट याचिका में उत्पन्न होता है, अर्थात्, अधिनियम, 1961 की धारा 131 (1क) के तहत दिनांक 27.01.2025 को जारी नोटिस की वैधता।

(50) अधिनियम, 1961 की धारा 131 निम्नलिखित रूप में है:-

(1) निर्धारण अधिकारी, उपायुक्त (अपील), आयुक्त (अपील), प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान आयुक्त या आयुक्त और धारा 144ग की उप-धारा (15) के खंड (क) में संदर्भित विवाद समाधान पैनल के पास, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के तहत एक न्यायालय में निहित होती हैं, जब वह निम्नलिखित मामलों के संबंध में किसी वाद का विचारण कर रहा हो, अर्थात्:

(क) प्रकटीकरण और निरीक्षण;

(ख) किसी व्यक्ति की उपस्थिति को लागू करना, जिसमें बैंकिंग कंपनी का कोई अधिकारी शामिल है, और उसे शपथ पर उसकी परीक्षा करना;

(ग) लेखा बहियों और अन्य दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए विवश करना; और

(घ) कमीशन जारी करना।

(1क) यदि प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान निदेशक या निदेशक या संयुक्त निदेशक या सहायक निदेशक या उप निदेशक, या धारा 132 की उप-धारा (1) में संदर्भित अधिकृत अधिकारी, उस उप-धारा के खंड (i) से (v) के तहत कार्रवाई करने से पहले, यह संदेह करने का कारण रखता है कि उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग द्वारा कोई आय छिपाई गई है, या छिपाई जाने की संभावना है, तो उस संबंध में कोई पूछताछ या जांच करने के प्रयोजनों के लिए, उसके लिए उस उप-धारा में संदर्भित आयकर अधिकारियों को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करना सक्षम होगा, भले ही ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के संबंध में उसके या किसी अन्य आयकर प्राधिकारी के समक्ष कोई कार्यवाही लंबित न हो।

(2) धारा 90 या धारा 90क में संदर्भित किसी समझौते के संबंध में किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के संबंध में पूछताछ या जांच करने के प्रयोजन के लिए, सहायक आयकर आयुक्त की रैंक से नीचे का कोई भी आयकर प्राधिकारी, जिसे बोर्ड द्वारा इस संबंध में अधिसूचित किया जा सकता है, उस उप-धारा में संदर्भित आयकर अधिकारियों को प्रदान की गई शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सक्षम होगा, भले ही ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के संबंध में उसके या किसी अन्य आयकर प्राधिकारी के समक्ष कोई कार्यवाही लंबित न हो।

(3) इस संबंध में बनाए गए किसी भी नियम के अधीन, उप-धारा (1) या उप-धारा (1क) या उप-धारा (2) में संदर्भित कोई भी प्राधिकारी, इस अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही में उसके समक्ष प्रस्तुत की गई लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों को, जितनी अवधि वह उचित समझे, जब्त कर सकता है और अपनी अभिरक्षा में रख सकता है:

परंतु यह कि कोई निर्धारण अधिकारी या सहायक निदेशक या उप निदेशक निम्नलिखित कार्य नहीं करेगा:

(क) ऐसा करने के अपने कारणों को दर्ज किए बिना किसी भी लेखा बहियों या अन्य दस्तावेजों को जब्त नहीं करेगा, या

(ख) प्रधान मुख्य आयुक्त या मुख्य आयुक्त या प्रधान महानिदेशक या महानिदेशक या प्रधान आयुक्त या आयुक्त या प्रधान निदेशक या निदेशक का अनुमोदन प्राप्त किए बिना, यथास्थिति, ऐसी किन्हीं बहियों या दस्तावेजों को पंद्रह दिनों (अवकाश के दिनों को छोड़कर) से अधिक की अवधि के लिए अपनी अभिरक्षा में नहीं रखेगा।"

(51) इस संदर्भ में, बहस के दौरान जो तथ्य सामने आया ऊम्में से एक यह था कि अधिनियम, 1961 की धारा 132 के तहत अधिकृत अधिकारी, अर्थात् आदर्श कुमार, जिन्होंने 27.01.2025 का धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी किया था, वे ऐसा नहीं कर सकते थे क्योंकि धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (i) से (v) के तहत परिकल्पित कार्रवाई इस नोटिस के जारी होने से पहले ही की जा चुकी थी और धारा 131 की उपधारा (1क) उन्हें धारा 132 की उपधारा (1) के खंड (i) से (v) के चरण के पार हो जाने के बाद कोई भी कार्रवाई करने से प्रतिबंधित करती है। याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मिस्त्री द्वारा यह तर्क दिया गया कि श्री आदर्श कुमार, जो धारा 132 के तहत अधिकृत अधिकारी थे, वे याचिकाकर्ताओं के निर्धारण अधिकारी नहीं थे और न ही निर्धारण कार्यवाही शुरू हुई थी, इसलिए, वे अधिनियम, 1961 की धारा 131 के तहत ऐसा नोटिस जारी नहीं कर सकते थे। हमने अपने 28.03.2025 के आदेश के माध्यम से विद्वान एएस.जी. को इस मुद्दे पर हमें संबोधित करने का विशेष अवसर प्रदान किया था। विद्वान एएस.जी. द्वारा केवल यही तर्क दिया गया कि अधिकृत अधिकारी उपधारा (1क) के तहत अन्वेषण के उप निदेशक भी थे और उप निदेशक (अन्वेषण) के रूप में वे धारा 131 के तहत ऐसा नोटिस जारी करने के लिए सक्षम थे, इसलिए, इसमें कोई अवैधता नहीं थी। सम्मान के साथ, हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते।

(52) हमने धारा 131 की उप-धारा (1क) के प्रावधानों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और हम पाते हैं कि कई अधिकारियों को उप-धारा (1) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने के लिए अधिकृत किया गया है, यदि उनके पास यह 'संदेह करने का कारण' है कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग द्वारा उनकी अधिकारिता के भीतर कोई आय छिपाई गई है, या छिपाई जाने की संभावना है, ताकि उससे संबंधित कोई पूछताछ या जांच की जा सके; प्रथम प्रधान महानिदेशक हैं, जिन्होंने नोटिस जारी नहीं किया है, दूसरे महानिदेशक हैं, जिन्होंने भी नोटिस जारी नहीं किया है, प्रधान निदेशक या निदेशक या संयुक्त निदेशक या सहायक निदेशक ने भी नोटिस जारी नहीं किया है। अब, उपर्युक्त के अतिरिक्त, धारा 132 की उप-धारा (1) में संदर्भित अधिकृत अधिकारी को भी धारा 131 की उप-धारा (1) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन एक शर्त के साथ, वह यह है कि वह ऐसा धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (i) से (v) के तहत कार्रवाई करने से पहले कर सकता है। अब, यदि हम विद्वान ए.एस.जी. के इस तर्क को स्वीकार कर लें कि श्री आदर्श कुमार, उपर्युक्त अधिकृत अधिकारी होने के अलावा उप निदेशक भी थे, इसलिए वे तलाशी कार्यवाही समाप्त होने के बाद भी, अर्थात् धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (i) से (v) में परिकल्पित चरण पार हो जाने के बाद भी ऐसा नोटिस जारी कर सकते थे, और इससे ऐसा नोटिस अमान्य नहीं होगा क्योंकि उन्होंने संभवतः डी.डी.आई.टी. के रूप में कार्य किया है न कि एक अधिकृत अधिकारी के रूप में; तो यह धारा 131(1क) के तहत अधिकृत अधिकारी पर लगाए गए प्रतिबंधों को नकारने के बराबर होगा और प्रावधान को इस तरह से पढ़ने और समझने के बराबर होगा जो इसे राजस्व अधिकारियों के हाथों दुरुपयोग और कुप्रबंधन के प्रति संवेदनशील बना दे।

(53) विद्वान ए.एस.जी. द्वारा इस संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह धारा 131(1क) के तहत अधिकृत अधिकारी पर लगाई गई शर्तों को निष्प्रभावी बना देगा और उक्त शर्तों के उल्लंघन तथा उनके

दुरुपयोग के लिए भी अवसर छोड़ देगा। श्री आदर्श कुमार के अधिकृत अधिकारी होने के नाते, और उनके याचिकाकर्ताओं के निर्धारण अधिकारी न होने या निर्धारण कार्यवाही शुरू न होने के कारण, वे ऐसा नोटिस केवल धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (i) से (v) के तहत कार्रवाई किए जाने से पहले ही जारी कर सकते थे, उसके बाद नहीं। राजस्व को इस तथ्य का लाभ नहीं दिया जा सकता कि वह उप निदेशक भी थे, इसलिए वे नोटिस जारी कर सकते थे। हमने रिकॉर्ड पर मौजूद दस्तावेजों का अवलोकन किया है और इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि वे धारा 132 की उप-धारा (1) के तहत एक अधिकृत अधिकारी थे और उन्होंने धारा 131(1क) के तहत आक्षेपित नोटिस जारी किया था, इसलिए, धारा 132 की उप-धारा (1) के खंड (i) से (v) के तहत कार्रवाई किए जाने के बाद वे धारा 131 की उप-धारा (1) के तहत नोटिस जारी नहीं कर सकते थे और ऐसा करने के कारण, दिनांक 27.01.2025 का उक्त नोटिस बरकरार नहीं रखा जा सकता है।

(54) वास्तव में, झारखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 'एमर अलॉयज़ प्रा. लि. बनाम आयकर महानिदेशक (अन्वेषण) और अन्य' के मामले में, जो (2015) 235 टैक्समैन 569 (झारखंड) में रिपोर्ट किया गया है, ठीक यही राय व्यक्त की गई है। इसमें निर्णय के अंत में, इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए कि क्या धारा 132 के तहत कार्रवाई के बाद धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी करना तलाशी कार्यवाही को अमान्य कर देगा, उक्त तर्क को नकारते हुए यह अवलोकन किया गया है कि अधिकृत अधिकारी के पास तलाशी के बाद अधिनियम की धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी करने की कोई शक्ति नहीं है, इसलिए, अधिक से अधिक ऐसे नोटिस का जारी किया जाना नोटिस को अमान्य बना देगा। लेकिन अधिनियम की धारा 131(1क) के तहत तलाशी के बाद नोटिस जारी करना किसी भी तरह से अधिनियम की धारा 132 के तहत कार्यवाही को अमान्य नहीं बनाएगा, यदि उन्हें अन्यथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर संतोष दर्ज करने के बाद जारी किए गए वैध प्राधिकार के अनुसरण में शुरू किया गया था। हम इस मुद्दे पर कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं कि क्या धारा 132 के तहत कार्यवाही के बाद धारा 131(1क) के तहत नोटिस जारी करना बाद की कार्यवाही को अमान्य कर देगा, बल्कि केवल यह कह रहे हैं कि श्री आदर्श कुमार, जो धारा 132 की उप-धारा (1) के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए अधिकृत अधिकारी थे, वे तलाशी कार्यवाही के बाद अधिनियम, 1961 की धारा 131 की उप-धारा (1क) के तहत नोटिस जारी नहीं कर सकते थे, जैसा कि झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा अवलोकन किया गया है। तदनुसार, दिनांक 27.01.2025 का आक्षेपित नोटिस रद्द किया जाता है।

(55) उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, दोनों याचिकाएं **स्वीकार** की जाती हैं।

(56) हालाँकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारा निर्णय विपक्षी पक्षकारों के लिए याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करने के मार्ग में बाधक नहीं होगा, यदि अधिनियम, 1961 के अन्य प्रावधानों, जैसे कि धारा 148 आदि के तहत ऐसा करना अन्यथा अनुमेय हो।

(57) संतुष्टि नोट और पूरक दस्तावेज जो सीलबंद लिफाफे में हैं, राजस्व के विद्वान अधिवक्ता को लौटा दिए जाएंगे।
